उदयपुर : गौरवमयी इतिहास, संस्कृति संरक्षण एवं प्राकृतिक सम्पदा का धनी

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	महाराणा भोपाल सिंह जी	379
2.	मेवाड़ – संस्कृति संरक्षण	380
3.	उदयपुर की कला, स्थापत्य एवं झील क्षेत्र में निर्माण, कला एवं स्थापत्य	381
4.	हवेली, हाउस तथा हाईराइज इमारतें, उदयपुर आवास	382
5.	झीलों के पास निर्माण निषिद्ध क्षेत्र, मास्टर प्लान में अब निर्माण नियंत्रित क्षेत्र	383
6.	पिछोला रो पानी उदियापुर रो वास	384
7.	उदयपुर के संस्थापक एवं महत्वपूर्ण शासक	385
8.	जनप्रतिनिधि, शान एवं गौरव, सुन्दर बाग–बगीचे	386
9.	मन्दिर, झीलें, प्रताप स्मारक, राजमहल, जनाना महल, क्रिस्टल गैलेरी, मेवाड़ लाईट एण्ड साउण्ड शो, राजकीय संग्रहालय, बागोर की हवेली, पं. दीनदयाल उपाध्याय उद्यान, भारतीय लोक कला मण्डल, सुखाड़िया सर्कल, शिल्पग्राम, सज्जनगढ़, आहाड़ पुरातात्विक संग्रहालय, एकलिंगजी, नागदा, हल्दीघाटी, खमनौर, श्रीनाथजी, द्वारकाधीश मन्दिर, राजसमन्द झील, चारभुजाजी, राणकपुर, कुम्भलगढ़, चित्तौड़गढ़, जयसमन्द, ऋषभदेवजी, मेवाड़ में आपका स्वागत	387–389
10.	गुलाब बाग	390
11.	महात्मा गाँधी स्मृति वन उद्यान ''फूलों की घाटी'', चीरवा घाट	391
12.	मेवाड़ जैव–विविधता पार्क	392
13.	सज्जनगढ़ वन्य जीव अभयारण्य	393
14.	सज्जनगढ़ जैविक उद्यान (प्राणि उद्यान)	394
15.	हरियाली एवं उदयपुर, गुलाब बाग बर्ड पार्क	395
16.	सीतामाता वन्य जीव अभयारण्य – एक दिव्य विरासत	396
17.	आयड़ एवं आयड़ स्मारक (महासतिया)	397–398
18.	आहाड़ संग्रहालय, उदयपुर वृत्त के प्रमुख संरक्षित स्मारक, अस्त्र–शस्त्र	399–400
19.	भारतीय लोक कला मण्डल	401
20.	पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र 'शिल्पग्राम'	402
21.	सुखाड़िया सर्कल, सुखाड़िया सर्कल की अनुशंषाएँ एवं विशेषताएँ	403
22.	उत्तर–पश्चिम रेलवे प्रशिक्षण संस्थान	404
23.	शौर्य दीर्घा एवं शहीद स्तम्भ	405
24.	प्रथम आराध्यदेव श्री गणेशजी के मुख्य मन्दिर–बोहरा गणेशजी, पाला गणेशजी, जाड़ा गणेशजी, मावा गणेशजी, दुधिया गणेशजी	406
25.	महालक्ष्मी मन्दिर, सुखदेवी माता मन्दिर	407
26.	प्राचीन अमरखजी महादेव मन्दिर	408
27.	राणकपुर मन्दिर, चौमुखा आदिनाथ मन्दिर, सुपार्श्वनाथ मन्दिर, नेमिनाथ मन्दिर एवं सूर्य मन्दिर	409–410
28.	श्री एकलिंगनाथजी मन्दिर ''कैलाशपुरी तीर्थ'' एवं इन्द्र सरोवर	411–412
29.	बाघेला तालाब, नागदा सास–बहू (विष्णु) मन्दिर एवं अद्भुतजी (जैन मन्दिर), नागदा शांतिनाथ भगवान का नागहट तीर्थ	413–414
30.	श्रीनाथजी मन्दिर, नाथद्वारा, इतिहास के पृष्ठों से	415–417
31.	विश्वास स्वरूपम् शिव प्रतिमा, नाथद्वारा	418
32.	श्री साँवलिया सेठ मन्दिर, मण्डफिया	419
33.	श्री चारभुजाजी मन्दिर एवं शनिदेवजी महाराज का मन्दिर	420
34.	बेणेश्वर धाम (डूंगरपुर)	421
35.	त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर (बांसवाड़ा)	422
36.	आवरी माता शक्तिपीठ एवं श्री शक्तिपीठ ईड़ाणा माता मन्दिर	423
37.	कुंभलगढ़ दुर्ग एवं इसकी महत्वपूर्ण संरचनाएँ, कुंभलगढ़ अभयारण्य	424–425
38.	चित्तौड़गढ़ किला एवं इसके महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल	426–428
39.	हल्दीघाटी, महाराणा प्रताप संग्रहालय, महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्मारक हल्दीघाटी	429–431
40.	मायरा की गुफा (गोगुन्दा) एवं चावण्ड (सराड़ा)	432
41.	श्री ऋषभदेव मन्दिर, केसरियाजी तीर्थ (इतिहास के पृष्ठों से)	433–434
42.	देलवाड़ा – देवीगढ़ पैलेस एवं जैन मन्दिर	435
43.	आयड़ तीर्थ एवं महत्वपूर्ण जैन मन्दिर	436–437
44.	श्री पद्मनाभ स्वामी मन्दिर एवं विशिष्ट जैन मन्दिर	438–439
45.	करेड़ा पार्श्वनाथ का मन्दिर (भूपालसागर) एवं उदयपुर के जैन श्वेताम्बर मन्दिर	439
	झीलों के घाटों पर धार्मिक त्यौहार एवं उत्सवों का आयोजन :	
1.	विक्रम संवत् नव वर्ष समारोह : इतिहास के पृष्ठों से, विक्रम संवत् नव संवत्सर	440
2.	गणगौर उत्सव	441
3.	गणेश चतुर्थी, मोहर्रम	442
4.	नवरात्रि महोत्सव, श्रावणी उपकर्म, भगवान परशुराम जयन्ती, अधिमास या पुरुषोत्तम मास	443
5.	निर्जला एकादशी, कार्तिक स्नान, देवझुलनी एकादशी, छठ पूजा, झीलों की आरती, झीलों को स्वच्छ रखने हेतु जागरूक रहे	444
6.	झीलों में विसर्जन एवं प्रदूषण, झील प्रेमी संगठन का योगदान, लेकसिटी की पोपुलरिटी बढ़े, खुशियों की शेयरिंग	445

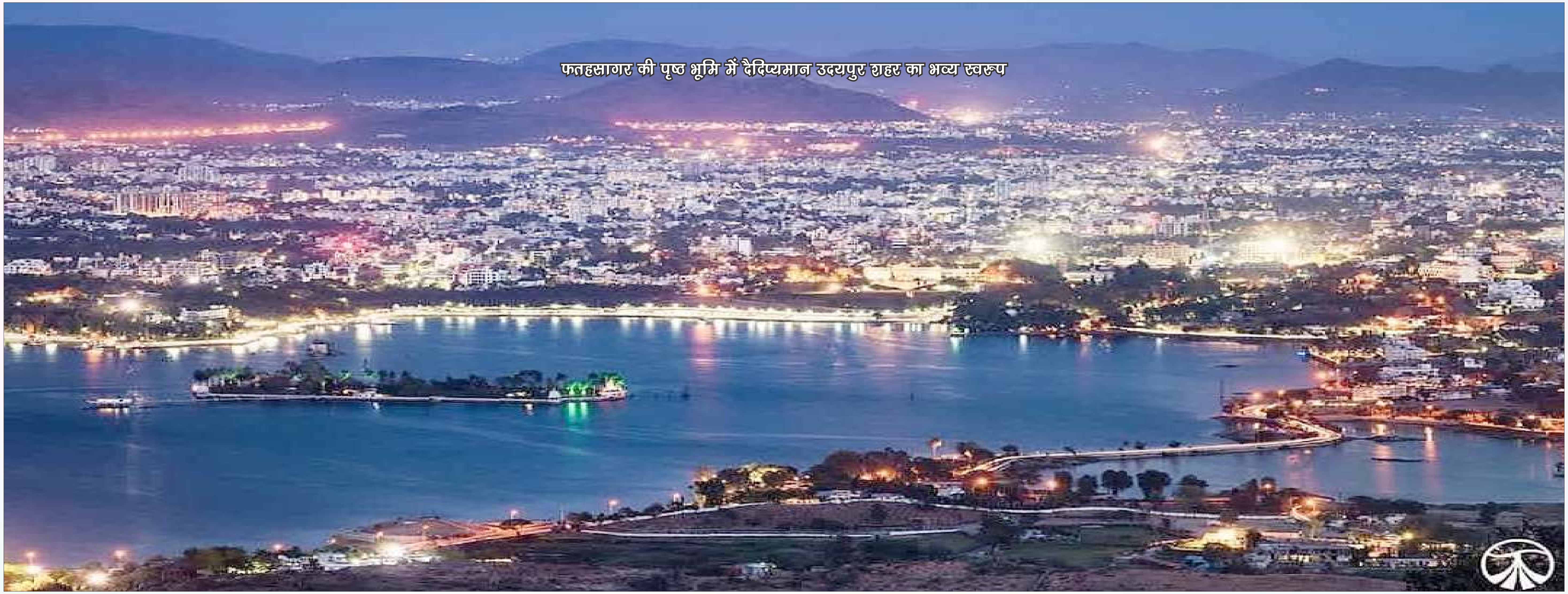
फतहसागर की पृष्ठ भूमि में देदिप्यमान उदयपुर शहर का भव्य स्वरूप

महाराणा भोपाल सिंह जी (1930–1955) : महाराणा भोपाल सिंह जी एक अत्यन्त दूरदृष्टि की सोच रखते थे। उन्होंने अपने और अपने लोगों के लिए एक ही जीवन शैली की परिकल्पना की और बाहर व भीतर बुराई से लड़े। इनका जन्म 22 फरवरी, 1884 में महाराणा फतह सिंह जी के यहाँ हुआ था। 16 वर्ष की छोटी अवस्था में ही उन्हें कमर के नीचे तक लकवा हो गया था लेकिन यह घटना उन्हें अपने पूर्वजों के साहस एवं बहादुरी को अंगीकार करने से नहीं रोक सकी। अपने पिता की मृत्यु के बाद वर्ष 1930 में वे सिंहासन पर आरूढ़ हुए, लेकिन वर्ष 1921 से सत्ता का प्रयोग कर रहे थे जब अंग्रेजों ने उनके पिता महाराणा फतह सिंह जी की शक्ति पर अंकुश लगाया और उन्हें अपने उत्तराधिकारी के पक्ष में इस्तीफा देने की सलाह दी। महाराणा भोपाल सिंह जी को 13 अगस्त, 1921 को शासन करने की शक्ति दी गई और उन्होंने उस अशांति के युग में भारत का नेतृत्व किया, जब देश स्वतंत्रता के लिए लड़ रहा था। 24 मई, 1930 को वे पूर्ण रूप से राज्य के शासक बने। वे देशभर में हो रहे परिवर्तनों को देख रहे थे और राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित कर रहे थे। अपने पूर्वजों की तरह उन्होंने अपने राज्य के सामाजिक उत्थान के लिए विशेष रूप से लड़कियों के लिए विभिन्न स्कूलों और कॉलेजों का निर्माण करवाया। उन्होंने अपने राज्य की सामाजिक एवं न्यायिक शक्तियों में सुधार किया। एक पर्यावरणविद् के रूप में उन्होंने अरावली के लिए दीर्घकालीन वन्यकरण कार्यक्रम भी आयोजित किये।

ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्रता के बाद उन्होंने अपने राज्य को राजस्थान संघ में विलय कर दिया और भारत सरकार द्वारा 18 अप्रेल, 1948 को उन्हें राजस्थान मे महाराज प्रमुख के रूप में नियुक्त किया गया, जो भारत में अपनी तरह का एकमात्र खिताब था, जो 4 जुलाई, 1955 तक उनके पास रहा। उन्होंने अपने लोगों और उनके हितों की सदैव रक्षा की, भले ही मेवाड़ की संप्रभुता समाप्त हो गई थी। 4 जुलाई, 1955 को उनकी मृत्यु हो गई। वर्ष 1955 में महाराणा भगवत सिंह का उनके दत्तक उत्तराधिकारी के रूप में चयन हुआ।

महाराणा भूपाल सिंह जी में कुछ शारीरिक विशेशताओं का अभाव था, फिर भी उन्होंने अपने साहस से अंत तक संघर्ष किया और वे एक महान् शासक सिद्ध हुए तथा अपने सूर्यवंशी पूर्वजों के गौरव को बनाए रखते हुए देशभक्ति की गहरी भावना के साथ भारत के अशांत युग में मेवाड़ का मार्गदर्शन किया। उन्हें माननीय मेजर जनरल, भारतीय सेना 15 अक्टूबर, 1946 (पहले मानद लेफ्टिनेन्ट कर्नल 4 अगस्त, 1939) एवं मानद कर्नल इंडियन ग्रेनेडियर 1 जून, 1954 का सम्मान मिला। जून, 1919 को महाराज कुमार भूपाल सिंह को केसीआईई का खिताब मिला। राजपूताने में महाराज कुमार को ऐसी उपाधि मिलने का यह पहला अवसर था। वर्ष 1971 में भारत के संविधान के 26वें संशोधन के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा रियासतों, विशेशाधिकारों और पारिश्रमिक (प्रीविपर्स) सहित सभी अधिकारिक प्रतीकों को समाप्त कर दिया गया।

महाराणा भूपाल सिंह जी का भूपाल सागर से गहरा नाता है। इन्हीं के नाम से इस कस्बे का नाम करेड़ा से भूपाल सागर पड़ा। इनके द्वारा इस क्षेत्र की मुख्य समस्या पेयजल और सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बड़ा सागर नामक तालाब का निर्माण करवाया गया। बाद में इस क्षेत्र में वर्ष 1932 में एक शक्कर की मिल स्थापित की गई जो 'दी मेवाड़ शुगर मील' के नाम से विख्यात् हुई। साथ ही पानी की पर्याप्त उपलब्धता के कारण धान और गन्ना यहाँ के किसानों की प्रमुख फसलें बन गई। कम ब्याज पर किसानों को कर्ज देने के लिए 'कृषि सुधार' नामक कोष स्थापित किया गया जिससे अधिक ब्याज पर महाजनों से सूद लेने की आवश्यकता लगभग समाप्त हो गई। किसानों को वैज्ञानिक ढ़ंग से कृषि करने हेतु प्रोत्साहित किया गया। इसके लिए उदयपुर में कृषि फार्म हाउस भी खोला गया।

व्यापार के प्रमुख केन्द्र भीलवाड़ा में 'भूपालगंज' नामक मण्डी बनाई गई। बिना लाइसेन्स के शराब की मट्टियाँ खोलने, बिक्री करने, अफीम व गांजा पैदा करने एवं आमतौर पर बेचने पर रोक लगा दी गई। लोगों में शराब, अफीम आदि व्यसनों की लत कम करने के लिए 'मादक प्रचार सुधारक संस्था' की स्थापना की गई। मावली से मारवाड़ जंक्शन तक रेलवे लाइन बढ़ाने का कार्य शुरू किया गया। उदयपुर शहर में सफाई व बिजली व्यवस्था सुनियोजित ढ़ंग से की गई। विभिन्न दवाखाने खोले गये जिसके अन्तर्गत महाराणा भूपाल चिकित्सालय की स्थापना भी की गई। विद्यार्थियों को हाई स्कूल की पढ़ाई होने के बाद बाहर जाना पड़ता था इसलिए मेवाड़ में ही कॉलेज की स्थापना की गई। एम.बी. कॉलेज के रूप में ख्याति अर्जित की। भूपाल नोबल्स स्कूल खोला गया जिसके लिए एक लाख रुपये व एक बड़ा मकान मुहैया करवाया गया। यहाँ उन छोटे सरदारों के लड़के पढ़ते थे जो अजमेर के मेयो कॉलेज का खर्च नहीं उठा सकते थे। यह आज भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध है।

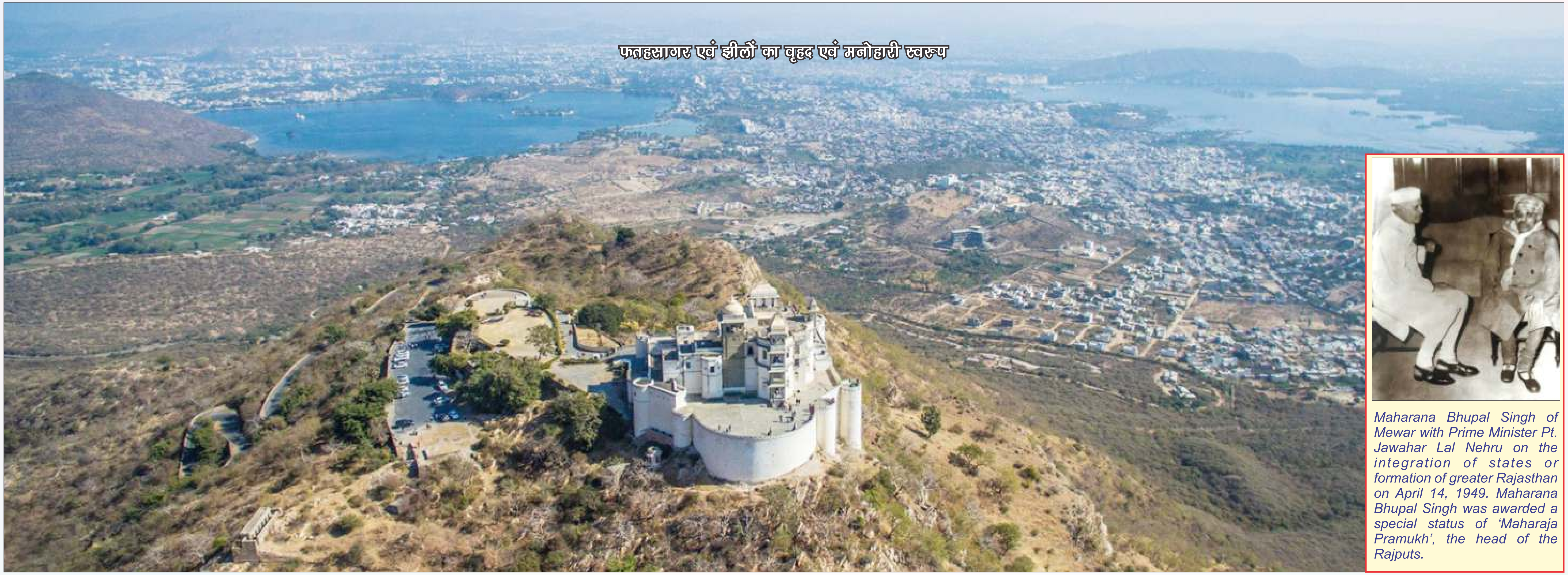

Maharana Bhupal Singh of Mewar with Prime Minister Pt. Jawahar Lal Nehru on the integration of states or formation of greater Rajasthan on April 14, 1949. Maharana Bhupal Singh was awarded a special status of 'Maharaja Pramukh', the head of the Rajputs.

उदयपुर : गौरवमयी इतिहास, संस्कृति संरक्षण एवं प्राकृतिक सम्पदा का धनी

प्रस्तावना : हिमालय, हिन्दुकुश पर्वत, सिन्धु (हिन्दू) नदी, अरब सागर, श्रीलंका, बंगाल की खाड़ी, हिन्दोशिया, ब्रह्म प्रदेश और ब्रह्मपुत्र नदी के विस्तृत दक्षिण एशियाई उप–महाद्वीप में फैली विश्व की एक प्रधानतम् हिन्दू संस्कृति को सुरक्षित रखने के सतत् संघर्ष में मेवाड़ भू–भाग की अपनी विशेष भूमिका रही है। प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित मेदपाठ ही आज के मेवाड़ के नाम से विश्व–विख्यात है। मेवाड़ भूभाग की अपने संघर्ष में अपनी संस्कृति को अक्षत रखने के लिए समय की तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार अपनी राजधानियाँ नागदा (प्राचीन नाम नागघटा, उदयपुर के उत्तर में 20 कि.मी.), आहाड़ (उदयपुर से 3 कि.मी.), चित्तौड़गढ़ (उदयपुर से 115 कि.मी.), चावण्ड (उदयपुर से 45 कि.मी.) और अरावली की वादियों में स्थित उदयपुर में स्थानान्तरित करनी पड़ी। उदयपुर की स्थिति इन सभी स्थलों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त एवं प्रमाणित है।

मेवाड़ – संस्कृति संरक्षण : यदि हम उदयपुर के इतिहास को विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्रतीत होगा कि विश्व में कोई भी राजवंश ऐसा नहीं हुआ जिसका शासन लगभग 1214 वर्षों (734 ए.डी. से 1947) तक लगातार बना रहा। विश्व इतिहास में कदाचित कभी भी ऐसी घटना घटित हुई जब किसी सुस्थापित राजवंश ने एक सशक्त गणराज्य की स्थापना के लिए अपनी स्वेच्छा से अपने राज्य को समर्पित किया हो। उदयपुर रियासत को भारतीय गणराज्य में विलीन करने का साहसिक और दूरदृष्टिपूर्ण निर्णय तत्कालीन महाराणा भूपालसिंह जी ने लिया था।

मेवाड़ का इतिहास अपनी गौरवमयी विशिष्टताओं के लिए विश्व में अपनी एक अलग ही पहचान रखता है। यहां के महाराणाओं के कुशल नेतृत्व में अपनी संस्कृति और स्वतंत्रता के लिए मेवाड़वासी आक्रमणकारियों से लोहा लेते रहे। धन लोलुपता और अन्य जनपदों, रियासतों, राज्यों और देशों की स्वतन्त्रता छिनने की प्रवृत्ति मेवाड़ में नहीं रही। सभी धर्मों, नैतिक मूल्यों, कृषि, ज्योतिष, समाजशास्त्र, भवन निर्माण, भूगोल, धातु विज्ञान एवं जल संसाधनों के विकास का ध्येय सदैव दृढ़ बना रहा। महाराणा प्रताप की अपने जैन गुरु के प्रति गहरी निष्ठा थी। हिन्दू, मुसलमान आदि सभी धर्मों और पंथों को अपनी जीवनचर्या के लिए संरक्षण प्राप्त था। मेवाड़ राज्य चिन्ह संक्षेप में अपने सभी सिद्धान्तों को उजागर कर देता है। मेवाड़ राज्य का राजचिह्न और उसमें लिखी इबादत **''जो दृढ़ राखे धर्म को, तिहि राखे करतार''** अर्थात् ईश्वर उन्हीं व्यक्तियों को संरक्षण देता है जो सत्य की राह पर चलते हैं। यह सन्देश विश्व के सभी धर्मों और ग्रन्थों का मार्गदर्शक दर्शन है।

मेवाड़ के शासकों ने अपने आपको कभी भी राजा नहीं माना। उन्होंने अपने आपको जन प्रतिनिधि और दीवान, प्रधानमंत्री तक ही सीमित रखा। मेवाड़ की सुरक्षा सेनाओं में सभी जातियों, सभी धर्मों और आदिवासियों की क्षमताओं का उत्तम तालमेल था। महाराणा प्रताप की सेना के सेनापतियों, झालामान (क्षत्रिय), शेरशाह सूरि के पौत्र हाकिम खाँ, भीलू राणा आदि सम्मिलित थे। देश और संस्कृति की रक्षा हेतु अपने प्राणोत्सर्ग के लिए जितने अधिक उदाहरण उदयपुर और मेवाड़ में मिलते हैं उतने कदाचित् विश्व के किसी अन्य भूभाग में मिल सकें। मेवाड़ की वीर ललनाओं ने जीते–जी अपने आपको अग्नि में समर्पित कर संघर्ष के लिए प्रेरणा दी। औरंगजेब के साथ सैद्धान्तिक संघर्ष से विचलित होते देखकर नववधू हाड़ीरानी ने अपने सेनानायक सलूम्बर सरदार पति को अपना सिर काटकर शत्रु पर विजय पाने की सौगात दी।

मेवाड़ राज्य के शासनाध्याय के संघर्ष में आदिवासी भील समाज के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। वे अपना रक्त देकर सामाजिक सुरक्षा के प्रति अपना समर्पण व्यक्त करते थे और सिंहासन पर प्रतिष्ठित नव नियुक्त शासक को भी सर्वप्रथम खेत में हल चलाकर अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करनी होती थी। शरणागत रक्षा मेवाड़ की संस्कृति का एक प्रमुख अंग था। मेवाड़ के शासकों ने शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ), हल्दीघाटी के युद्ध में बन्दी बनाई गई मुगल बेगम और औरंगजेब की बेगमों को मेवाड़ राज्य ने संरक्षण दिया था। उनके राखी के अनुरोध को स्वीकार कर बहन का दर्जा दिया गया, ऐसे उदाहरण विश्व इतिहास में मुश्किल से ही मिल सकते हैं। यह मेवाड़ की संस्कृति एवं परम्परा की एक अनूठी झलक थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उदयपुर के तत्कालीन महाराणा भूपाल सिंह जी ने राष्ट्रीय एकता एवं संघटनात्मक शक्ति को केन्द्रित करने के लिए अपने राज्य की सत्ता को सहर्ष समर्पित कर पं. जवाहरलाल नेहरू को गदगद् कर दिया।

ऐतिहासिक, प्राकृतिक व मनोहारी नगर – उदयपुर : राजस्थान के दक्षिणी छोर पर चारों ओर अरावली पर्वत शृंखलाओं से घिरा प्राकृतिक व मनोहारी झीलों से युक्त उदयपुर शहर पर्यटकों हेतु एक आदर्श स्थल है। इस नगर की विशेषता रही है कि इसकी स्थापना राजधानी नगर के उद्देश्य से ही की गई। प्रारम्भिक काल से ही भारतीय संस्कृति, स्थापत्य कला, वास्तुविद्या एवं नगर बसावट के अनुरूप इसकी संरचना और निर्माण की शास्त्रीय परम्परा रही है। बारूद के आविष्कार के कारण मेवाड़ की राजधानी के रूप में चित्तौड़गढ़ बहुत असुरक्षित हो गया था। नई राजधानी के

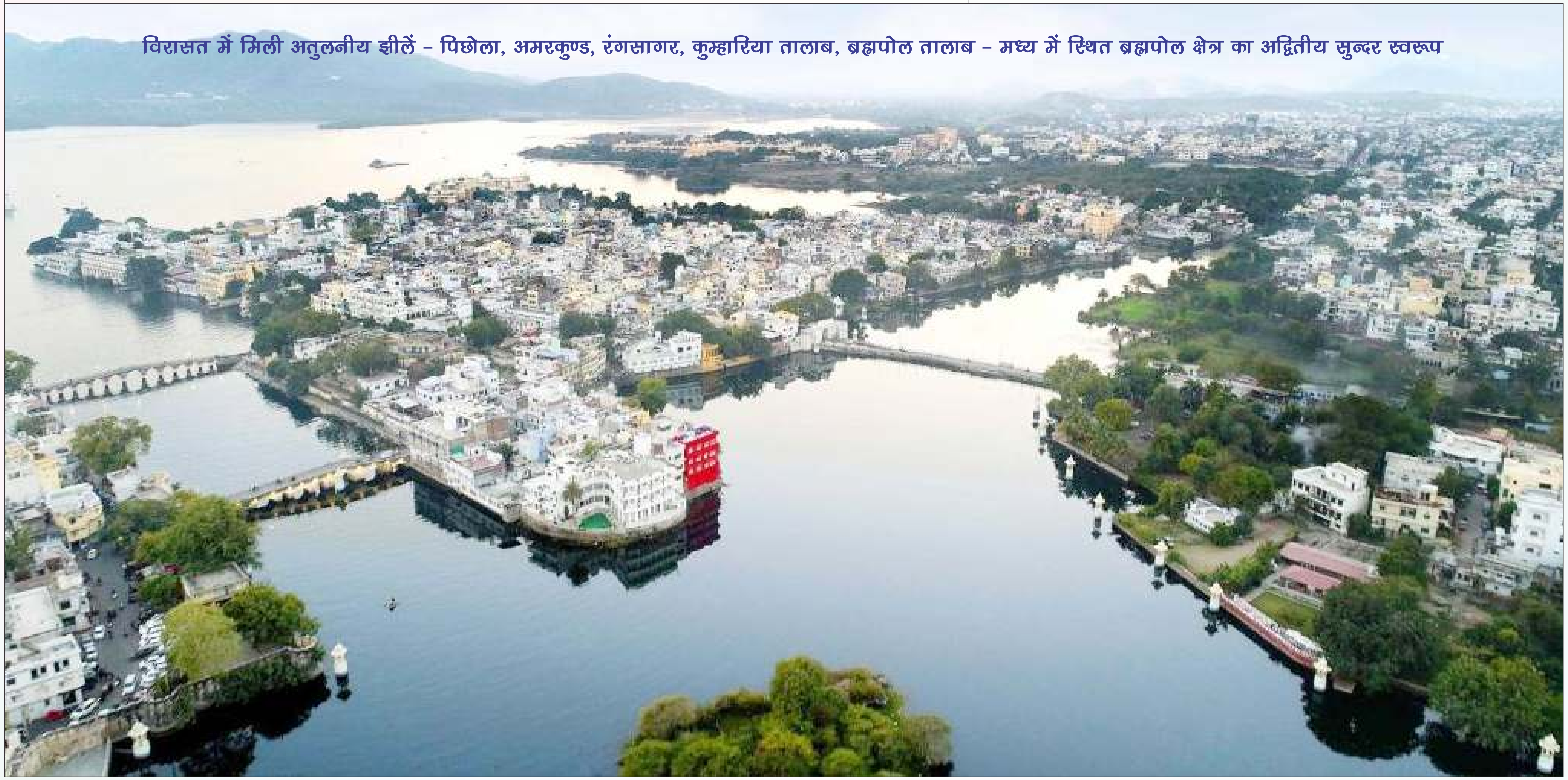

विरासत में मिली अतुलनीय झीलें – पिछोला, अमरकुण्ड, रंगसागर, कुम्हारिया तालाब, ब्रह्मपोल तालाब – मध्य में स्थित ब्रह्मपोल क्षेत्र का अद्वितीय सुन्दर स्वरूप

लिए अधिक सुरक्षित तथा पहाड़ियों से घिरे हुए ऐसे स्थान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, जहाँ बारूद की मार से बचा जा सकें। इस दृष्टि से अरावली पर्वत शृंखलाओं से घिरे इस स्थान को मेवाड़ के तत्कालीन सूर्यवंशी महाराणा उदयसिंह (1537–1572 ई.) ने देवड़ा जाति के लोगों से प्राप्त कर 16 मार्च 1559 में धूणीमाता मन्दिर (वर्तमान राजमहल में स्थित) नामक सुरक्षित स्थान पर उदयपुर की नींव रखीं तथा मेवाड़ की राजधानी के रूप में विकसित करने का निर्णय किया। चित्तौड़गढ़ पर मुगलों का आधिपत्य हो जाने के पश्चात् सन् 1567 (वि.स. 1624) में यहाँ नवस्थापित राजमहलों में महाराणा उदयसिंह ने विधिपूर्वक प्रवेश किया तथा महाराणा उदयसिंह के नाम से ही इस नगर का ''उदयपुर'' नामकरण किया गया। उदयपुर नगर 23°49′ से 25°28′ उत्तरी अक्षांश तथा 73°11′ से 75°49′ पूर्वी देशान्तर के बीच समुद्र की सतह से 900 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है तथा बेड़च (आहाड़) नदी के पश्चिम तथा पिछोला झील के पूर्व में उत्तरी–दक्षिणी पहाड़ी के दोनों पार्श्व पर बसा हुआ है।

उदयपुर की कला, स्थापत्य एवं झील क्षेत्र में निर्माण

कला और स्थापत्य : महाराणा उदयसिंहजी तथा उनके पुत्र महाराणा प्रतापसिंहजी के शासनकाल का अधिकांश समय युद्ध और सैनिक अभियानों में व्यतीत होने के कारण, यह नव स्थापित नगर उस समय सम्पूर्ण रूप में एक साथ विकसित नहीं हो पाया। सन् 1615 में मेवाड़ और मुगलों के मध्य संधि हो जाने के उपरान्त शान्ति–व्यवस्था कायम होने के पश्चात् ही उदयपुर नगर के अधिकांश निर्माण कार्य सम्पन्न हुए और यह एक नगर के रूप में विकसित हुआ। ऐसी स्थिति में उदयपुर नगर की रचना एवं सम्पूर्ण निवेश व्यवस्था में मध्यकालीन भारत की पुर निवेश व्यवस्था एवं सिद्धान्तों की व्यावहारिक स्तर पर हूबहू अनुपालना देख पाना बहुत कठिन है, फिर भी उदयपुर नगर के राजमहलों की स्थिति, सम्प्रति विद्यमान मार्ग, रथ्याएँ, गलियाँ व उनके आधार पर विभाजित मौहल्लों से नगर का उभरने वाला स्वरूप, भिन्न–भिन्न वर्गों–वर्णों, व्यवसायों से सम्बद्ध लोगों की अवशिष्ट बस्तियाँ, नगर–प्राकार के अवशिष्ट भाग एवं उसमें बने प्रवेश–द्वारों की संरचना तथा उनकी निर्माण पद्धति और समसामयिक ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर उदयपुर नगर के स्थापत्य निवेश के सन्दर्भ में किया गया अध्ययन निश्चिततया एक रुचिकर विषय–वस्तु का उद्घाटन करता है। लेकिन इस विषय–वस्तु की विवेचना करने से पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि संक्षेप में भारत की मध्यकालीन पुरनिवेश सम्बन्धी अवधारणाओं और व्यवस्थाओं पर दृष्टिपात किया जाए, जिससे उदयपुर नगर के स्थापत्य–निवेश के सौन्दर्य तथा अभियांत्रिकी को समझने में बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

भारतीय नगर–निवेश अथवा पुर–निवेश के प्रसंग में प्राचीन एवं मध्यकालीन शिल्प–ग्रन्थों एवं साहित्य में विपुल मार्गदर्शन उपलब्ध है। महाभारत में ऐसा उल्लेख है कि राजधानी–नगर चारों तरफ से पहाड़ियों एवं कृत्रिम रूप में बनाई गई सुदृढ़ प्राचीर से भली प्रकार परिवेष्ठित एवं रक्षित होना चाहिए। अपराजितपृच्छा नामक शिल्प–शास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ में उल्लेख है कि दो नदियों का संप्रवाही तथा जलयुक्त स्थान अथवा पहाड़ियों के निकट की भूमि किसी नगर के निर्माण की दृष्टि से सर्वोत्तम स्थल होती है। इसी प्रकार कामसूत्र, मयमत तथा मानसार नामक शिल्प–शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक नगर भव्य प्राचीर से आरक्षित होना चाहिए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नगर रचना के बारे में उल्लेख किया गया है कि वास्तुविद्या विशेषज्ञों के निर्देशानुसार प्रत्येक नगर का निर्माण पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन राजमार्गों के आधार पर करना चाहिए तथा इन छह राजमार्गों से उभरने वाली स्थिति के अनुरूप नगर में गृह–निर्माण की भूमि के विभाग करने चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह (12) प्रवेशद्वार होने चाहिए जिनमें जल, थल तथा गुप्त मार्ग बने होने चाहिए। नगर के सुदृढ़ भूमि–भाग में राजभवनों का निर्माण करना चाहिए। नगर के प्रमुख देवप्रासाद नगर के मध्य भाग में निर्मित होने चाहिए तथा विभिन्न वर्णों, वर्गों व जातियों के लोगों के निवास के मौहल्लें अलग–अलग होने चाहिए।

भारतीय नगर या पुर–निवेश और मुख्यकर मध्यकालीन भारत के पुर–निवेश के सन्दर्भ में मध्यकाल में रचे गये स्थापत्य–कला सम्बन्धी दो प्रमुख ग्रन्थों की व्यवस्थाओं का उल्लेख यहाँ पूर्णतया प्रासंगिक है। ये दोनों ग्रन्थ क्रमशः 'समरांगण सूत्रधार' तथा 'राजवल्लभ' के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से प्रथम की रचना ग्यारहवीं शताब्दी में 'महाराजा भोज' द्वारा तथा दूसरे की रचना पन्द्रहवीं शताब्दी में महाराणा कुंभा के दरबारी शिल्प–शास्त्री 'सूत्रधार मण्डन' द्वारा की गयी थी। इन दोनों विशुद्ध वास्तु शास्त्र या स्थापत्य–कला से सम्बद्ध ग्रन्थों में भी पुर या नगर–निवेश की विस्तृत व्याख्या उपलब्ध हैं। समरांगण सूत्रधार में नगरों के ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ, तीन प्रकार बताये गये हैं तथा प्रत्येक नगर को नगर प्राकार और परिखा से परिवेष्ठित कर नगर से बाहर पर्याप्त कृषि भूमि की उपलब्धि की दृष्टि रखकर सुरक्षित स्थान पर बसाये जाने के निर्देश दिए गए हैं। इस ग्रन्थ में प्रत्येक नगर को चतुःषष्टिपद वास्तुविकल्प के अनुरूप छह मुख्य मार्गों, सोलह कोष्ठों एवं नौ चबूतरों में विभक्त कर नगर का विन्यास करने के निर्देश किये गये हैं। समरांगण सूत्रधार में, इस प्रकार के विभाजन करने के पश्चात् नगर निर्माण के लिए निर्धारित भूमि के मध्य भाग का आलम्बन कर नगर के मध्य भाग में एक दिशा से दूसरी दिशा में जाने वाले एक प्रधान मार्ग के निर्माण का उल्लेख भी है, जो पक्का, मजबूत एवं सभी प्रकार की सुविधाओं से युक्त होना चाहिए तथा राजभवन से प्रारम्भ होना चाहिए, ऐसा उल्लेख किया गया है। समरांगण सूत्रधार का रचयिता इसके पश्चात् लिखता है कि प्रधान मार्ग के पास दोनों वंशों (भागों) पर दो महारथ्याओं (उपप्रधान मार्गों) का निर्माण करना चाहिए तथा नगर को खाई तथा विकट प्राकार (शहरपनाह) से परिवेष्ठित करना चाहिए। नगर प्राकार कपिशीर्षों (कंगूरों) कांडवारिणियों (छालदीवारी) दिशाकर्णों (कोनो) पर स्थित अट्टालिकाओं (बुर्जों) तथा प्रतोलियों (पोरियों) से आवेष्ठित महाद्वारों से सुसज्जित होनी चाहिए। यही नहीं, इस ग्रन्थ में नगर में जाति, वर्ण, व्यवसायनुरूप वसति–योजना, नगर के अन्दर और नगर के बाहर बनाये जाने वाले देव–प्रासाद के स्थान, नगराभ्युदय इत्यादि के बारे में भी पर्याप्त विस्तार से निर्देशन उपलब्ध हैं, जिनके व्यावहारिक स्वरूप को मूर्तरूप में मेवाड़, राजस्थान एवं भारत के कई नगरों में देखा जा सकता हैं।

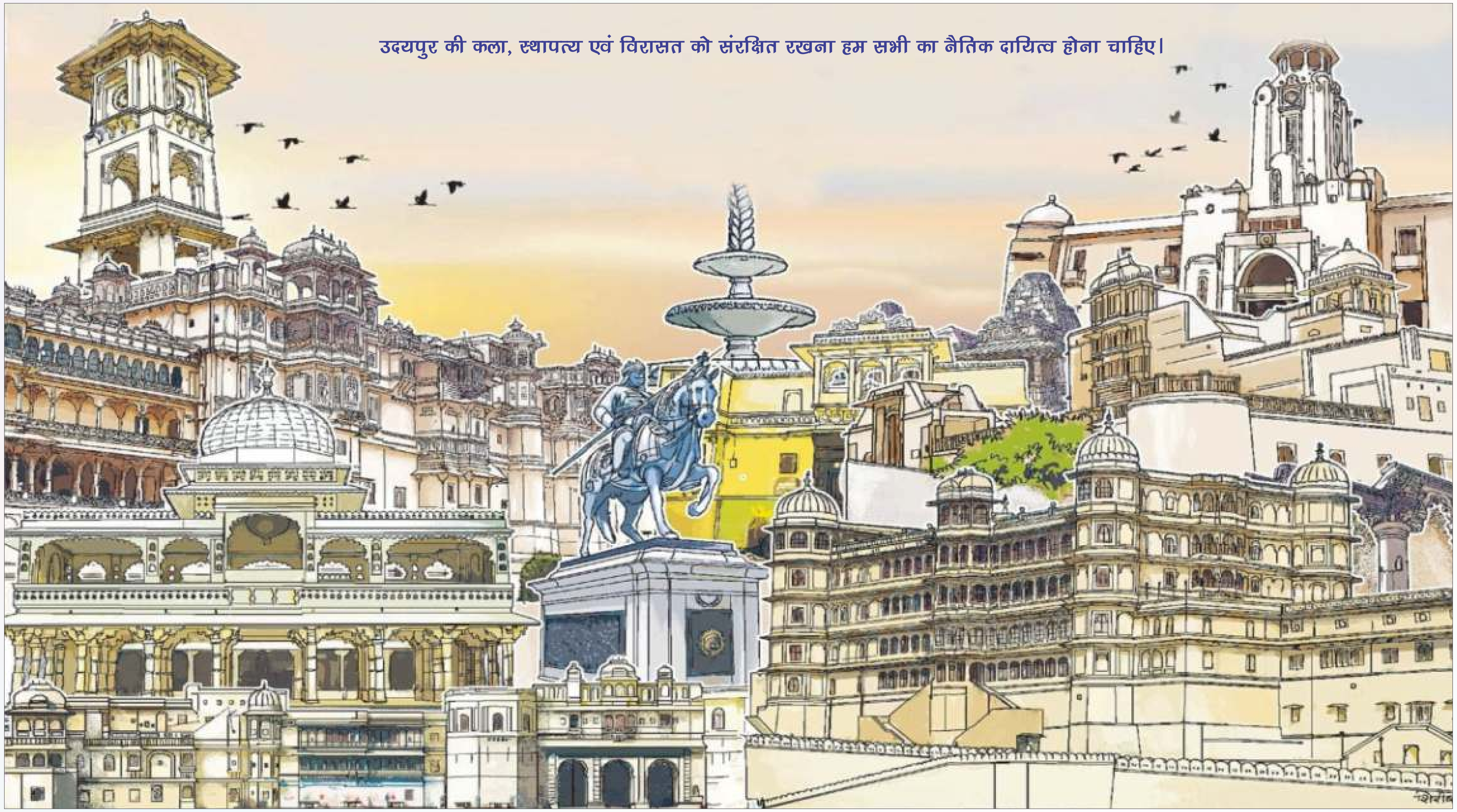

एक उत्तम नगर में चालीस बावड़ियाँ, दस कुएँ, छः तलैयाएँ या पोखर व तालाब होने चाहिए तथा जो चार प्रवेश द्वारों, चार कलापूर्ण आलिन्दों तथा एक मध्यवर्ती बारजे या गवाक्ष (बालकनी) से युक्त हो।

मध्यकालीन नगर–निवेश के सन्दर्भ में उद्घाटित होने वाली उपर्युक्त आधारभूत बातों को दृष्टि में रखकर मेवाड़ में पूरी 17वीं और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की कालावधि में निर्मित–विकसित हुए उदयपुर नगर के स्थापत्य–निवेश का विश्लेषण करने पर कतिपय आश्चर्यजनक तथ्य प्रकट होते हैं और यह प्रतीत होने लगता है कि वर्तमान में असम्बद्ध रीति से बसाया गया प्रतीत होने वाला, एक ही शासक के काल में पूरा निर्मित न होकर अलग–अलग शासकों के काल में टुकड़ों–टुकड़ों में बनने–बसने वाले उदयपुर नगर का निर्माण एवं विकास स्थापत्य कला के मध्यकालीन शास्त्रीय मानदण्डों को दृष्टि में रखकर पूर्व योजनानुसार किया गया था तथा इसके निर्माण–विकास में योगदान देने वाले प्रत्येक शासक तथा निर्माण कार्य सम्पन्न करने वाले प्रत्येक शिल्पी ने इसकी मूलभूत योजना को विकृत न होने देने पर पूरा–पूरा ध्यान दिया था। ऐसी प्रतीति होने के कारक तथ्य निम्नलिखित है:–

1. उदयपुर नगर को बसाने के लिए जो स्थान चुना गया है, वह प्राचीन एवं मध्यकालीन स्थापत्य कला के मानदण्डों के बिल्कुल अनुरूप है; उदयपुर नगर पहाड़ी एवं वन्य भागों से परिवेष्ठित सुरक्षित कुछ ऊँची पहाड़ी भूमि पर बसाया गया है जो समुद्र की सतह से 900 मीटर ऊँचा है।
2. उदयपुर नगर को बसाने में पहाड़ी स्थल के चयन के

उपरान्त भी आत्मनिर्भरता के शास्त्रीय दृष्टिकोण को पूर्णरूपेण ध्यान में रखा गया है। उदयपुर नगर के नगर–प्राकार जिसका अब थोड़ा पूर्वी–दक्षिणी भाग ही अवशिष्ट है, के बाहर चारों ओर पर्याप्त मात्रा में कृषि भूमि उपलब्ध थी और नगर के बाह्य आभ्यान्तरिक भाग प्राकृतिक जल स्रोतों से परिपूर्ण थे।

3. उदयपुर नगर को लगभग तीन दिशाओं–उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण में घेरती हुई करीब पूरी एक शताब्दी से भी अधिक समय की कालावधि में धीरे–धीरे बनकर सम्पूर्ण होने वाली 8 से 10 मीटर तक ऊँची एवं 4 मीटर चौड़ी एक सुदृढ़ समुन्नत, बारह द्वारों व कर्णों पर बुर्जों से युक्त ऊपर कपिशीर्षों (कंगूरों) तथा काण्डवारिणियों (छाल दीवारियों) के अलंकरण वाली नगर–प्राचीर से परिवेष्ठित किया गया था। उदयपुर नगर के नगर–प्राकार के निर्माण का कार्य महाराणा अमरसिंह प्रथम द्वारा सन् 1615 में प्रारम्भ करवाया गया था। इसके बहुत से भाग को महाराणा अमरसिंह के पुत्र महाराणा कर्णसिंह ने बनवाया था तथा यह महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय(1710–1734 ई.) के काल में पूर्ण हुआ था। उदयपुर नगर की नगर प्राचीर उदयपुर नगर के शास्त्रोक्त निर्माण के कई तथ्य उद्घाटित करती है :–

(क) इस नगर प्राकार में बारह द्वार रखे गये थे। इन द्वारों में से नगर प्राकार के अधिकांश भाग को तोड़ दिए जाने के कारण अब ग्यारह ही शेष हैं तथा चार द्वारों के आगे बनी पुतोलियों में से दो द्वारों की पुतोलियां ही अवशिष्ट हैं, जो नगर प्राकार की सभी दिशाओं में बने थे। उदयपुर नगर की नगर प्राचीर के दक्षिण भाग में, जो अब भी सुरक्षित है, में बने द्वारों को जलबुर्ज, रमणपोल तथा आग्नेय कोण में बने द्वार को किशनपोल कहा जाता है। नगर–प्राकार के पूर्वी भाग में बने द्वारों को उदयपोल (उदियापोल) एवं सूरजपोल तथा ईशान कोण में बने द्वार को दिल्ली दरवाजा कहा जाता है। नगर–प्राकार के उत्तरी दिशा में बने एक द्वार, जो अब नहीं है को दण्डपोल कहा जाता था और इसी दिशा में बने वायव्य कोण की तरफ के द्वार को हाथीपोल कहा जाता है। नगर–प्राकार के पश्चिमी भाग में बने द्वारों को क्रमशः ब्रह्मपोल, अम्बापोल, चाँदपोल एवं सीतापोल (सत्तापोल) कहा जाता है, जिनमें से चार प्रमुख द्वारों के आगे प्रतोलियां (पोरिया) भी बनी हुई थी। उदयपुर के नगर प्राकार के बारह द्वारों की यह व्यवस्था कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं मण्डन के राजवल्लभ में दिए गए द्वार–व्यवस्था सम्बन्धी निर्देशों की अक्षरशः अनुपालना में की गई थी।

(ख) मण्डन के निर्देशों के अनुसार उदयपुर नगर को नगर–प्राकार में किशनपोल, सूरजपोल, दिल्ली–दरवाजा तथा हाथीपोल चारसिंह द्वार थे, जिन्हें आगे से प्रतोलियों से युक्त बनाया गया था। इन चारों द्वारों की प्रतोलियाँ (पोरियाँ) पूर्व दिशोन्मुख थी। सम्प्रति इन चारों सिंहद्वारों की प्रतोलियों में से किशनपोल एवं हाथीपोल की प्रतोलियां ही शेष रह गई हैं। दिल्ली दरवाजा और सूरजपोल की प्रतोलियों को उदयपुर नगर को वर्तमान काल के सौन्दर्यबोध की अवधारणानुकूल सुन्दर बनाने के लिए तथा नगर में आवासीय सुविधा को बढ़ाने की दृष्टि से नगर–प्राकार के साथ तुड़वा दिये गये हैं। मेवाड़ की मध्यकालीन स्थापत्य–कला की इस अनुपम शास्त्रीय धरोहर, उदयपुर नगर की नगर प्राचीर को तुड़वाने का कार्य स्थापत्य–कला के महत्त्व को नहीं जानने के कारण हुआ समझा जा सकता है, किन्तु जिस किसी भी कारण से हुआ, यह कार्य, स्थापत्य–स्मारकों के संरक्षण के विपरीत किया गया जघन्य अपराध है।

विरासत में मिली सुन्दर हवेलियाँ

(ग) उदयपुर–नगर की इस नगर प्राचीर से, उदयपुर शहर का जो मानचैत्रिक स्वरूप उभरता है, वह मण्डन द्वारा राजवल्लभ में उल्लेखित बीस प्रकार के नगरों में से चौथे 'वृतायत वारूण' संज्ञक नगर जैसा दिखाई पड़ता है, जिसे मण्डन ने उत्तम कोटि का नगर बताया है। उदयपुर–नगर के उभरने वाले इस वृतायत वारुण स्वरूप के आधार पर यह अनुमान लगाने में सहयोग मिलता है कि इस नगर को बसाने के पूर्व ही यह निश्चय कर लिया गया था कि इस नगर को किस कोटि का बनाया जाना है।

(घ) नगर की इस प्राचीर या प्राकार में स्थान–स्थान पर कई अट्टालिकाएँ(बुर्जे) बनाई गयी थीं, जिनमें जलबुर्ज, खाँजीपीरबुर्ज, पुरोहितबुर्ज इत्यादि प्रमुख थी, जिन पर बड़ी–बड़ी तोपें रहती थीं। इसी प्राचीर की परिधि में आने वाली नगर की दक्षिण दिशा में स्थित 'माछला मगरा' नाम से पहचानी जाने वाली एक पहाड़ी की चोटी पर एकलिंगगढ़ नामक एक सैनिक लघुदुर्ग या किला भी बनाया गया था जो मुख्यतः तोपें, बारूद इत्यादि, बड़े सैनिक साज–सामान के आगार के रूप में उपयोग में आता था। इस किले में तोपची–सैनिकों के आवास की व्यवस्था तथा पहाड़ी की चोटी पर पानी की सुविधा जुटाई गयी थी। इस लघु किले के खण्डहर अब भी माछला मगरा पर दृष्टव्य हैं।

(च) स्थापत्य–कला के ग्रन्थों के निर्देशानुसार उदयपुर–नगर की नगर–प्राचीर के आगे सम्पूर्ण नगर को घेरती हुई एक खाई बनाई गयी थी, जो लगभग 15 से 20 मीटर तक चौड़ी एवं 5 मीटर गहरी थी। यह खाई पहले पानी से भरी रहती थी तथा नगर का गंदा पानी भी पहले इसी खाई में आकर गिरता था। इस खाई से एक बड़ी चौड़ी गटर निकाकर उदयपुर नगर की स्थापनाकाल में बनवाये गये उदयसागर तालाब से मिलाई गयी थी। उस गटर के माध्यम से खाई में एकत्रित होने वाला अतिरिक्त पानी आगे बढ़कर उदयसागर में चला जाता था। किन्तु विकास और प्रगति के नाम पर उस खाई को भी नगर–प्राकार के तोड़े जाने के साथ–साथ पाट दिया गया है, जिनके परिणामस्वरूप उदयपुर नगर की पूर्व सुनियोजित रीति से प्रबन्धित जल–निकास व्यवस्था समाप्त हो चुकी है। उदयपुर नगर की नगर–प्राचीर के चारों ओर खाई का बनाया जाना भी नगर का स्थापत्य–कला के मध्यकालीन मानदण्डों के अनुरूप निर्मित किये जाने का द्योतक है।

हवेली, हाउस तथा हाईराइज इमारतें : पिछोला झील के पूर्वी किनारे पर स्थित 'राणा मगरी' के इर्द–गिर्द निर्मित राजमहल (सिटी पैलेस) के अतिरिक्त पिछोला झील के किनारों पर तथा आस–पास की ऊँचाइयों पर अनेकों हवेलियाँ निर्मित हुई थी जो कि कुछ मंजिल की रिहायशी इमारतें थी। इनमें मुख्य भवन के अतिरिक्त सेवकों के आवास, घोड़ों–हाथियों के लिए अस्तबल, गौशाला आदि से युक्त एक विस्तृत अहाता होता था। कुछ प्रभावशाली लोगों की हवेलियाँ पहाड़ियों पर बनी थी जिनमें पुरोहितजी, देलवाड़ा, करजाली, शिवरती, केलवा आदि हवेलियाँ प्रमुख थी। करजाली हवेली जगदीश मंदिर तथा हाथीपोल के बीच स्थित एक पहाड़ी पर बनी थी। पहाड़ी के आधार से लेकर इसकी चोटी तक निर्माण के तीन स्वतंत्र तल हैं। उसके बाद शिखर पर चार मंजिला मुख्य भवन है, जिसकी पाँचवी मंजिल पर चाँदणी (टैरेस) और 'घूमटा' (धारीदार गुम्बद) है। इस तरह यह 3+4+1 स्तरों की इमारत है। अपने मूल रूप में यह हवेली इत्र के व्यापारी गंधी द्वारा बनवाई गई थी, जो अपने समय के महत्वपूर्ण व्यापारी थे। जब हवेली एक सामन्त परिवार को हस्तान्तरित की गई तो इसमें अपेक्षित परिवर्तन तथा परिवर्द्धन किये गये। इसके विपरित राजमहल (सिटी पैलेस) पहाड़ी के चारों ओर निर्मित है, जो पहाड़ी की चोटी बाड़ी महल (शिव–प्रसन्न–अमर विराल) तथा समीपस्थ इमारतों के लिए बाग–बगीचों और पेड़–पौधों से युक्त एक टैरेस के रूप में विद्यमान है।

एक प्राचीन हवेली में घुटाई युक्त दीवार पर बनी पेन्टिंग तथा घुटाई प्लास्टर पर काँच का जड़ाऊ कार्य

नागरिकों के सामान्य घरों के अतिरिक्त राज्य के सामन्तों के साथ–साथ उच्च अधिकारियों (कोठारी, मेहता), व्यापारियों (गंधी), कवियों (चारण) आदि ने भी नई राजधानी में हवेलियाँ बनवाई। नए शहर के मुख्य मार्ग पर्याप्त चौड़े थे, जिस पर घोड़े, बैलगाड़ी, घोड़ा–गाड़ी आदि आसानी से आ–जा सकते थे, परन्तु गलियाँ काफी संकरी तथा लगभग 2 मीटर तक चौड़ी थी।

उदयपुर में चार मूलभूत दिशाएँ इस रूप में हैं :–

पूर्व	: उगमणो (सूर्य के उदय होने की दिशा)
पश्चिम	: आतमणो (सूर्य के अस्त होने की दिशा)
उत्तर	: धराऊ (उत्तरी तारे ध्रुव की दिशा)
दक्षिण	: लँकाऊ (लँका की दिशा)

आवास व्यवस्था में बड़े पैमाने पर परिवर्तन ब्रिटिश प्रभाव के कारण 1930 के दशक में आया, जब आधुनिक 'हाउस/बंगलों' का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इनमें पॉलिशयुक्त मोजेक फर्श, घरों में पाइप के माध्यम से जल वितरण व्यवस्था, विद्युत तार फिटिंग तथा प्रकाश व्यवस्था आरम्भ की गई। प्रभावशाली लोग हवेलियाँ त्याग कर 'हाउस/बंगलों' में आ बसे। गोवर्धन विलास स्थित शिकारवाड़ी, अम्बावगढ़ पर स्थित अचरोल हाउस (भोपाल प्रकाश), फतहसागर के किनारे स्थित लक्ष्मी विलास, बेदला हाउस, बाठेड़ा हाउस, गोगुन्दा हाउस आदि बेमिसाल इमारतों ने लोगों को विकास के इन संकेतों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया, जिसका परिणाम नगरकोट के बाहर छोटे बंगलों की नई कॉलोनियों के विकास के रूप में सामने आया जो विशेषकर भूपालपुरा, सरदारपुरा, फतहपुरा, अशोक नगर की कृषि–भूमियों (बाड़ियों) में तेजी से फैली।

इस काल में प्रारम्भिक घरों में शौचालय मुख्य निवास स्थल से अलग होते थे, परन्तु फ्लश शौचालयों के अपनाने पर धीरे–धीरे, भले ही अनिच्छापूर्वक, कमरों से जुड़े हुए शौचालयों के विचार स्वीकार कर लिये गये। नगर निर्माण के प्रारम्भिक दौर में, बीसवीं सदी के शुरूआती दिनों तक लोग ढूँढ़ा (शौच के लिए खुला सार्वजनिक स्थल) का प्रयोग करने में असुविधा महसूस नहीं करते थे।

सिविल इजीनियरिंग और मशीनीकरण की उन्नति और भूमि की उपलब्धता में कमी के चलते 20वीं सदी के अंतिम चरण में फ्लेटों वाली ऊँची इमारतों का प्रचलन बढ़ा। उदयपुर के नगर विकास प्रन्यास ने प्रारम्भ में अधिकतम् चार मंजिला इमारतों की ही अनुमति दी थी जो अब बढ़कर बेसमेन्ट के अतिरिक्त 10–15 मंजिलों की इमारतों तक हो गया है। हाल ही में 20 मंजिली इमारतों को भी अनुमति प्राप्त हो गई है।

यद्यपि शहर में आज के समय में बहु–निवासीय इकाइयों का विचार तेजी से बढ़ रहा है तथापि लोग अभी भी फ्लेट के मुकाबले में खुली जगह में रहने को वरीयता दे रहे हैं जिसके चलते बहुत सी बिल्डिंग खरीददारों के अभाव में खाली पड़ी हैं।

उदयपुर आवास : कई बार यह लिखा और बोला जाता है कि उदयपुर में संगमरमर से बने भव्य तथा चित्ताकर्षक महल हैं। वस्तु स्थिति यह है कि यहाँ आवास हेतु बने भवनों में संगमरमर के प्रयोग के लिए एक प्रकार की अनिच्छा दिखाई पड़ती थी, यद्यपि मंदिरों, देव प्रतिमाओं, अन्य मूर्तियों तथा बाँधों के निर्माण में इसका प्रयोग सामान्य रूप से मिलता था।

बारिश के पानी से होने वाले नुकसान से दीवारों को बचाने के लिए उन पर चूने और रेत का प्लास्तर किया जाता था। मुख्य कक्षों की आन्तरिक तथा बाहरी दीवारों पर 'घुटाई' से प्लास्तर किया जाता था। 'घुटाई' हेतु घट्टी में बुझे चूने (आरास–जले चूने को पानी में बुझाकर) को मार्बल पाउड़र के साथ गीला पीसकर चिकना प्लास्तर बनाया जाता है जिसका अनुपात 4 भाग मार्बल पाउड़र तथा 1 भाग चूना होता है, उसे मलमल के कपड़े से छाना जाता है। यह दीवार को चिकना, पॉलिशयुक्त और मार्बल जैसा स्वरूप प्रदान करता है। इसे पुनः चिकने पॉलिश वाले पत्थर से अधिक पॉलिश किया जा सकता है जिससे दर्पण जैसी फिनिशिंग प्राप्त होती है। इस पर सजावट के लिए चित्रण भी किया जा सकता है अथवा शीशे का जड़ाऊ कार्य भी किया जा सकता है।

दूसरे शाही निवास स्थानों की भाँति मुख्य राजमहल में भी यहाँ तक कि बाहरी दीवारों पर भी घुटाई का ही प्रयोग किया गया है जिससे इसके संगमरमर निर्मित होने का आभास मिलता है। वस्तुतः उदयपुर में एक भी महल अथवा हवेली संगमरमर से निर्मित नहीं थी, सिवाय फतहसागर पर

अपनी पूरी सुन्दरता के साथ खड़े 'मोती महल' के। पूर्णतः संगमरमर खण्डों में निर्मित यह इमारत मूल रूप से 'कँवरपदा का महल' के रूप में महाराणा करणसिंह के शासनकाल में जहाँ आज शंभु निवास है, वहाँ बनाई गयी थी। बाद में इसे विखण्डित कर मुख्य महल के जनाना भाग के सामने चौक में दुबारा जोड़ा गया। महाराणा फतहसिंहजी ने इसे वहाँ से हटवाकर फतहसागर की पाल पर पुनर्स्थापित कर दिया और इसे 'मोती महल' नाम दिया। जग–मंदिर, द्वीप महल भी भ्रामक रूप से संगमरमर से निर्मित महल माने जाते हैं। तथ्य यह है कि उदयपुर में 1900 ई.सं. से पूर्व निर्मित कोई भी महल अथवा घर संगमरमर अथवा ग्रेनाइट से निर्मित नहीं है। सुन्दर पृष्ठभूमि में बाँसद्रह पहाड़ी पर स्थित सज्जनगढ़ महल घुटाई प्लास्टर में है तथा फतहसागर की पाल पर स्थित मार्बल निर्मित 'मोती महल' उसके पीछे दिखाई दे रहा है। झील के एक द्वीप पर स्थित विश्व की छः मुख्य सौर वैधशालाओं में से एक वैधशाला की सफेद गुम्बद चूने से पुताई व सीमेन्ट निर्मित ढाँचे से युक्त है। ये तीनों इमारतें उदयपुर में प्रचलित भवन निर्माण परम्परा की तीन प्रमुख शैलियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

फतहसागर की मुख्य पाल पर स्थित विरासतकालीन 'मोती महल'

उदयपुर क्षेत्र सलेटी हरे रंग की नर्म कायान्तरित चट्टान, जिसे ग्रीन शिष्ट और फाइलाइट के नाम से जाना जाता है, की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। गढ़ाई के लिहाज से यह काफी सुगम भी है। फतहसागर के किनारे की रैलिंग तथा नक्काशीदार छज्जों के साथ–साथ उदयपुर के पुराने घरों की बालकनियाँ व्यापक रूप से इस पत्थर से बनी हैं। पुराने घरों से छतों की पट्टियाँ गोगुन्दा क्षेत्र के इसी प्रकार के पत्थरों से बनी थी और आज के शास्त्री सर्कल के पास अलका होटल के सामने इसका गोदाम (प्रोसेसिंग तथा ट्रेडिंग सेन्टर) था।

राजनगर मार्बल तथा ऋषभदेव सर्पेन्टाइनाइट उदयपुर की इमारतों में प्रयोग किये जाने वाले अन्य सजावटी पत्थर थे। शहर के औद्योगिक विकास तथा तकनीकी उन्नति के बाद अनेक प्रकार के पॉलिशयुक्त पत्थर यहाँ पर उपलब्ध हैं। क्वार्ट्जाइट के खण्ड चिनाई के लिए उपलब्ध हैं तथा अनेक स्थानीय नदियों से रेत अथवा गिट्टी उद्योग से प्राप्त चट्टानी धूल भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

अब चूने की जगह पोर्टलैण्ड सीमेन्ट ने ले ली है जिसका उत्पादन चित्तौड़–निम्बाहेड़ा क्षेत्र के विन्ध्य चूना पत्थर पर आधारित अनेक सीमेन्ट संयंत्रों में किया जा रहा है। छत के लिए आर.सी.सी. को वरीयता दी जाती है और आर.सी.सी. के सभी घटक उदयपुर में सहज उपलब्ध हैं।

झीलों के पास निर्माण निषिद्ध क्षेत्र : शहर की प्रसिद्ध झीलों के भराव क्षेत्र के किनारे पर अतिक्रमण एवं आस–पास के क्षेत्रों में अव्यवस्थित, बिना स्वीकृती एवं प्रशासनिक अनदेखी, चोरी–छुपे हो रहे निर्माण एवं इसके विपरीत नवीन निर्माण एवं पुराने मकानों के अवशेष झीलों में गिराने को देखते हुए राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा झीलों के आस–पास के क्षेत्र के अन्तर्गत 17 जनवरी, 1997 को निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में फतहसागर और पिछोला को शामिल किया गया। इसमें पिछोला के डाउनस्ट्रीम क्षेत्र को भी सम्मिलित कर लिया गया। 1997 की अधिसूचना को अतिक्रमित कर 10 दिसम्बर, 1999 को नई अधिसूचना जारी की गई और डाउनस्ट्रीम बाहर किया गया। डाउनस्ट्रीम अर्थात् जिसका पानी उदयपुर शहर स्थित मुख्य झीलों में नहीं गिरता है, इसे निर्माण निषिद्ध क्षेत्र से बाहर कर दिया।

उच्च न्यायालय के 8 मई, 2000 को दिए निर्देश संख्या 23(7) में 17 जनवरी, 1997 से अधिसूचित निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में किसी प्रकार की निर्माण स्वीकृति नहीं दी जायेगी लेकिन जो भूखण्ड 17 जनवरी, 1997 से पहले आवंटित हुए, उन पर यह आदेश लागू नहीं होगा। इस आदेश को न्यायालय ने 5 सितम्बर, 2000 से निर्देशित कर पाबन्द किया है कि 8 मई, 2000 का आदेश संशोधित कर निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में पूर्ण रोक रहेगी। केवल निगम के क्षेत्राधिकार के डाउनस्ट्रीम रावजी का हाटा, भट्टियानी चौहट्टा, घंटाघर, हाथीपोल आदि इसमें शामिल नहीं होंगे। निर्माण क्षेत्र में आदेश की अवहेलना का ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने 6 फरवरी, 2007 के आदेश में फिर से पूरे निर्माण निषिद्ध क्षेत्र और केचमेन्ट एरिया में निर्माण की स्वीकृति पर रोक लगा दी।

1997 की अधिसूचना के बाद वर्ष 1999 में लागू हुए नियंत्रित निर्माण क्षेत्र का दायरा लगभग 111 हेक्टेयर छोटा होकर कुल 1687 (1798–111 = 1687) हेक्टेयर का है। इस निर्माण नियंत्रित क्षेत्र के आधार पर भवन विनिमय 2013 को बनाया गया है। डाउन स्ट्रीम क्षेत्र में मकानों का निर्माण भूमि रूपान्तरण, पट्टे देने, उप विभाजन कराने, भूखण्डों के एकीकरण की कार्यवाही, नामान्तरण, नियमन आदि कार्य नगर विकास प्रन्यास और नगर निगम कर सकेंगे।

निर्माण निषिद्ध क्षेत्र – प्रभावित आबादी एवं क्षेत्रफल

वार्ड नं. 1 : कुल 227 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 22 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 2 : कुल 447 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 67 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 3 : कुल 194 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 29 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 4 : कुल 117 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 17 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 5 : कुल 72 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 50 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 6 : कुल 53 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 32 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 7 : कुल 114 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 37 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 8 : कुल 192 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 37 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 9 : कुल 493 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 33 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 10 : कुल 43 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 26 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 11 : कुल 13 हेक्टेयर क्षेत्रफल, संपूर्ण आबादी
वार्ड नं. 45 : कुल 11 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 9 हेक्टेयर में आबादी
वार्ड नं. 46 : कुल 10 हेक्टेयर क्षेत्रफल, संपूर्ण आबादी
वार्ड नं. 47 : कुल 14 हेक्टेयर क्षेत्रफल, 2 हेक्टेयर में आबादी
सीसारमा : 10 हेक्टेयर में आबादी

1798 हेक्टयर में 1.50 लाख लोग थे परेशान
14 वार्डों में झीलों के निर्माण निषिद्ध का दायरा
18000 मकान और 21000 परिवार
11 और 46 वार्ड पूरी तरह निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में थे एवं सीसारमा गांव भी सीमांकित क्षेत्र में सम्मिलित था।

पिछोला झील के मध्य स्थित पुरातन शहर के साथ विश्वप्रसिद्ध होटल्स, हवेलियां, मन्दिर एवं घाट

दिनांक 7 फरवरी, 2007 के आदेश पर सरकार ने उदयपुर जिला कलक्टर की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की, जिसमें 18 जनवरी, 2010 को एक बैठक आयोजित कर 2007 के आदेश पर मार्गदर्शन प्राप्त करने के उद्देश्य से रिव्यू अथवा अपील करने की अनुशंसा की थी। उच्च न्यायालय ने 6 फरवरी, 2007 को निर्माण निषिद्ध क्षेत्र की याचिका पर फैसला दिया था जिसकी अनुपालना में राज्य सरकार झील विकास प्राधिकरण के गठन की प्रक्रिया चला रखी थी। इस फैसले के एक अन्य बिन्दु में निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में किसी भी प्रकार के निर्माण की इजाजत नहीं देने को कहा गया है लेकिन प्रायोगिक तौर पर यह संभव नहीं है, क्योंकि निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में सदियों से शहरी आबादी रहती है। झीलों के निर्माण निषिद्ध क्षेत्र को लेकर उच्च न्यायालय के 2007 के मूल आदेश को चुनौती देने का काम अब नगर निगम के बूते से बाहर होता जा रहा है। कोर्ट की मौखिक टिप्पणियों से नगर निगम की स्वायत्तता इसमें आड़े आने लगी है। इस नए मोड़ के चलते नगर निगम और राज्य सरकार इस विधिक परीक्षण में जुट गए हैं कि जिला कलक्टर से ही विशेष अनुमति याचिका (एमएलपी) ज्यादा प्रभावी तरीके से लगवा दी जाये।

झीलों के किनारे बसी शहर की डेढ़ लाख की आबादी के व्यापक जनहित को प्रभावित होने से बचाने के लिए वर्ष 2007 के मूल आदेश को चुनौती देने की जरूरत महसूस हो रही थी। इसके लिए सरकार ने जिला प्रशासन की ही सिफारिश पर दूसरी विशेष अनुमति याचिका दायर करने की इजाजत दी थी। सरकार ने नगर निगम को भवन विनिमय 2013 के तहत राजपत्र में प्रकाशन उपरान्त नगर निगम एवं नगर विकास प्रन्यास को वर्ष 2000 की उपलब्धियों को लेकर धारा–340 में इनको प्रभावशील करने के लिए अधिकृत किया है।

इस स्वीकृति से (1) स्टेट ग्रान्ट के पट्टे मिलने का रास्ता साफ हुआ, (2) पुराने निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में नए नियंत्रित निर्माण क्षेत्र विनिमय के आधार पर स्वीकृतियाँ मिलेगी, (3) मकान निर्माण को लेकर लोगों को बैंक लोन मिल सकेगा, (4) इस क्षेत्र में आने वाले मकानों के नामांतरण व नियमन की कार्यवाही हो सकेगी तथा (5) छोटे के बजाय बड़े आकार वाले आवास बन सकेंगे एवं इससे बड़े परिवारों की परेशानी दूर होगी।

शहर के निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में चोरी–छुपे निर्माण का सिलसिला अन्तहीन हो चला है। हालत यह है कि अवैध निर्माण कर कानून का मखौल उड़ाने वालों को नगर निगम और प्रशासन का कोई भय नहीं है। इस प्रकार के निर्माण कार्य निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में प्रभावशाली व्यक्ति करते रहे हैं। झीलों के निर्माण निषिद्ध क्षेत्र के मूल हिस्से को इन नियमों से मुक्त कराने के लिए भी ठोस प्रयास करने चाहिये क्योंकि इस क्षेत्र के अधिक लोग कम आय वाले होने से विषम परिस्थितियों में रह रहे हैं। कोई निर्माण नहीं कर सकने से अपने परिवार की अतिरिक्त आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पा रहे हैं, न ही रहने की सुविधा बढ़ा पा रहे हैं। प्रभावशाली लोग होटल या आवासीय प्रयोजनार्थ अपनी हिम्मत से या अधिकारियों की मिलीभगत से, अच्छे से अच्छा निर्माण निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में कर रहे हैं, इससे स्थानीय प्रशासन अनभिज्ञ रहता है। नियमों का पालन करने वाले लोग ही पीछे रह जाते हैं। उच्च न्यायालय को विशेष परिस्थिति एवं आवासीय आवश्यकता के अनुसार निर्माण की स्वीकृति देनी चाहिये या नगर निगम एवं नगर विकास प्रन्यास को भी इस हेतु अधिकृत किया जाना चाहिये। झीलों के किनारे सीवरेज लाईनें अच्छी प्रकार से बिछाने का कार्य नगर निगम एवं नगर विकास प्रन्यास का है, साधारण नागरिक इसमें क्या कर सकता है।

मास्टर प्लान में अब निर्माण नियंत्रित क्षेत्र : उदयपुर के मास्टर प्लान 2031 के अन्तर्गत राज्य सरकार ने पहले ही झीलों के वर्ष 1999 में बने नियंत्रित निर्माण क्षेत्र को आधार बनाकर नए भवन विनियम 2013 लागू करने का वादा किया था। इस भवन विनिमय में अधिकांश पुराने नियंत्रित निर्माण क्षेत्र को शामिल किया गया है। झीलों की अनेक याचिकाओं पर उच्चतम् न्यायालय के फैसले से शहर के भीतरी क्षेत्रों में रियासतकाल से अपने पूर्वजों के मकानों में रह रहे हजारों परिवारों को स्टेट ग्रान्ट के पट्टे मिलने का भी रास्ता साफ हो गया है। अब "भवन विनिमय 2013" और उसकी उपविधियों में निर्माण नियंत्रित क्षेत्र में भवन निर्माण के नियमों का संचालन होगा, वहीं लोगों को उनकी जमीन का हक मिल सकेगा।

नियंत्रित निर्माण क्षेत्र भवन उपविधि की खास बातें :–

1. अब भवन निर्माण की स्वीकृति नगर विकास प्रन्यास व नगर निगम अपने–अपने क्षेत्राधिकार में जारी करेंगे। यह स्वीकृति नए मास्टर प्लान के अनुरूप दी जायेगी।

2. नियंत्रित निर्माण अलग–अलग जोन में विभाजित रहेगा।

3. डूब क्षेत्र व झील किनारे कृषि भूमि पर निर्माण नहीं होंगे।

राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा उदयपुर में उदयसागर के पास निर्माणाधीन वर्धा समूह की पाँच सितारा होटल, फतहप्रकाश होटल के तीस कमरे, स्वरूप सागर के निकट सरस्वती देवी सिंघल के आवास में किए गए विस्तार सहित चालीस से अधिक निर्माण तोड़ने के आदेश दिए गए थे। जिला प्रशासन, नगर निगम व नगर विकास प्रन्यास को निर्धारित समयावधि में कोर्ट के आदेशों का पालन करने की जिम्मेदारी दी। उच्च न्यायालय के आदेश के पालनार्थ उदयसागर में वर्धा समूह द्वारा बिना अनुमति निर्मित सड़क तोड़ी गई लेकिन बड़े होटल समूह, प्रभावशाली लोगों ने उच्च न्यायालय व सुप्रीम कोर्ट से स्टे लेकर फैसले अपने भवनों के आधार पर अपने हक में करवा लिये। साधारण व्यक्तियों के निर्माण का क्या हुआ।

उदयपुर मूल शहर वर्ष 1997 से कानून–कायदों के (झील के आसपास 500 मीटर क्षेत्र निर्माण निषिद्ध घोषित) चलते सिकुड़े शहर को करीब 17 वर्ष बाद विस्तार का मौका मिल सकेगा। शहर की झीलों के निर्माण निषिद्ध क्षेत्र के कड़े नियमों की हद में आ रही करीब डेढ़ लाख की आबादी को अब राज्य सरकार से नए भवन विनिमय 2013 का फायदा मिल सकेगा। वर्षों से परेशान लोगों को अपना कुनबा बढ़ने के बाद आवास विस्तार का बड़ा फायदा मिलेगा। निर्माण नियंत्रित क्षेत्र में नए कानून और भवन विनिमय 2013 लागू होंगे लेकिन इसमें भी दी गई रियायतों के मद्देनजर आवास विस्तार किया जा सकेगा। अब झीलों के किनारे बसी आबादी और डाउन स्ट्रीम का तमाम क्षेत्र इस बड़ी राहत से अन्य कई फायदे भी ले सकेगा। शहर के 14 वार्ड में रहने वाले लोगों को इस निर्णय से सीधा फायदा मिलेगा। इसके अलावा शहर के कई इलाकों के लोग लाभान्वित होंगे।

राज्य सरकार ने 17 जनवरी, 1997 को पहली मूल अधिसूचना जारी कर शहर की झीलों के आसपास 500 मीटर क्षेत्र को निर्माण निषिद्ध क्षेत्र घोषित किया :–

1. दिनांक 10 दिसम्बर, 1999 को सरकार ने मूल अधिसूचना का दायरा घटाकर अधिसूचना जारी की।
2. निर्माण निषिद्ध क्षेत्र पर कोर्ट ने पहला आदेश दिनांक 8 मई, 2000 को दिया।
3. दिनांक 5 सितम्बर, 2000 को उच्च न्यायालय ने निर्माण निषिद्ध क्षेत्र की अधिसूचना से झीलों के डाउन स्ट्रीम में स्थित हाथीपोल, भट्टियानी चौहट्टा इत्यादि निचले इलाकों, जिनका गन्दा पानी झीलों में नहीं जाता है, को बाहर करते हुए बड़ी राहत दी।
4. दिनांक 6 फरवरी, 2007 को मूल याचिका पर उच्च न्यायालय ने निर्णय देकर निर्माण निषिद्ध क्षेत्र में निर्माणों पर रोक लगा दी।
5. उच्च न्यायालय की रोक के बावजूद पाँच सितारा होटलों, बहुमंजिला मकानों आदि के काम बेधड़क चलने पर झील हितैषी लोगों ने उच्च न्यायालय में अवमानना याचिका दायर की।
6. अवमानना याचिका पर दिनांक 13 अक्टूबर, 2011 को स्थगनादेश जारी हुआ।
7. अवैध निर्माणों की रिपोर्ट के लिए उच्च न्यायालय ने कोर्ट कमिश्नर तैनात किया।
8. दिनांक 28 अप्रेल, 2012 को कोर्ट कमिश्नर श्री दिनेश मेहता ने झीलों के किनारे निर्माणाधीन कामों का दौरा कर उच्च न्यायालय को रिपोर्ट पेश की।
9. दिनांक 27 सितम्बर, 2012 को उच्च न्यायालय ने झीलों के आसपास 40 अवैध निर्माण तोड़ने का बड़ा फैसला दिया।
10. सरकार उच्चतम् न्यायालय गई और विशेष अनुमति याचिका दायर की।
11. उच्चतम् न्यायालय ने निर्माण नियंत्रित क्षेत्र अनुसार काम करने के आदेश दिए।
12. राजस्थान भवन विनिमय 2013 संशोधित को उदयपुर नगर निगम में लागू करने के लिए उच्चतम् न्यायालय ने मंजूरी दे दी।

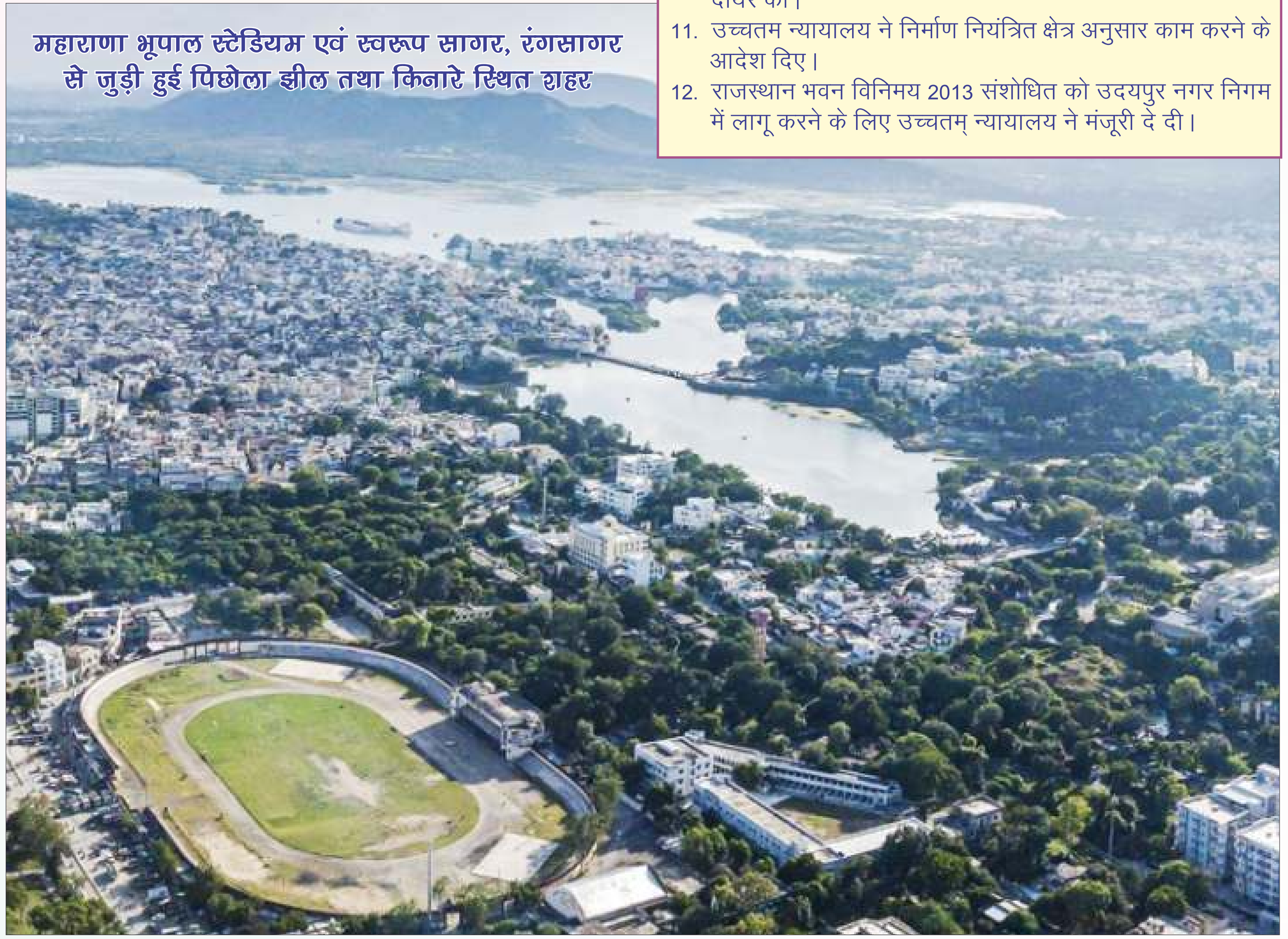

महाराणा भूपाल स्टेडियम एवं स्वरूप सागर, रंगसागर से जुड़ी हुई पिछोला झील तथा किनारे स्थित शहर

पिछोला रो पानी उदियापुर रो वास...

उगते सूरज ने जिस धरती के माथे को चूमा, वीरों के लहू ने जिस भूमि को सींचा, प्रताप–सा तेज लिए जिसने आजादी की लौ को रोशन किया, पन्नाधाय की ममता, जिसके आँचल में दूध पीते शिशु ने करवट ली, हवा के ताजे झोंके जैसा शहर, जब जितनी बार देखो हर बार नए पन के अहसास से भरा हुआ हथेली पर उगते चाँद सा जिंदादिल लोगों का शहर उदयपुर। पिछोला झील किनारे ऊँची टेकरी पर बने राजमहल और उससे सटी बस्ती नावघाट पर रहने वाली लच्छू, रतनप्रभा, जानकी, नारायणी बाइयों के स्वरों को संधान देती लता मंगेशकर का गाया लोकगीत आज भी यहाँ के कण–कण, जर्रे–जर्रे और लहर–लहर में गूंजित है –

राणाजी म्हैं तो कईयन मांगू/ सोनो नी मांगू/रूपो नी मांगू।
नी मांगू नवसरहार/पिछोला रो पाणी मांगू/उदियापुर रो वास।।

अर्थात् राणाजी! मुझे आपसे कोई चाह नहीं है। न सोना, न चांदी, न नवसर हार चाहिए। चाहिए तो पीने के लिए केवल पिछोला का पानी और रहने के लिए उदयपुर में वास–निवास।

देवपुर से उदयपुर : सिसोदिया वंश के बालक उदयसिंह को कुंभलगढ़ के देवपुरा परिवार द्वारा गुप्त पनाह देकर पालने–पोसने के कारण उदयसिंह महाराणा बने। तब उस वंश की स्वामी भक्ति को शीर्षमान देते हुए 1559 में हरे–भरे पहाड़ों के बीच जिस शहर की नींव डाली गई उसका नाम देवपुर रखा, किंतु सामन्तों के दबावपूर्ण आग्रह को देखते यह अलबेला शहर कई उतार–चढ़ाव देखने के बाद उदयपुर के नाम से अस्तित्व में आया। स्वाभिमान और स्वाधीनता की आजादी के तरानों वाला, हर आने वाले मेहमानों को ''भला पधार्या पामणा'' कह आत्मीय आवभगत करने वाला उदयपुर अब स्मार्ट सिटी में शुमार हो गया है। झीलों के ठंडे पानी और सुकूनदायी हवाओं का स्पर्श पाकर इठलाती बलखाती सर्पाकार, पर्वतमालाओं से घिरे उदयपुर को ''राजस्थान का कश्मीर'' और ''पूर्व का वेनिस'' भी कहा जाता है। देश की राजधानी दिल्ली यहाँ से 660 कि.मी., तो मुम्बई 800 कि.मी. की दूरी पर है। रेल, सड़क और वायुमार्ग से यह अच्छी कनेक्टिविटी लिए है। यहाँ इतिहास और संस्कृति एक साथ पले–बढ़े और वैभव तक पहुँचे। आयड़ नदी के किनारे 4000 वर्ष ईसा पूर्व पुरा–सभ्यताओं के साक्षी बने अवशेष। सच ही है, अतीत को वर्तमान और वर्तमान को अतीत में जीता यह शहर आगे बढ़ा रहा है। इसका अंदरुनी भाग अपने में शौर्य और वीरता की अनुगूँज देता, विस्तार पाता 70 वार्डों तक फैल गया है। किसी समय उदयपुर मेवाड़ की राजधानी रहा। इसके चारों और अरावली और विंध्याचल की पहाड़ियों की ठोस सीमाएं हैं। सीमांकन के लिए बनने वाले परकोटे को वाड़ कहते है। वाड़ के भीतर यह उसी तरह सुरक्षित बसावट लिए है, जैसे नारियल के ठोस गोले के भीतर उसकी गिरी सुरक्षित रहती है।

अनोखी–अजूबी बसावट : मगरे–मगरियों के बीच इसकी बेतरतीब ऊँची–नीची, आड़ी–तिरछी बसावट के नाम ही बड़े अनोखे अजूबे हैं। पोल, सेरी, वाड़ा, ओल, टिम्बा, गली, घाट, टेकरी, वाड़ी, घाटी, दरवाजा, महल, बावड़ी, चौहट्टा, पुरी, खिड़की, चौक, पुरा, नाल, मंडी, मगरी, खुर्रा तथा काँटा जैसे संबोधनों से बस्तियों के नाम अपने आप में इतिहास, संस्कृति, धर्म, कर्म तथा घटना विशेष का बोध कराते हैं। बारह तो यहाँ पोले ही थीं। पूर्वाभिमुख लिए सूरजपोल पश्चिम दिशा में चाँदपोल, हाथियों की निकासी के लिए हाथीपोल तथा सजाधारी को दंड देकर निष्कासित करने के लिए दंडपोल प्रसिद्ध रही। हाथीपोल स्थित भूतमहल यति द्वारा उड़ाकर लाया गया। ऐसी ही यहाँ दैत्य मगरी है। प्राचीनकाल में यति ऐसी क्रियाएँ कर अनेक मंदिर, वृक्ष, छतरियाँ, भवन और समाधि स्थल एक स्थान से उड़ाकर दूसरे स्थान पर ले गए। वर्तमान में भूतमहल तथा दैत्य मगरी के नाम से पूरी बस्तियाँ जानी जाती हैं। यहाँ का हिरण मगरी क्षेत्र किसी समय हिरणों का घोर जंगली क्षेत्र था। अब इस बस्ती क्षेत्र में न कोई हिरण और न कोई मगरी है।

नगर की स्थापना में भारतीय स्थापत्य शास्त्र के सिद्धान्तों का पूरा ध्यान रखा गया। इसीलिए ऐसी विशेषताएँ अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। मेवाड़ शासकों के आश्रय में यहाँ सबसे अधिक वास्तु–ग्रंथ लिखे गये। वास्तुकारों ने 9 गुणा 9 रेखाएं डालकर 81 कोष्ठकों को कल्पित किया। चारों दिशाओं में देवताओं के तीर्थस्थल–आदिवासियों का कालाबाबा केसरियाजी, कैलाशपुरी के एकलिंगजी, नाथद्वारा के श्रीनाथजी, गढ़बोर बिराजे चारभुजाजी और चित्तौड़ के साँवरियाजी इसके साक्षी हैं। यहाँ का जगदीश मन्दिर तथा राजसमंद झील की पाल भी नौचौकी के रूप में दर्शनीय है।

शिलालेख : इसी पाल पर 25 बड़ी–बड़ी शिलाओं पर महाराणा राजसिंह से संबंधित संस्कृत में राज–प्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण है। विश्व का यह सबसे बड़ा शिलालेख है। वास्तु के हिसाब से ही यहाँ विभिन्न समुदायों, कर्मकांडियों तथा जीवनोपयोगी विविध कारु–चारु शिल्पियों को बसाया गया। महाराणा से जुड़े सौलह–बत्तीसा राव, उमराव, सरदार तथा राज–परिवार के पदाधिकारियों के लिए निराली हवेलियों का निर्माण किया गया। ऐसी लगभग दो सौ हवेलियाँ और उनकी अद्भुत चित्रकारी।

जलाशयों के साथ ही उदयपुर की पहचान यहाँ के उद्यानों, बावड़ियों तथा बाड़ियों के कारण भी बनी। सहेलियों की बाड़ी, सर्वऋतु विलास तथा गुलाबबाग पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से भी बड़े उपयोगी तथा महत्वपूर्ण हैं। सहेलियों की बाड़ी प्राकृतिक फव्वारों के लिए जानी जाती है। सर्वऋतु विलास में छहों ऋतुओं का आनन्द लिया जा सकता है। महाराणा सज्जनसिंह के बुलावे पर महर्षि दयानंद सरस्वती आए तथा जुलाई, 1882 में सज्जन निवास उद्यान के नौलखा महल में उन्होंने ''सत्यार्थ प्रकाश'' ग्रंथ की रचना की। यही उद्यान गुलाबबाग के नाम से जाना जाता है। इन्हीं महाराणा ने मानसून पैलेस के रूप में अतुलनीय ''सज्जनगढ़'' का निर्माण कराया। अपने नाम पर सज्जन यंत्रालय छापाखाना स्थापित कर ''सज्जन कीर्ति सुधाकर'' नामक पहला साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया।

गुलाबबाग में अनेक प्रकार के पेड़–पौधे हैं, जो भी राजदूत यहाँ आया, वह अपने साथ लाया। आम, हरड़, गूंदा, ईमली, गूलर, धोकड़ा, शमी, तमाल, ताल, शाल, हिंताल, काल, नारियल, खजूर, नीम, कदाम, जामुन, महुवा, सुपारी, चंदन, तिलक जैसे सैंकड़ों तरह के पेड़–पौधे और वनस्पतियाँ यहाँ देखने को मिलती हैं। पेड़–पौधे कलात्मक और फलात्मक दोनों दृष्टियों से बेजोड़ हैं।

– डॉ. महेन्द्र भानावत, उदयपुर

उदयपुर के संस्थापक एवं महत्वपूर्ण शासक : महाराणा उदयसिंह–द्वितीय द्वारा 1559 में उदयपुर की राजधानी बनाने के पश्चात् वर्ष 1947 तक 22 महाराणा उदयपुर की राजगद्दी पर आसीन हुए, जिनमें महाराणा प्रताप सिंह, महाराणा अमर सिंह, महाराणा कर्ण सिंह, महाराणा जगत सिंह, महाराणा राज सिंह, महाराणा जय सिंह, महाराणा अमर सिंह द्वितीय, महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय, महाराणा जगत सिंह द्वितीय, महाराणा प्रताप सिंह द्वितीय, महाराणा राजसिंह द्वितीय, महाराणा अरिसिंह द्वितीय, महाराणा हमीर सिंह द्वितीय, महाराणा भीम सिंह, महाराणा जवान सिंह, महाराणा सरदार सिंह, महाराणा स्वरुप सिंह, महाराणा शंभू सिंह, महाराणा सज्जन सिंह, महाराणा फतेह सिंह और महाराणा भूपाल सिंह थे। महाराणा भूपाल सिंह गुहिल वंश के अन्तिम शासक रहे।

महाराणा प्रताप (1572–1597) के शौर्य और पराक्रम की गाथाएँ विश्वविख्यात हैं। महाराणा प्रताप के समान योद्धा, देश–प्रेमी और कुशल सेनापति भारत के इतिहास में बहुत कम है। महाराणा प्रताप ने 21 जून, 1576 को हल्दीघाटी के मैदान में भारत के सम्राट अकबर की सेना के साथ संघर्ष किया था। इस अनिर्णित युद्ध ने रण–कौशल, स्वामी–भक्ति, देश–प्रेम और समर्पण की मिशाल स्थापित की है। उदयपुर राजवंश के राजसिंह ने विश्वविख्यात राजसमन्द एवं जयसिंह ने जयसमन्द जैसी सुप्रसिद्ध झीलों का निर्माण करवाया था। महाराणा सज्जनसिंह ने उदयपुर में रेल, डाक, सुरक्षा व्यवस्था, भवन निर्माण और ऐतिहासिक सम्पदा के संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किया। महाराणा राजसिंह ने ''सज्जन कीर्ति सुधाकर'' नाम का भारत का पहला हिन्दी समाचार पत्र प्रकाशित करवाया था।

महाराणा उदय सिंह द्वितीय
(1537–1572)

महाराणा प्रताप सिंह
(1572–1597)

राणा अमर सिंह प्रथम
(1597–1620)

राणा करण सिंह
(1620–1628)

राणा जगत सिंह प्रथम
(1628–1654)

महाराणा राज सिंह प्रथम
(1654–1680)

महाराणा जय सिंह
(1681–1698)

महाराणा अमर सिंह द्वितीय
(1698–1710)

महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय
(1710–1734)

महाराणा जगत सिंह द्वितीय
(1734–1751)

महाराणा प्रताप सिंह द्वितीय
(1751–1755)

महाराणा राज सिंह द्वितीय
(1755–1762)

महाराणा अरि सिंह द्वितीय
(1761–1772)

महाराणा हमीर सिंह द्वितीय
(1772–1778)

महाराणा भीम सिंह
(1778–1828)

महाराणा जवान सिंह
(1828–1838)

महाराणा सरदार सिंह
(1838–1842)

महाराणा स्वरूप सिंह
(1842–1861)

महाराणा शंभू सिंह
(1861–1874)

महाराणा सज्जन सिंह
(1874–1884)

महाराणा फतेह सिंह
(1884–1930)

महाराणा भोपाल सिंह
(1930–1955)

महाराणा भगवत सिंह
(1955–1984)

'महाराणा' एक उपाधि थी जिसे हिन्दू राष्ट्र के मुखिया के रूप में पहचान मिली। राजपूताना इतिहास में मेवाड़ के महाराणा उन शासकों के साथ अपने गौरव का प्रतीक थे जिन्होंने अपनों के लिए लड़ाई लड़ी और अपने कुल के सम्मान के लिए अपने प्राणों की आहूति दे दी। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1970 में जब उक्त 'महाराणा' पदवी समाप्त हो रही थी तब महाराणा भगवत सिंह गद्दी पर आसीन थे।

मेवाड़ के गौरवशाली इतिहास का साक्षी पिछोला झील के किनारे स्थित भव्य राजमहल

जनप्रतिनिधि – राजस्थान विधान सभा एवं भारतीय गणतन्त्र की लोकसभा

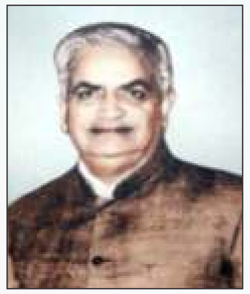

विधान सभा
1954-57
1957-62
1962-67
1967-72
लोक सभा
1980-82

श्री मोहनलाल सुखाड़िया

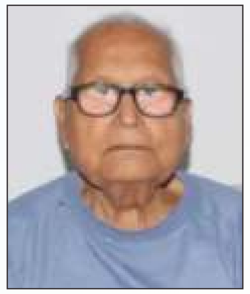

विधान सभा
1990-93
1993-98

श्री शिव किशोर सनाढ्य

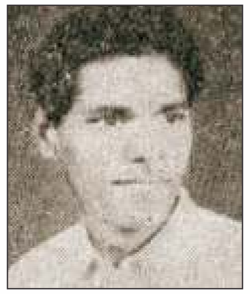

लोक सभा
1962-67
1967-71

श्री धुलेश्वर मीणा

लोक सभा
1998-99

श्री शांतिलाल चपलोत

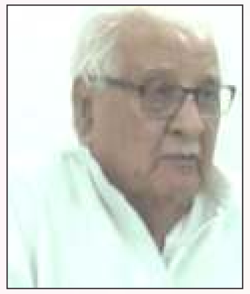

विधान सभा
1972-77
लोक सभा
1977-80

श्री भानु कुमार शास्त्री

विधान सभा
1998-2003

श्री त्रिलोक पूर्बिया

लोक सभा
1971-77

श्री लाला जी भाई मीणा

लोक सभा
2004-09

श्रीमती किरण माहेश्वरी

विधान सभा
1977-80, 1980-85
2003-08, 2008-13
2013-18, 2018-23
लोक सभा
1989-91

श्री गुलाब चन्द कटारिया

लोक सभा
1951-57

श्री बलवन्त सिंह मेहता

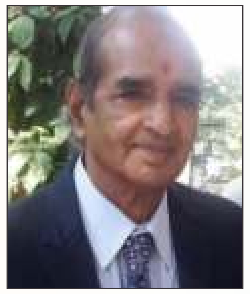

लोक सभा
1982-84

श्री दीनबन्धु वर्मा

लोक सभा
2009-14

श्री रघुवीर सिंह मीणा

विधान सभा
1985-90
लोक सभा
1991-96
1996-98
1999-2004

सुश्री गिरिजा व्यास

लोक सभा
1957-62

श्री माणिक्यलाल वर्मा

लोक सभा
1984-89

श्रीमती इन्दुबाला सुखाड़िया

लोक सभा
2014-19
2019-20

श्री अर्जुनलाल मीणा

आप सभी ने अपने कार्यकाल में उदयपुर विधान सभा एवं लोक सभा क्षेत्र के साथ उदयपुर का चहुँमुखी विकास करने का पूर्ण प्रयास किया।

शान एवं गौरव : मेवाड़ की धरा महाराणा प्रताप की वीरता, पद्मिनी का जौहर, मीरां की भक्ति, भामाशाह की दानवीरता, पन्नाधाय का बलिदान आदि अतीत के स्वर्णिम अध्याय अपने में समेटे हुए हैं। यहाँ की शौर्य गाथाएँ और बलिदान की ख्याति पूरे विश्व में व्याप्त हैं। इसके साथ ही कुदरत ने भी मेवाड़ को खासतौर से झीलों की नगरी के रूप में अलौकिक खूबसूरती बख्शी है। यहाँ की झीलें, जंगल, पहाड़, खानपान, परम्परा, मेहमानवाजी, वेशभूषा आदि भी अपने आप में विशिष्ट हैं। यही सब कुछ है जो देश–विदेश के पर्यटकों को आकर्षित करता है। इसी तरह यहाँ के खूबसूरत नजारों के चलते आए दिन हॉलीवुड व वॉलीवुड फिल्मों की शूटिंग भी होती रहती हैं। इन सब के बीच, इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि विकास की दौड़ में शामिल होकर यहां के बाशिन्दे पुरखों की धरोहर का प्राचीन स्वरूप बरकरार नहीं रख पा रहे हैं। जब पूरा विश्व हमारी विरासत का कायल है तो हमारा भी फर्ज है कि इसे संभाले और संवारे। कुदरत की नैमत और ऐतिहासिक विरासत ही हैं जिनसे हमारी पहचान है। नई पीढ़ी अनमोल विरासत से अनजान न रहे और पुरानी पीढ़ी भी इसके संरक्षण के प्रति अपनी जिम्मेदारी वहन करें।

सुन्दर बाग–बगीचे : नगर के बाग–बगीचों की व्यवस्था भी वास्तुशास्त्र के अनुसार राजमहलों के दायीं ओर उद्यान होना चाहिये, इस दृष्टि से समोरबाग, राजमहलों के दायीं ओर ही विद्यमान है। सज्जन निवास बाग (गुलाब बाग) को महाराणा सज्जन सिंह ने सन् 1882 में बनवाया था। राजमहलों के उत्तर में नगर प्राचीर से लगभग दो कि.मी. दूर सहेलियों की बाड़ी अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। इस बाड़ी के फव्वारें विशेष रूप से दृष्टव्य है। इसका निर्माण महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय (1710–34) ने करवाया था। यहाँ राजकुमारियाँ अपनी सहेलियों के साथ मनोरंजन हेतु आया करती थी। यहाँ पर श्रावण मास में लगने वाला हरियाली अमावस्या का मेला पूरे संभाग में प्रसिद्ध है।

दूध तलाई के पास स्थित बड़ी पाल, समोर बाग एवं माछला मगरा

सहेलियों की बाड़ी की कमल तलाई

मन्दिर : नगर विकास के अन्तर्गत धार्मिक स्थापत्य का भी विशेष महत्व होता है। इस दृष्टि से भी उदयपुर नगर काफी समृद्ध है। धार्मिक स्थापत्य के रूप में सबसे उल्लेखनीय मंदिर जगन्नाथ (जगदीश) का मन्दिर है। यह संभाग का सबसे बड़ा सुप्रसिद्ध विष्णु मंदिर है। इसमें भगवान विष्णु (जगदीश) की मूर्ति बड़ी ही सुन्दर और विशाल है। जगदीश जी के बायीं ओर लक्ष्मी जी व दायीं ओर कृष्ण कन्हैया की चित्ताकर्षक मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर के ठीक सामने पीतल की बनी गरूड़जी की मूर्ति दर्शनीय है। प्रमुख मन्दिर की परिक्रमा में सूर्य, शक्ति, गणपति व शिव की छोटी–छोटी देवलियां बनी हुई हैं। मन्दिर में लौकिक–परलौकिक दृश्यों की मूर्तियों की शिल्पकला दर्शनीय है। यह मन्दिर जमीन से 21 फीट ऊँची तथा 151 × 81 फीट के आयताकार जगती (बेस) पर निर्मित हैं। कुल 32 सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिर में प्रवेश कर सकते हैं। मन्दिर शिखर युक्त है जिसकी ऊँचाई लगभग 80 फीट है तथा यहाँ की मूर्तिकला विशेष रूप से दर्शनीय है। इस मन्दिर का निर्माण महाराणा जगत सिंह ने 1652 ई. में नौ लाख रुपये लगाकर करवाया था।

ऐतिहासिक जगदीश मन्दिर

झीलें : झीलों की नगरी के रूप में उदयपुर की विश्व में अपनी अलग पहचान है। पिछोला झील उदयपुर नगर की स्थापना से भी पूर्व की है। ऐसी मान्यता है कि महाराणा लाखा (1382–1420 ई.) के समय एक बन्जारे ने इसे बनाया। इस झील के पूर्व में पिछोला गांव होने से इस झील को पिछोला कहा जाने लगा। समय–समय पर पिछोला का विस्तार किया गया तथा अमरकुण्ड, रंगसागर, कुमारिया के तालाबों को पिछोला से मिला दिया गया। पिछोला तालाब की लम्बाई लगभग 2.5 मील, चौड़ाई 1.5 मील तथा गहराई 27 फीट है। इस पर बनी हुई बड़ी पाल 334 गज लम्बी व 110 गज चौड़ी है। पिछोला के उत्तर में स्वरूपसागर है। पहले इसका नाम कलाल्या शिवसागर था, किन्तु इस बाँध का पूर्वी हिस्सा अतिवृष्टि से टूट गया, जिसे महाराणा स्वरूप सिंह (1842–61 ई.) ने इसे पुनः बनवाया, तब से यह स्वरूपसागर कहलाता है। पिछोला झील के दो टापूओं पर जगनिवास व जगमन्दिर के रूप में मध्यकालीन स्थापत्यकला को दर्शाने वाले दो महल हैं। अब जगनिवास लेक पैलेस होटल के रूप में अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त होटल है। दूसरा महल जगमन्दिर सन् 1622 में महाराणा कर्णसिंह (1620–1628 ई.) के समय बना। यह प्रसिद्ध महल शहजादा खुर्रम की शरणस्थली के रूप में भी प्रसिद्ध हुआ। इसमें 12 पत्थरों का महल, सुन्दर पच्चीकारी से निर्मित विशाल गुम्बद, संत बाबा गफूर की मजार तथा प्रवेश द्वार पर बने सफेद पत्थर के हाथी देखने लायक हैं। इस जगमन्दिर के निर्माण के बाद निर्मित ताजमहल का स्थापत्य इसी जगमन्दिर के अनुरूप है। अब इस जगमन्दिर में उद्योगपतियों व सम्पन्न परिवारों की शाही शादियाँ होती हैं। पिछोला से दक्षिण – पूर्व में स्थित दूध तलाई जुड़ी हुई है तो उत्तर दिशा में स्वरूप सागर से फतहसागर को जोड़ा गया है। इस तालाब को महाराणा जयसिंह ने सन् 1687 में थूर के तालाब के निर्माण के साथ ही बनवाया था। उस समय यह देवाली का तालाब कहलाता था किन्तु महाराणा भीमसिंह (1778–828 ई.) के समय में अतिवृष्टि के कारण यह बाँध टूट गया और सहेलियों की बाड़ी भी विरान हो गई। बाद में महाराणा फतहसिंह (1884–1930 ई.) ने कुल 6,14,189 रु. लगाकर इसे पुनः बनाया तथा उस समय सन् 1889 में इस बाँध की नींव ड्यूक ऑफ केनाट के तृतीय पुत्र ने रखीं, तब से यह केनाट बाँध और बाद में फतहसागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बाँध 1.5 मील लम्बा तथा 1 मील चौड़ा तथा 35 फीट गहरा है। अब यह फतहसागर पर्यटकों के लिए रमणीय स्थल बन गया है। पर्यटक व स्थानीय सैलानी इस मनोहारी झील में नौकायन का लुत्फ उठाते हैं। प्रतिदिन संध्याकाल में इस झील पर बनी पाल (बाँध), सर्पाकार मार्ग एवं वाटिकाओं पर उमड़ते जनसमूह का सुन्दर दृश्य देखते ही बनता है। फतहसागर में नेहरू पार्क उद्यान है तथा एक सौर वेधशाला भी। झील के मध्य बने नेहरू उद्यान, चैनल फव्वारें व पिरामिड फव्वारा, मैसूर के वृन्दावन गार्डन की बरबस याद दिलाते हैं। श्रावण मास की अमावस्या को फतहसागर की पाल पर एक भव्य मेला भी लगता है। वर्तमान में इस पाल पर एक भव्य विभूति पार्क विकसित किया जा रहा है।

राजमहल

लेक पैलेस

जग–मन्दिर

फहतसागर

प्रताप स्मारक : फतहसागर के पूर्वी दिशा की पहाड़ी पर जिसे मोतीमगरी के नाम से जाना जाता है, पर भव्य प्रताप स्मारक बना हुआ है। इस पर स्वामीभक्त चेतक घोड़े पर आरूढ़ महाराणा प्रताप की कांस्य धातु की बनी भव्य प्रतिमा देखते ही बनती है। यहाँ मोती महल के खण्डहर, महाराणा प्रताप के सहयोगी भीलूराणा पूँजा, झाला मान, हकीम खां सूरी, तथा दानवीर भामाशाह की प्रतिमाएँ एवं फव्वारें भी दर्शनीय हैं।

राजमहल : इसकी स्थापना पिछोला झील के किनारे ऊंची पहाड़ी पर महाराणा उदयसिंह ने की एवं उत्तरोत्तर महाराणाओं ने भी इसमें निर्माण कराया। जमीन से 100 फीट ऊंचे, 1500 फीट लम्बाई एवं 600 से 800 फीट चौड़ाई वाले राजमहल की तुलना लंदन के ''विण्डसर पैलेस'' से की जाती है।

इस राजमहल में बड़ी पोल (सन् 1600 में स्थापित) से प्रवेश कर त्रिपोलिया (तीन भव्य दरवाजे, सन् 1725) एवं मार्बल से बने आठ तोरण द्वार देखे जा सकते हैं। महल के दर्शनीय स्थलों में गणेश ड्योढ़ी, राय आंगन (सन् 1571), माणक चौक, धूणीमाता मंदिर (महल का सबसे पुराना), मोती महल (शीशमहल, कांच का उत्कृष्ट कार्य), कृष्ण विलास, भीम विलास (चित्रशाला), लक्खू गोखड़ा, बाड़ी महल, दिलखुश महल, मदन विलास, सूर्य गोखड़ा आदि प्रमुख हैं।

प्रताप स्मारक

त्रिपोलिया

राजमहल

जनाना महल : इस महल में मोती चौक, जनाना ड्योढ़ी, श्री पितामबरराय जी का मंदिर, रंगमहल, बादल महल, तोरण पोल के साथ तोपें, बग्गियां, पालकी आदि भी दर्शनीय हैं।

क्रिस्टल गैलेरी : यह फतह प्रकाश महल में दरबार हॉल के निकट स्थित है, जहां रंगीन क्रिस्टल की बनी वस्तुओं सहित विश्व में अपनी तरह का एकमात्र पलंग एवं कालीन अति दर्शनीय है।

मेवाड़ लाइट एण्ड साउण्ड शो : मेवाड़ के गौरवशाली इतिहास की विकास यात्रा का एक अद्भुत त्रि–आयामी शो ध्वनि व प्रकाश परिदृश्य के माध्यम से सिटी पैलेस प्रांगण में आयोजित किया जाता है, जो पर्यटकों को अत्यन्त रोमांचक अनुभव करवाता है।

राजकीय संग्रहालय : राजमहल के पिछले हिस्से में यह संग्रहालय राजकीय पुरातत्व विभाग द्वारा संचालित है। इसमें राजस्थानी पगड़ियों के नमूने, सिक्के, प्राचीन मूर्तियाँ, शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) की पगड़ी, मेवाड़ के शासकों के चित्र, अस्त्र–शस्त्र व पोशाकें आदि का संग्रह है।

बागोर की हवेली : इस ऐतिहासिक शाही हवेली का निर्माण सन् 1751 में हुआ था। यहां पर स्थित संग्रहालय में दक्षिणी अंचल के आठ राज्यों की संस्कृति एवं आदिवासी जीवन–शैली को 'धरोहर' नामक सांस्कृतिक कार्यक्रम द्वारा आयोजित किया जाता है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय उद्यान : यहां से सूर्यास्त का दृश्य देखते ही बनता है। इसमें स्थापित म्यूजिकल फव्वारों ने इसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये हैं, जो यहां का मुख्य आकर्षण है।

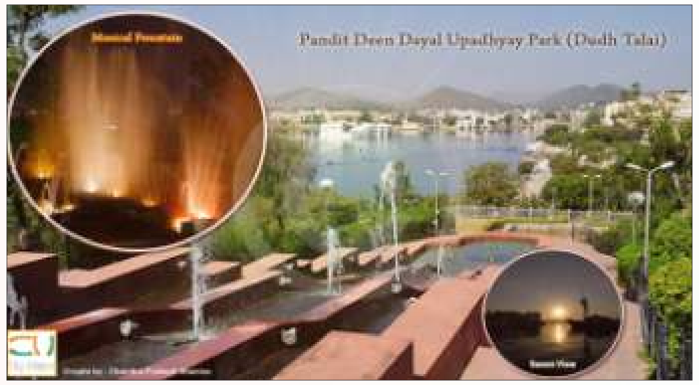

भारतीय लोक कला मण्डल : यह संपूर्ण भारत में अपनी तरह की एकमात्र संस्था है, जो लोक नाट्य, नृत्य व कठपुतली कला के संरक्षण, प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यहां स्थित संग्रहालय में लोक वाद्य यंत्र, आभूषण, वस्त्र इत्यादि प्रदर्शित हैं। यहाँ का जीवन्त कठपुतली प्रदर्शन अत्यन्त मनोहारी होता है।

सुखाड़िया सर्कल : सुखाड़िया सर्कल पर गेहूँ की बाली के आकार का 42 फीट ऊंचा फव्वारा देश में अपनी तरह का प्रमुख फव्वारा है। इसके चारों ओर बने जलाशय में संध्याकाल में रंग–बिरंगी रोशनी में नौका विहार का आनन्द बहुत ही मनोहारी होता है। यह उदयपुर का एक प्रमुख पर्यटन केन्द्र है।

शिल्पग्राम : फतहसागर झील के समीप स्थित "शिल्पग्राम" में पश्चिमी सांस्कृतिक केन्द्र के अन्तर्गत पश्चिम भारत के 8 राज्यों की लोक कला व आदिवासी जीवन शैली को ग्रामीण परिवेश के रूप में बसाया गया है।

सज्जनगढ़ : उदयपुर शहर के नजदीक सबसे ऊँची पहाड़ी की चोटी पर महाराणा सज्जन सिंह (1874–84) ने मानसून पैलेस के रूप में इसे बनवाया। यहाँ से उदयपुर शहर एवं आसपास के प्राकृतिक दृश्य बहुत ही खूबसूरत दिखाई देते हैं। यह एक वन्यजीव अभयारण्य से भी जुड़ा है।

आहाड़ पुरातात्विक संग्रहालय : धूलकोट (3 किमी पूर्व) में आदिमानव संस्कृति व सभ्यता के 4000 वर्ष पुराने अवशेष, जिनमें मिट्टी के बर्तन, सिक्के, मूर्तियां, ताम्बे की वस्तुएं आदि संग्रहालय में सुरक्षित दर्शनीय रखी हुई हैं। पास ही शाही घराने की कलात्मक छतरियां (स्मारक) एवं धार्मिक महत्व का गंगु कुण्ड बना हुआ है।

उदयपुर के समीप स्थित दर्शनीय स्थल

एकलिंग जी (23 कि.मी.) : यह मेवाड़ का प्रथम धाम (शिव का प्रसिद्ध मन्दिर) है, जिसकी स्थापना 764 ईस्वी में बप्पा रावल ने की एवं महाराणा रायमल ने इसका पुनः निर्माण करवाया। मुख्य मंदिर में काले मार्बल पत्थर से निर्मित भगवान एकलिंग जी की चतुर्मुखी मूर्ति स्थापित है। मंदिर परिसर में गिरधर गोपाल, गणपति, अम्बा, कालीमाता मंदिर सहित प्राचीन 108 मंदिर तथा मंदिर के पीछे स्थित इन्द्र सरोवर भी दर्शनीय हैं।

नागदा (23 कि.मी.) : नागदा स्थित सहस्त्र बहू (सास–बहू) मन्दिर 9वीं से 10वीं शताब्दी के बने स्थापत्य कला की उत्कृष्ट धरोहर है। यह नगरी पूर्व में मेवाड़ की राजधानी थी। निकट ही शांतिनाथ भगवान का प्राचीन जैन मन्दिर एवं ऊंची पहाड़ी पर खीमज माता जी का मन्दिर भी दर्शनीय स्थल है।

हल्दीघाटी : यहां अप्रेल 1576 ईस्वी में महाराणा प्रताप व मुगल बादशाह अकबर के सेनापति राजा मानसिंह के बीच विश्व प्रसिद्ध घमासान युद्ध हुआ था। प्रताप का स्वामीभक्त घोड़ा चेतक निकट ही 3 कि.मी. दूर शहीद हुआ था, जिसकी स्मृति में छतरी एवं ऐतिहासिक युद्धस्थल रक्त तलाई दर्शनीय स्थल है। महाराणा प्रताप संग्रहालय एवं लाइट एण्ड साउण्ड शो भी अतिरिक्त आकर्षण केन्द्र है।

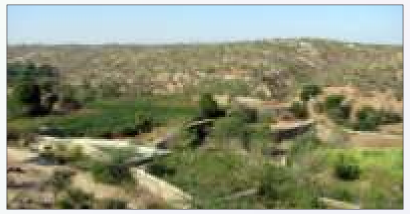

खमनोर : खमनोर गुलाब से बने उत्पादों इत्र, जल, गुलकंद आदि के लिए प्रसिद्ध है। यहां से 8 कि.मी. दूर मोलेला गांव मिट्टी की मूर्तियों (टेराकोटा आर्ट) के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इसी क्षेत्र में महाराणा प्रताप के जीवन से जुड़े कई महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल भी आकर्षण के केन्द्र हैं।

श्रीनाथजी (नाथद्वारा) (50 कि.मी.) : वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिरों में श्रीनाथजी के आठों दर्शन (झांकियाँ) अति कल्याणकारी माने जाते हैं। यहां का प्रसाद, चित्रकारी, मीनाकारी, आदि देश–विदेश में प्रसिद्ध है। यह मेवाड़ का द्वितीय पवित्र धाम माना जाता है।

द्वारकाधीश मंदिर (कांकरोली) (65 कि.मी.) : नाथद्वारा से 15 कि.मी. दूर राजसमन्द झील के तट पर मेवाड़ के तृतीय धाम का प्रमुख तीर्थ द्वारकाधीश प्रभु का मन्दिर माना जाता है। यहां भी दिनभर में आठ दर्शनों की झाँकिया होती हैं।

राजसमन्द झील (68 कि.मी.) : कांकरोली से 3 कि.मी. दूर सन् 1676 में महाराणा राज सिंह द्वारा निर्मित इस झील का बांध जो कि नौ चौकी के नाम से प्रसिद्ध है, यह भारत का एक विलक्षण शिल्प व स्थापत्य कला का प्रमुख दर्शनीय स्थल है।

चारभुजा जी : उदयपुर से 105 कि.मी. व गोमती चौराहे से करीब 11 कि.मी. दूर जोधपुर मार्ग पर गढ़बोर गांव में मेवाड़ के चौथे प्रमुख तीर्थ के रूप में श्री चारभुजा जी (विष्णु भगवान) का मन्दिर स्थित है।

रणकपुर : उदयपुर से 90 कि.मी. दूर नैसर्गिक वातावरण में स्थित जैन धर्म का यह मंदिर शिल्प कला की एक बेजोड़ विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक धरोहर है। भगवान ऋषभदेव के इस मन्दिर में 1444 स्तम्भों व मण्डपों की छतों पर की गई शिल्पकला अति दर्शनीय है।

कुम्भलगढ़ (84 कि.मी.) : राणकपुर के पास ही 14वीं शताब्दी में निर्मित समुद्र तल से 1087 मीटर ऊँचा यह गढ़ (दुर्ग) एक प्रमुख ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थलों में गिना जाता है।

चित्तौड़गढ़ (112 कि.मी.) : भारत का यह सुप्रसिद्ध किला विश्वभर से पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता प्रतीत होता है। इसमें कई ऐतिहासिक महल के खण्डहर एवं छोटे–बड़े जलाशय हैं। इनमें प्रमुख स्थल – विजय स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ, राणा कुम्भा का महल, पद्मिनी महल, बलवीर की दीवार, मीरा मंदिर एवं जैन मंदिर प्रमुख है। चित्तौड़गढ़ राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 76 पर उदयपुर से 72 कि.मी. दूर मुख्य रोड़ से 6 कि.मी. अन्दर स्थित सांवलियाजी के दर्शनों का भी लाभ उठाया जा सकता है।

कुम्भलगढ़ दुर्ग

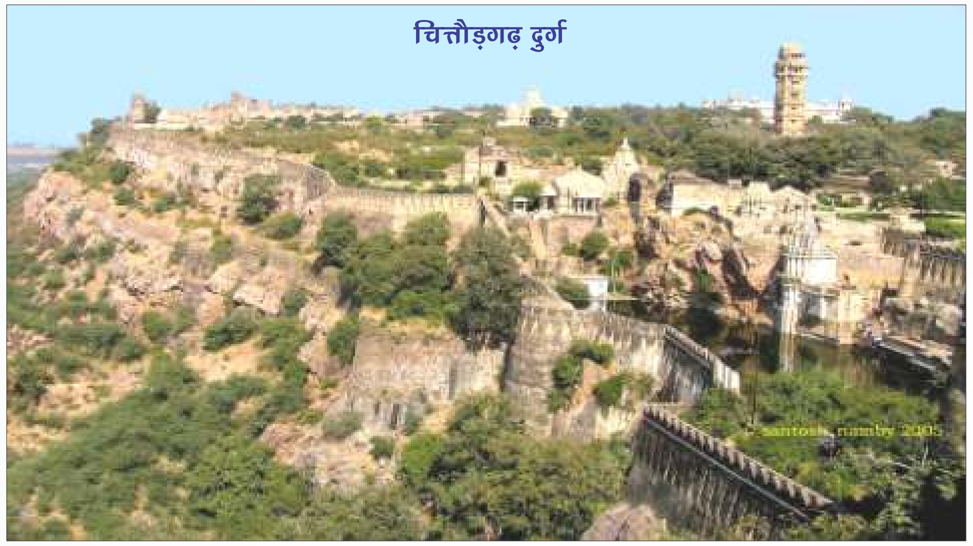

चित्तौड़गढ़ दुर्ग

जयसमन्द (52 कि.मी.) : उदयपुर–बांसवाड़ा मार्ग पर महाराणा जयसिंह द्वारा निर्मित यह एक विश्वविख्यात् मीठे पानी की झील है। यह 14 कि.मी. लम्बी व 9.5 कि.मी. चौड़ी है तथा इसमें सात टापू है, जिसमें बाबा मगरा पर सुप्रसिद्ध आईलैण्ड रिसोर्ट (होटल) संचालित है।

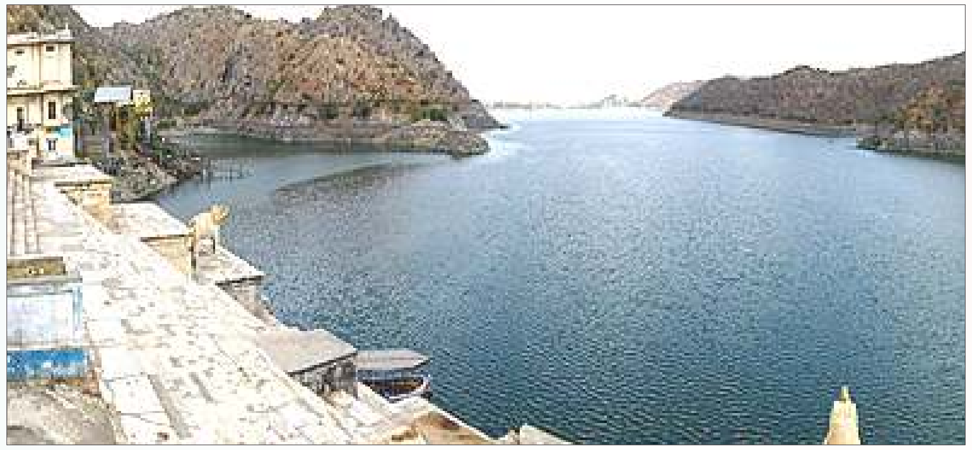

ऋषभदेव जी (65 कि.मी.) : उदयपुर–अहमदाबाद मार्ग पर जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेवजी का विश्व प्रसिद्ध मंदिर अति दर्शनीय, एक धार्मिक एवं जन–जन की आस्था का केन्द्र है। यहां पर गज–मन्दिर भी एक दर्शनीय स्थल है तथा इसे केसरियानाथजी के नाम से भी जानते है।

मेवाड़ में आपका स्वागत

श्रद्धा स्थली, मेवाड़। प्रेरणा स्थली, मेवाड़।
सौन्दर्य स्थली, मेवाड़। बलिदान स्थली, मेवाड़।
शौर्य स्थली, मेवाड़। भक्ति स्थली, मेवाड़।
संस्कृति स्थली, मेवाड़। मक्का स्थली, मेवाड़।
इस बहुमान की धरती में आपका सादर स्वागत
चार धाम के तीर्थ मेवाड़ में
(चारभुजा जी, एकलिंग जी, द्वारकाधीश जी, केशरिया जी)
जग प्रसिद्ध दुर्ग चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़ मेवाड़ में
संसार की बड़ी मानव निर्मित झील जयसमन्द मेवाड़ में
सुन्दरता में श्रेष्ठतम जलाशय राजसमन्द मेवाड़ में
जलाशयों का अनुपम संगम मेवाड़ में
भव्य जगदीश मन्दिर मेवाड़ में
जाति समन्वय का मूर्त रूप ऋषभदेव मंदिर मेवाड़ में
श्वेताम्बर तपोगच्छ का उद्गम स्थल आयड़ मेवाड़ में
श्वेताम्बर तेरापंथ की जन्म स्थली केलवा मेवाड़ में
आस्था और हार्दिक निर्मलता की इस पुण्य स्थली उदयपुर में
आपका आत्मिक अभिनन्दन
मेवाड़ ने कीर्ति पुरुष महाराणा प्रताप को जन्म दिया
मेवाड़ ने देशभक्त कौमी एकता के प्रतीक सेनापति हकीम खां सूरी को अपनाया
मेवाड़ ने पन्नाधाय जैसी बलिदानी वीरांगना को नतमस्तक किया
सलूम्बर की हाड़ी रानी ने पति को रण में जाने की प्रेरणा देने
सिर काट कर पति के हाथ में दिया
मेवाड़ की पद्मिनी, कर्णावती ने जौहरकर सतीत्व की रक्षा की
यशस्वी राणा कुम्भा ने संगीत विधा को विकसित किया
मेवाड़ ने मीरा को भक्ति भरा वातावरण दिया
मेवाड़ ने स्वाभिमान की रक्षा के लिए भामाशाह ने
सम्पूर्ण खजाना प्रताप को समर्पित किया
मेवाड़ में चेतक जैसा अद्वितीय स्वामीभक्त अश्व हुआ
इस गौरवशाली पूजनीय भूभाग में आपका स्नेहिल सत्कार
रियासती एकीकरण के सूत्रधार राजस्थान के पहले और
अन्तिम महाराजप्रमुख महाराणा भूपालसिंह मेवाड़ से
राजस्थान के निर्माता मोहनलाल सुखाड़िया मेवाड़ से
देश के महान् वैज्ञानिक और शिक्षाविद् डॉ. दौलतसिंह कोठारी मेवाड़ से
प्रसिद्ध प्रशासक, शिक्षाविद्, स्काउटिंग के अग्रणी
और स्वैच्छिक सेवाओं के जनक डॉ. मोहनसिंह मेहता मेवाड़ से
उच्च कोटि के चिंतक दार्शनिक कवि और साहित्यकार चतुरसिंह मेवाड़ से
त्याग मूर्ति साध्वी भूरी बाई मेवाड़ से
सार्वजनिक विधाओं में रमें जीवन दानी सुन्दरसिंह भंडारी मेवाड़ से
लोककला के पारंगत सारथी देवीलाल सामर मेवाड़ से
महिला साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञ रानी लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत मेवाड़ से
अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त मांड गायिका मांगी बाई मेवाड़ से
विश्वविख्यात चित्रकार गोर्धन बाबा मेवाड़ से
चार प्रधानमंत्रियों के साथ रहे विदेश सचिव डॉ. जगत मेहता मेवाड़ से
ऐसी अनेक शीर्ष विभूतियों की उर्वरा भूमि में आपका सादर सम्मान
मेवाड़ प्रसिद्ध है आतिथ्य के लिए, मक्का के नाना व्यंजनों के लिए
गणगौर की सवारी के लिए, शीतला सप्तमी के लिए
हरियाली अमावस्या के लिए, चेती गुलाब के लिए
वास्तुकला के लिए, नाना लोक गीतों के लिए
मोलेला के कुम्हारी उत्पादों के लिए
विविधता और रचनात्मकता की इस धरा में आपका बारम्बार
अभिनन्दन, स्वागत, सम्मान

– **डॉ. के.एल. कोठारी**
कुलप्रमुख एवं संस्थापक, विज्ञान समिति

गुलाब बाग : महाराणा सज्जन सिंह के शासनकाल (1881 ई.) में निर्मित गुलाब बाग मेवाड़ राजवंश के इतिहास की एक उत्कृष्ट संरचना है। इस उद्यान को सज्जन निवास उद्यान के नाम से भी जाना जाता है। प्रकृति जीवन में सबसे प्रमुख ज्ञानदाता है जो हमें ग्रह पर हर तत्व के साथ सद्भावना के साथ रहने का संदेश देती है। हालांकि लगातार बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण प्रकृति के करीब रहना काफी चुनौतीपूर्ण हो गया है। यही कारण है कि वन्य जीव अभयारणों और उद्यानों की अवधारणा अस्तित्व में आई। सबसे सुन्दर और अच्छी तरह से रखे गये जानवरों और पौधों के आवास स्थल के रूप में गुलाब बाग प्रसिद्ध है। गुलाब बाग लगभग 100 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। यह उदयपुर में पायी जाने वाली वनस्पतियों और जीवों का सबसे व्यापक उद्यान है। इस उद्यान में अनेक चीजों की एक विस्तृत श्रृंखला है। यहां पर प्रकृति एवं वन्य जीवों के विशिष्ट नजारे देखने को मिलते हैं।

गुलाब प्रचुर मात्रा में पाये जाने के कारण इस बाग का नाम गुलाब बाग के नाम से अस्तित्व में आया। इस बाग के पश्चिम मे एक खूबसूरत अण्डाकार कमल तलाई है। इस तलाई का स्वच्छ नीला पानी और उस पर तैरते हरे पत्ते युक्त गुलाबी कमल अद्वितीय सौन्दर्य बिखरते हैं। कमल तलाई के साथ विभिन्न प्रकार के पेड़ हैं जो पर्यटकों को पर्याप्त छाया के साथ अत्यन्त सुकून प्रदान करते हैं। यहाँ पर आम, अमरूद, अँगूर, नीम्बू, बैर, शहतूत, रेयान, अनार, केला, सपोटा, इमली, रामफल, लीची, उम्र आपदा पेड़, करौंदा, मीठा नीम, नीम, कटहल, आंवला आदि के साथ बड़ी संख्या में औषधीय पौधे देखे जा सकते हैं। पूर्व में अलग–अलग क्षेत्रों में विभिन्न किस्मों के आम, अमरूद आदि के बड़े बगीचे भी थे, जिनमें आम की अनेक किस्म गोला, चोसा, दिल पसन्द आदि कलमी आम के साथ अचार हेतु उत्तम किस्म के देशी आम भी उपलब्ध थे, जो पर्याप्त रखरखाव के अभाव एवं लम्बी उम्र के कारण समय के साथ सूख गये। समय पर इन्हीं किस्मों के पौधे पुनः लगाये जाते तो यह बाग अपने प्राकृतिक स्वरूप को नहीं खोता। यहाँ पर मौजूद सभी पौधों और पेड़ों के नीचे नेम प्लेट लगाई गई हैं जिन पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में व्यवस्थित रूप से वानस्पतिक नाम अंकित हैं।

यह बाग सूरजपोल एवं उदियापोल क्षेत्र में नाईयों की तलाई, छोटी ब्रह्मपुरी, कालाजी गोराजी और मोगराबाड़ी जैसी कॉलोनियों के मध्य स्थित है। गुलाब बाग को जोड़ने वाली मुख्य सड़क को गुलाब बाग रोड के नाम से जाना जाता है। इसमें चार प्रवेश द्वार है जिनमें से दो प्रवेश द्वार आमजन के लिए खुले रहते हैं।

पूर्व में यहाँ पर अदालतें आयोजित की जाती थी तथा इसमें विभिन्न राजकीय कार्यालय भी संचालित थे। वर्तमान में इसमें स्थित पुराने भवनों का उपयोग जलदाय विभाग, सार्वजनिक निर्माण विभाग, उद्यान विभाग आदि द्वारा किया जा रहा है।

यहाँ पर एक विक्टोरिया हॉल भी था, जिसे महारानी विक्टोरिया (1887 ई.) की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में बनवाया गया था। इसमें एक संग्रहालय विकसित किया गया, जिसमें प्राचीन वस्तुओं, शाही घरेलू वस्तुओं और अतीत के विशिष्ट अवशेषों का एक अनुपम संग्रह था। इसे वर्तमान में सरस्वती भवन पुस्तकालय के रूप में उपयोग में लिया जा रहा है। यह राजस्थान का पहला पुस्तकालय है जिसमें इतिहास, पुरातत्व एवं कुछ पाषाण पांडुलिपियों से सम्बन्धित करीब 32000 पुस्तकें उपलब्ध हैं। ज्ञान के इस असाधारण पुस्तकालय की आधारशिला महाराणा सज्जन सिंह ने रखी थी। इस इमारत के ठीक सामने स्थित महारानी विक्टोरिया की मूर्ति के स्थान पर अब महात्मा गांधी की मूर्ति प्रतिस्थापित की गई है।

ऐसा कहा जाता है कि आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''सत्यार्थ प्रकाश'' की रचना यहां पर स्थित नवलखा महल में ही की थी। नवलखा महल आर्य समाज का एक धार्मिक स्थल है, जो गुलाब बाग के मध्य भाग में स्थित है। इसमें स्थित चिड़ियाघर सबसे पुराने चिड़ियाघरों की सूची में चौथे स्थान पर था, जिसमें विभिन्न प्रकार के दुर्लभ जानवर बाघ, शेर, तेन्दुएँ, रीछ, हिरण, शुतुरमुर्ग, गैन्डा, मगरमच्छ के साथ विभिन्न प्रकार की चिड़ियाँ, बतखें आदि भी थी। वर्तमान में इस चिड़ियाघर के दुर्लभ जानवरों को सज्जन नगर स्थित बायोलोजिकल पार्क में स्थानान्तरित कर दिया गया है एवं इसे विभिन्न प्रकार की चिड़ियाओं की प्रजातियों के साथ एक नये विकसित स्वरूप 'बर्ड पार्क' में परिवर्तित कर दिया गया है।

गुलाब बाग में बच्चों के मनोरंजन हेतु एक छोटी टॉय ट्रेन भी है जो लवकुश नामक स्टेशन से संचालित होती है। यह बच्चों एवं युवाओं के लिए रियायती शुल्क पर उपलब्ध है। सभी इस ट्रेन के माध्यम से संपूर्ण बाग के मुख्य स्थलों का भ्रमण कर अत्यन्त रोमांचित होते हैं। इस बाग में एक मिराज ज्योतिष उपवन नामक एक्यूप्रेशर पार्क भी स्थित है जिसका रखरखाव मिराज प्रोडक्ट्स द्वारा किया जाता है। यह पार्क बगीचे के चारों ओर पाये जाने वाले औषधीय एवं गैर–औषधीय पौधों से समृद्ध हैं। इस बाग में वाटर वर्क्स काम्प्लेक्स एक और खूबसूरत स्थल है, जहाँ बाग में स्थित कई बावड़ियों के जल को शुद्धीकरण उपरान्त शहर के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध कराया जाता है।

गुलाब बाग – मुख्य परिसर, सरस्वती भवन, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की प्रतिमा एवं मुख्य बगीचे

प्रवेश द्वार

गुलाब बाग के मध्य स्थित मनमोहक फाउण्टेन

कमल तलाई

विविध प्रजातियों के गुलाब के बगीचे

गुलाब बाग की टॉय ट्रेन

चिड़ियाघर में बतखें

महात्मा गाँधी स्मृति वन उद्यान – "फूलों की घाटी", चीरवा घाट : संकड़ा और सर्पिलाकार चीरवा घाट विशेष रूप से मानसून के मौसम के दौरान हरे–भरे प्राकृतिक वन और अरावली की सुरम्य पहाड़ियों का एक लुभावना दृश्य प्रस्तुत करता है।

पूर्व में बड़ी संख्या में दुर्घटनाओं और लम्बे ट्रेफिक जाम के कारण इस खण्ड की एक डरावनी पहचान भी रही है। उदयपुर–नाथद्वारा रोड फोरलेन में परिवर्तित होने और जुड़वा टनल बनने के बाद से इस घाट सेक्शन का यातायात मार्ग बंद हो गया। इससे अम्बेरी से चीरवा तक 3.4 कि.मी. लम्बे एवं 80 हेक्टयर भू–भाग में फैले इस वन क्षेत्र के लुभावने नजारे पर्यटकों के साथ स्थानीय लोगों से भी वंचित हो गये।

वर्षों से उदयपुर का प्रवेश मार्ग रहे इस घाट क्षेत्र को वन विभाग ने महात्मा गाँधी स्मृति वन उद्यान "फूलों की घाटी" के रूप में विकसित कर अगस्त, 2018 में इसका लोकार्पण किया। यहाँ पर अरावली की वादियों में पनपने वाली वनस्पति के साथ फूलों के पौधें भी रोपित किये गये हैं। इसमें पाए जाने वाले वन्य जीवों को उनके प्राकृतिक आवास के साथ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। वन और पर्यावरण मंत्रालय द्वारा स्वीकृत बजट रुपये 1.60 करोड़ के साथ राज्य के वन विभाग द्वारा इस परियोजना को पूरा किया गया।

वन भूमि में सर्पिलाकार पुरानी सड़क के दोनों किनारों पर सौन्दर्यीकरण के साथ–साथ पर्यावरणीय उद्देश्य के लिए 10 हजार से अधिक स्वदेशी फूलों के पौधों का रोपण किया गया। इसके साथ ही आगन्तुकों के लिए अपनी यात्रा के दौरान मनोरम दृश्य का आनन्द लेने के लिए घाट सेक्शन पर कई बर्ड व्यू प्वाइंट अर्थात् वॉच टॉवर बनाये गये हैं। यहाँ पर शेड एवं बैन्चे भी लगाई गई हैं।

फूलों की घाटी परियोजना द्वारा पूर्व के सुनसान मार्ग को बेहतर पर्यटक स्थल के रूप में तब्दील किया गया। इससे शहर के नजदीक बड़े वानिकी क्षेत्र में पर्यटकों को प्राकृतिक माहौल की सौगात मिलने के साथ आवाजाही का बेहतरीन स्थल उपलब्ध हुआ। इससे क्षेत्रीय नागरिकों को रोजगार के नए अवसर भी प्राप्त होंगे। सुरम्य प्राकृतिक स्थल उदयपुर की अपनी पहचान है एवं इनका संरक्षण, संवर्द्धन एवं सौन्दर्यीकरण हमारी प्राथमिकता है।

वन विभाग द्वारा घाट के हेरिटेज गेट क्षेत्र पर वृक्षारोपण के साथ इस क्षेत्र का जीर्णोद्धार भी कराया गया। यहाँ पर आगन्तुकों के लिए जन सुविधाओं के साथ एक कैफेटेरिया भी बनाया गया है। ट्रेकिंग के शौकीनों के रोमांच के लिए 'जिपलाइन' भी तैयार की गई है। यह घाट क्षेत्र में कैफेटेरिया छोर से गोरेला व्यू प्वाइंट तक 375 मीटर लम्बाई एवं काफी ऊँचाई पर स्थापित की गई है। यह जिपलाइन गहरी खाई से गुजरने का एक रोमांचक अनुभव प्रदान करती है। यह वन क्षेत्र पैंथर सहित अन्य जीवों का आश्रय स्थल है। यहां से पैंथर अक्सर उदयसागर और पुरोहितों के तालाब तक अपनी प्यास बुझाने जाते हैं। इसके पास ही मेवाड़ जैव विविधता पार्क, पुरोहितों का तालाब, अमरखजी महादेव मन्दिर आदि महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय स्थल स्थित होने से यह प्रकृति प्रेमियों का एक पसन्दीदा पर्यटक सर्किट बन गया है।

यहाँ पर वर्ष पर्यन्त हरियाली बनाए रखने के लिए मिट्टी की नमी का संरक्षण, रिसाव, चैकडेम आदि तकनीकी पहलुओं पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इस उद्यान का संचालन अम्बेरी वन संरक्षण समिति द्वारा किया जा रहा है। यह समिति क्षेत्र के समुचित रखरखाव की जिम्मेदारी के साथ साहसिक खेलों और अन्य गतिविधियों के माध्यम से राजस्व अर्जित कर रही है।

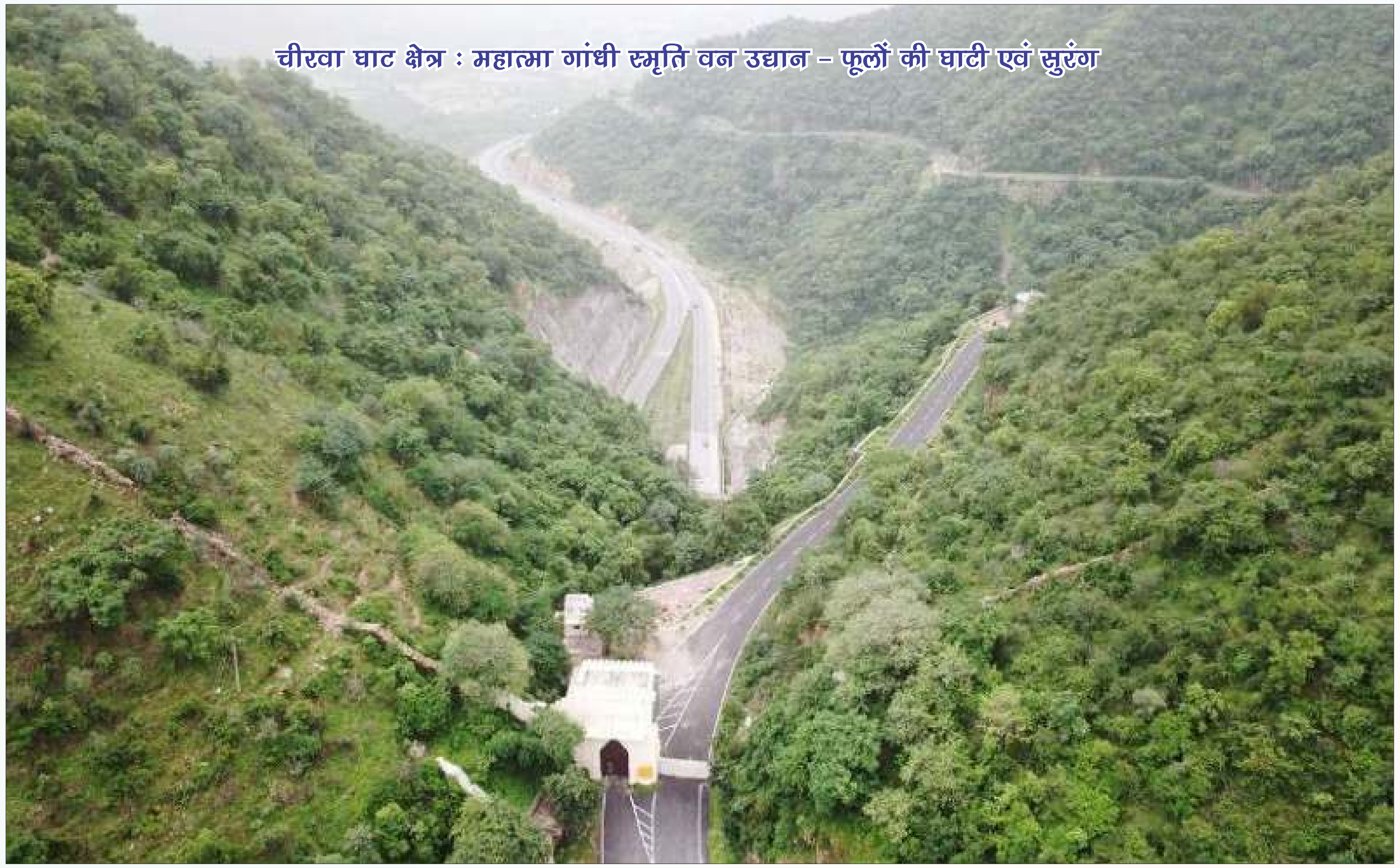
चीरवा घाट क्षेत्र : महात्मा गांधी स्मृति वन उद्यान – फूलों की घाटी एवं सुरंग

चीरवा घाट क्षेत्र : महात्मा गांधी स्मृति वन उद्यान का सुरम्य नजारा

जुड़वा सुरंग

चीरवा घाट दरवाजा

प्राकृतिक झरना

जिपलाइन

मेवाड़ जैव विविधता पार्क : वर्ष 2012 के दौरान राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड द्वारा राज्य के सभी संभागीय मुख्यालयों पर जैव विविधता पार्क बनाये जाने हेतु निर्णय लिया गया। इस सन्दर्भ में ग्राम धार वन क्षेत्र उदयपुर संभाग मुख्यालय के पास वन संभाग, उदयपुर (उत्तर) के अन्तर्गत उदयपुर से लगभग 15 कि.मी. दूर स्थित नाथद्वारा मार्ग को जैव विविधता पार्क के लिए सबसे उपयुक्त स्थल के रूप में चुना गया।

ग्राम धार वन क्षेत्र आरक्षित वन खण्ड अम्बेरी का हिस्सा है। अम्बेरी वन खण्ड का कुल क्षेत्रफल 349 हेक्टेयर है। इसमें चीरवा राजस्व गांव तक 165 हेक्टेयर क्षेत्र को जैव विविधता पार्क के रूप में विकसित किया गया है। यह क्षेत्र उदयपुर की समृद्ध जैव विविधता को प्रदर्शित करता है। यह अरावली रेंज का एक हिस्सा है।

यह प्रकृति की गोद में विस्तारित राजस्थान का पहला जैव विविधता पार्क है। इस पार्क का लोकार्पण 26 फरवरी, 2016 को किया गया। यहाँ पर विद्यार्थियों, शोधकर्त्ताओं, पक्षी प्रेमियों, जीव वैज्ञानिकों, प्रकृति प्रेमियों, पर्यावरणविदों एवं आमजन को एडवेन्चर स्पोर्ट्स, जल मृदा संरक्षण, एनीकट, पिकॉक ट्रेल, विभिन्न वानस्पतिक प्रजातियों, पशु–पक्षियों आदि की उपयोगी जानकारी मिल सकेगी। एडवेन्चर स्पोर्ट्स की आय से पार्क का विकास एवं संधारण का कार्य संभव हो सकेगा। यहां बच्चों के लिए स्पोर्ट्स व्यू एवं शिक्षण प्रशिक्षण के भी आकर्षक केन्द्र हैं।

जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध इस पार्क में 63 वृक्ष प्रजातियाँ, 30 झाड़ियाँ, 37 लताएँ, 117 शाक, 38 घास, 3 परजीवी सहित 2 टेरिडोफाइट्स और चन्दन, गूगल व कड़ाया जैसी दुर्लभ प्रजातियाँ एवं कई फलदार एवं औषधीय वनस्पति मौजूद हैं।

उपरोक्त दृष्टि से यहां की प्राकृतिक सम्पदा अच्छी है। यहाँ काँटेदार और पर्णपाती जंगल का मिश्रण मौजूद है। बाहरी ढलानों पर कुमता और उसके सहयोगी थोर, स्कब जबकि आंतरिक ढलान पर गोदल, गुर्जन, सलार, कराया और सम्बन्धित प्रजातियाँ पाई जाती हैं। नाले के किनारे और नम घाटियों में अच्छी विविधता पाई जाती है। ऐसे क्षेत्र बिस, तेन्दु, टीमरू, महुआ, बहेरा, सीताफल, चन्दन, हार सिंगारे, करौंदा, घवरी, पर्वतारोही, बहु–पर्वतारोही, कन्द, फर्न, ब्रायोफाइट्स आदि बहुत अच्छी मात्रात्मक और गुणात्मक विविधता से युक्त हैं। नाला बेड पर कैनोपी विविधता 0.7 से ऊपर है एवं बाहरी इलाके तुलनात्मक रूप से खुले हैं।

इस क्षेत्र में लेंटाना प्रचुर मात्रा में हैं। लेंटाना के नियंत्रण से जैव विविधता में सुधार होगा। इस क्षेत्र की सूक्ष्म जलवायु अच्छी है। क्षेत्र में 300–400 वर्ष पुराने आम, महुआ और बरगद के पेड़ भी देखे जा सकते हैं। इसके अलावा इस पार्क में पक्षियों, सरीसृपों और अन्य जानवरों की कई प्रजातियों के घर है, जैसे पक्षी (129), सरीसृप (17) और उभयचर (6), नील गाय, पैंथर, जरख, लोमड़ी, तेन्दूआ, लकड़बग्घा, सियार, छिपकली, साँप, मकड़ी, तितलियाँ, पतंगे और भी बहुत कुछ यहां पर देखा जा सकता है।

पार्क में किए गए मुख्य विकास कार्यों में एक पक्की दीवार की बाड़, पानी और मिट्टी संरक्षण के उपाय, सड़कों का सौन्दर्यीकरण और वॉच टॉवर का निर्माण, इकोटेल्स प्रवेश द्वार, टिकट खिड़की, पार्क कार्यालय और कैफेटेरिया शामिल है। उचित स्थानों पर आकर्षक संकेत पट्ट हैं। इसी तरह इको टूरिज्म और बच्चों के लिए झूले की भी सुविधा है। पर्यटकों के लिए व्याख्यान स्थल और जैव विविधता का प्रदर्शन जैसी बुनियादी सुविधाएँ हैं। विभिन्न प्रकार के स्थल जिनमें ऑर्किड, ग्रूब, केन्द्र ग्रूब, एडेमिस ग्रूब, केक्ट्स ग्रूब आदि के अतिरिक्त तितलीघर, मेंढक गड्ढ़े आदि भी विकसित किए गए हैं। इसी प्रकार जमीनी बाधाएँ, जिपलाइन, वैल क्रॉसिंग, ट्री–वॉक आदि साहसिक खेल भी शामिल हैं।

पार्क का मुख्य प्रवेश द्वार

प्राचीन विशाल वृक्ष

प्राचीन विशाल वृक्ष

पुरोहितजी का तालाब

जैव विविधता की प्रासंगिकता

वेदों एवं पुराणों के अनुसार प्रकृति में ईश्वर का निवास माना गया है। पाश्चात्यीकरण के दौर में हम प्रकृति की महत्ता भूलते हुए टीवी, मोबाइल एवं लेपटॉप में खोते जा रहे हैं, जो हमारी मानसिकता पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। ऐसे में प्रकृति की गोद में स्थित पेड़ों, वन्य जीवों एवं शुद्ध जलवायु के संपर्क में आने से यहां स्वस्थ जीवन की परिकल्पना साकार हो सकती है, वहीं प्रकृति को स्वस्थ मनोरंजन का विकल्प बनाया जा सकता है। पेड़ों से परमार्थ की सीख मिलती है जो सदैव दूसरों के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करते हैं। बौद्धिक बल से समृद्ध मानव जीवन की सफलता के लिए प्रकृति संरक्षण का संकल्प लेकर परोपकार के कार्य करने की आवश्यकता है।

मेवाड़ क्षेत्र प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ स्थल रहा है। यहां ईश्वर ने मुक्त हस्त से प्राकृतिक संसाधन मुहैया कराये हैं। इन्हें केवल सहेजने के लिए सुनियोजित एवं समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में विद्यार्थियों व शोधार्थियों के लिए यह पार्क अत्यन्त उपयोगी साबित होगा। जनसाधारण के मध्य जैव विविधता के संरक्षण के महत्व के बारे में जागरूकता लाने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 22 मई को जैव विविधता दिवस मनाया जाता है। वर्ष 1992 में ब्राजील के रियो डी जेनेरियो में पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन किया गया था और जैव विविधता के संरक्षण के लिए एक नीति तैयार की गई थी जिसका पालन दुनिया के 193 सदस्य देशों द्वारा किया जा रहा है। भारत 18 फरवरी, 1994 से इसका पालन कर रहा है।

जैव विविधता का अर्थ उस विविधता से है जो ब्रह्माण्ड में जीव के विभिन्न रूपों में मौजूद है और इसमें शामिल है – मनुष्य, जानवर और पौधे। दूसरे शब्दों में इसमें सभी प्रकार के पौधे और वनस्पति, वन्यजीव, पालतू जानवर और पक्षी, बैक्टीरिया आदि शामिल हैं। जैव विविधता के संरक्षण की आवश्यकता के मुख्य कारणों में सभी प्रजातियों को जीवित रहने का अधिकार सम्मिलित है। हर प्रजाति ऐसे उत्पाद देती है, जो कोई दूसरा नहीं दे सकता।

अपनी असामान्य जलवायु के बावजूद राजस्थान जैव विविधता के मामले में एक समृद्ध राज्य है। अरावली पर्वतमाला द्वारा प्रान्त को शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। वर्तमान में राजस्थान में 3 राष्ट्रीय उद्यान, 25 वन्य जीव अभयारण्य और 10 संरक्षण क्षेत्र हैं। यहाँ पर सभी पारिस्थितिकी तंत्र और उनमें रहने वाले जानवरों एवं पौधों को समुचित सुरक्षा प्रदान की जा रही है।

जैव विविधता अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पोषण, कपड़े, ऊर्जा, लकड़ी का निर्माण, मकान आश्रय जैसी बुनियादी आवश्यकताएँ प्रदान करती हैं। भारत और राजस्थान में जैव विविधता की स्थिति क्रमशः इस प्रकार से है :– वनस्पति (4500 और 2500), पक्षी (1200 और 450), स्तनधारी (350 और 67), सरीसृप (453 और 58) और उभयचर (182 और 40)। झीलों का शहर उदयपुर जैव विविधता के दृष्टिकोण से समृद्ध है।

सज्जनगढ़ वन्य जीव अभयारण्य : उदयपुर में सज्जनगढ़ वन्यजीव अभयारण्य मानव निर्मित आवास में सामंजस्यपूर्वक रहने वाले विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जीवों का अनुभव करने और देखने के लिए सबसे अच्छे स्थानों में से एक है। यह अभयारण्य राज्य के सबसे छोटे अभयारण्यों में से एक है एवं पर्यटन शहर उदयपुर के पश्चिम में स्थित है। सज्जनगढ़ जिसे 'मानसून पैलेस' के नाम से भी जाना जाता है, को यह अभयारण्य घेरे हुए है। भौगोलिक दृष्टि से इस अभयारण्य का क्षेत्र उदयपुर जिले की राजस्व सीमा के अन्तर्गत आता है। सज्जनगढ़ पैलेस बांसदरा पहाड़ियों (समुद्रतल से 936 मीटर) के ऊपर निर्मित है। यहां से पर्यटक उदयपुर की झीलों के शानदार दृश्यों का आनन्द लेते हैं तथा विश्व की सबसे पुरानी अरावली पर्वत श्रृंखला की बांसदरा पहाड़ी पर सूर्योदय एवं सूर्यास्त के अद्भुत नजारे भी देश–विदेश के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

इस अभयारण्य के चारों ओर की पहाड़ियों पर घने जंगल थे और उदयपुर के पूर्व महाराणाओं ने इस क्षेत्र को पसन्दीदा शाही शूटिंग संरक्षण स्थल के रूप में बनाए रखा। दुर्भाग्य से स्थायी विकास के नाम पर जैविक और गैर–जैविक संसाधनों के अविवेकपूर्ण दोहन ने स्थायी सीमाओं से बहुत आगे बढ़कर बांसदरा पहाड़ियों को बहुत अनिश्चित स्थिति में छोड दिया और वर्ष 1986 तक यह पहाड़ी लगभग वनस्पति से रहित हो गई थी।

पारिस्थितिकी और पर्यावरण की दृष्टि से इसकी स्थिति और महत्व को समझते हुए वर्ष 1987 में सज्जनगढ़ आरक्षित वन क्षेत्र को वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के तहत वन्य जीव अभयारण्य घोषित किया गया था। तब से इस वन्य जीव अभयारण्य का प्रबन्धन वार्षिक योजनाओं के आधार पर किया जा रहा है। यह अब एक सुव्यवस्थित वन्य जीव अभयारण्य है। हाल ही में वनस्पति आवरण को अक्षुण्ण रखने के लिए पूरे पहाड़ी क्षेत्र को पक्की दीवार से सुरक्षित किया गया है। अभयारण्य के विभिन्न हिस्सो तक पहुंच को आसान बनाने के लिए इसे सड़कों के एक छोटे नेटवर्क के साथ सुगम बनाया गया है।

इसके पश्चिमी छोर पर बड़ी नामक एक कृत्रिम झील स्थित है। यह वन्य जीवों के पेयजल का भी मुख्य स्रोत है। इस अभयारण्य में 519.61 हेक्टेयर क्षेत्र के आरक्षित वन क्षेत्र के अतिरिक्त 141.75 हेक्टेयर राजस्व भूमि भी शामिल है। सज्जनगढ़ अभयारण्य वन्य जीवों के साथ–साथ वनस्पतियों और जीवों की बहुलता से समृद्ध स्थान है।

वन्य जीवों का विवरण		
वर्ग	परिवार	प्रजाति
स्तनधारी	15	26
पंछी	33	115
सरीसृप	14	33
उभयचर	3	7
मोलस्क	6	7
कुल	71	188

वनस्पतियों का विवरण		
वर्ग	परिवार	प्रजाति
पेड़	28	58
झाड़ियाँ	20	42
जड़ी–बूटी	28	96
पर्वतारोही व लियाना	2	28
कंद पौधे	2	4
कुल	80	228

यह अभयारण्य पैंथर, तेन्दुआ, चीतल, सियार, जंगली बिल्ली, नीलगाय, सांभर, लकड़बग्घा, चित्तीदार हिरण, लंगूर, मोर जैसे अनेक जानवरों का घर है। पक्षियों और सरीसृपों की एक विस्तृत श्रृंखला भी यहाँ देखी जा सकती है। इस अभयारण्य में भारतीय गिद्ध देखने का भी दावा किया जाता है।

इस अभयारण्य में संरक्षित ट्रेक द्वारा एक अच्छा ट्रेकिंग पॉइन्ट भी विकसित किया गया है। यह जंगल सफारी के रूप में गौरिल्ला पॉइन्ट से बड़ी झील तक महाराणा प्रताप प्रकृति पथ के माध्यम से अरावली पहाड़ियों की प्राकृतिक सुन्दरता और आरक्षित वन के वन्य जीव एवं वनस्पतियों का आनन्द लेने के लिए एक साहसिक एवं आदर्श यात्रा स्थल भी है। यहां एक छोटा वाटर हॉल भी है जो पानी का एक निरन्तर स्रोत है। यह बांसदरा पहाड़ियों के पश्चिमी छोर पर स्थित है। यह प्राचीन महुआ के पेड़ों से घिरा हुआ है। वाटर हॉल के पास भगवान शिव को समर्पित एक मन्दिर है। इस स्थान पर बैठकर आसपास के वन क्षेत्र की सूक्ष्म जलवायु के प्रभाव का अनुभव करने के लिए यह एक आदर्श स्थल है। वर्षा ऋतु के दौरान इस क्षेत्र में बहने वाले झरने अभयारण्य में अतिरिक्त सुन्दरता को जोड़ते हैं।

सज्जनगढ़ वन्यजीव अभयारण्य देखने का समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक रहता है तथा मंगलवार को अवकाश रहता है।

मुख्य प्रवेश द्वार : सज्जनगढ़ वन्य जीव अभयारण्य

सज्जनगढ़ वन्य जीव अभयारण्य परिसर में स्थित सज्जनगढ़ भव्य सर्पिलाकार मार्ग एवं अद्भुत हरीतिमा का अलौकिक दृश्य

मानव अस्तित्व एवं अभयारण्य

उदयपुर संस्कृति और परम्पराओं की ऐतिहासिक सम्पदा की एक अनूठी भूमि है। यह शहर महलों, किलों, बगीचों, झीलों, मन्दिरों, पहाड़ियों और मनोरंजन क्षेत्रों में बहुत खूबसूरती से सजाया गया है। उदयपुर के असाधारण अतीत की गौरवमयी गाथाओं को सुनाने में हर स्थान का अपना महत्व है। ये चीजें मिलकर उदयपुर को राजस्थान के पर्यटन के ताज का सबसे चमकीला रत्न बनाती है। शहर में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जीवों की उपस्थिति से उदयपुर की प्राण–पोषक सुन्दरता और बढ़ जाती है।

आपने कभी सोचा है कि वनस्पतियों और जीवों के बिना दुनिया कैसी दिखेगी? आपको जानकर हैरानी होगी कि वनस्पतियों और जीवों के बिना मानव अस्तित्व असंभव है। इससे प्रकृति में भारी असंतुलन उत्पन्न होगा जिससे प्राकृतिक आपदाएं आयेगी। मानव अस्तित्व की नींव पौधों और जानवरों दोनों के अस्तित्व पर निर्भर है। मानव अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए सज्जनगढ़ वन्यजीव अभयारण्य की स्थापना की गई है।

सज्जनगढ़ वन्य जीव अभयारण्य : अरावली पर्वत श्रृंखला एवं हरियाली का अद्भुत नजारा

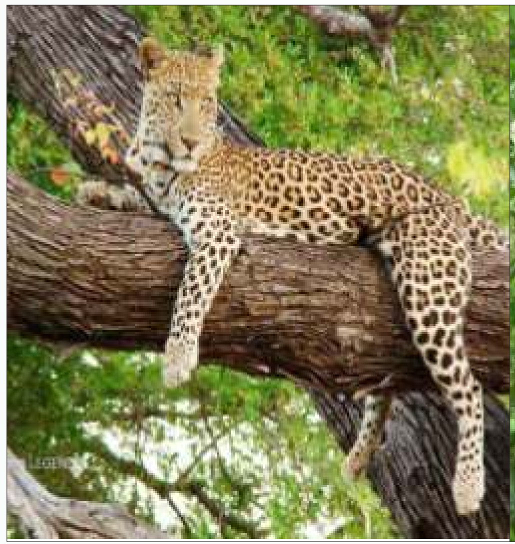

सज्जनगढ़ जैविक उद्यान (प्राणि उद्यान) : झीलों के शहर उदयपुर के प्रमुख आकर्षणों में से एक सज्जनगढ़ जैविक उद्यान है, जो एक प्रसिद्ध प्राणि उद्यान है। यह सज्जनगढ़ पैलेस जिसे मानसून पैलेस भी कहते है, की तलहटी में सज्जनगढ़ वन्यजीव अभयारण्य के पास स्थित है। यह शहर के केन्द्र से लगभग 4 कि.मी. और सिटी रेलवे स्टेशन से 6 कि.मी. दूर है। इस उद्यान का निर्माण 2004–05 में राजस्थान वानिकी और जैव विविधता परियोजना के तहत जापान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एजेन्सी की वित्तीय सहायता से शुरू किया गया था। यह उद्यान 36 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ वन्य जीवों की एक विशाल विविधता का घर है। गुलाब बाग में स्थित पूर्व चिड़ियाघर के मापदण्ड केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण, नई दिल्ली द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुरुप नहीं होने से इसे सज्जनगढ़ जैविक उद्यान में स्थानान्तरित किया गया। इस पार्क का उद्घाटन 12 अप्रेल, 2015 को हुआ।

इस उद्यान का मुख्य उद्देश्य क्षेत्र की वनस्पतियों और जीवों के संरक्षण के साथ उनके बारे में लोगों को जागरूक करना तथा लाभ और अन्य कारणों से बेरहमी से मारे जाने वाले जंगली जानवरों के प्रति सहानुभूति पैदा करना था। वर्षा ऋतु के दौरान यह क्षेत्र पूर्णतया हरा–भरा और अति दर्शनीय होता है।

उद्यान में जानवरों को बाड़ों में रखा जाता हैं, जो एक केन्द्रीय रिंग रोड के भीतर स्थापित है। आगन्तुक उद्यान की रिंग रोड पर यात्रा के दौरान जानवरों को प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं। उद्यान के अन्दर जानवरों की देखभाल एवं उनके स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए विभिन्न उपाय किए गए हैं, जिनमें बीमार जानवरों की देखभाल के लिए सभी सुविधायुक्त आधुनिक पशु चिकित्सालय है।

उद्यान के अन्दर प्लास्टिक बैग के उपयोग पर पूर्णतया प्रतिबन्ध है। इस उद्यान में एक पोषण केन्द्र है जो इस प्राणि उद्यान के जंगली जानवरों के लिए चारे, माँस एवं पोषक आहार की जरूरतों को पूरा करता है। उद्यान में 24 घण्टे निगरानी के लिए सीसीटीवी कैमरे लगाए गए हैं।

उद्यान में वन्य जीव : वर्तमान में इस उद्यान में बाघ, सफेद बाघ, तेन्दुआ, शेर, शुतुरमुर्ग, घड़ियाल, हिमालयी काला भालू, जंगली बिल्ली, साँभर, धारीदार लकडबग्घा, भारतीय साही, आम लोमड़ी, सुस्त भालू, चीतल, काला हिरन, सियार, चौसिंघा, चिंकारा, मगरमच्छ, कछुआ आदि सहित 21 प्रजातियों के 60 जानवर हैं।

सज्जनगढ़ जैविक उद्यान : मुख्य प्रवेश द्वार

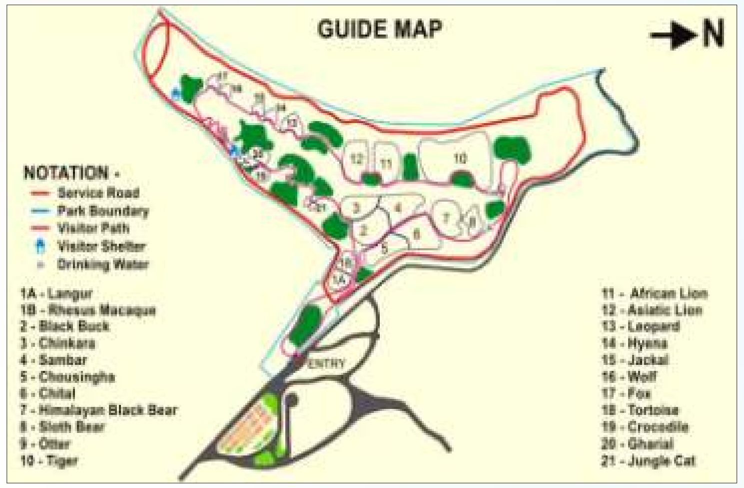

उद्यान परिसर में भ्रमण करते पर्यटकगण

उद्यान परिसर में भ्रमण करते पर्यटकगण

जैविक उद्यान के उद्देश्य

- जंगली जानवरों को प्रदर्शित करके आगन्तुकों को उनके प्रति जागरुक एवं संवेदनशील बनाना।
- लोगों को प्रकृति में जानवरों के साथ रहने का एक उत्कृष्ट अवसर प्रदान करना।
- इन्टरप्रिटेशन सेन्टर के माध्यम से मनोरंजक गतिविधियाँ प्रदान करना।
- जंगली जानवरों पर भविष्य के जैविक अनुसंधान के लिए जीव पूल के रूप में कार्य करना और विभिन्न जानवरों के व्यवहार और प्रजनन पर शिक्षा एवं अनुसंधान की सुविधा प्रदान करना।
- जंगली जानवरों की लुप्तप्रायः प्रजातियों के संरक्षण और प्रजनन के लिए परिस्थितियाँ बनाना।

जैविक उद्यान में सुविधाएँ

- एक सुनियोजित और विशाल वाहन पार्किंग स्थल।
- यहां पर गोल्फ कार्ट उपलब्ध हैं जो उद्यान के प्रमुख मार्गों का भ्रमण कराती है। प्रवेश टिकट काउन्टर पर बुकिंग कराना होता है।
- पेयजल आर.ओ. सुविधा।
- विभिन्न स्थलों पर विश्राम सुविधा।
- केन्टीन सुविधाएँ।
- साइकिल सुविधाएँ भी उपलब्ध।
- मनोरंजन गतिविधियों के लिए चिल्ड्रन पार्क।
- पार्क में जन सुविधाओं की उपलब्धता।
- शारीरिक रूप से विकलांग आगन्तुकों के लिए व्हील चेयर उपलब्ध है।
- बाड़ों के बाहर पट्ट पर जानवरों के बारे में उपयोगी जानकारी का लेखन।

उद्यान भ्रमण समय :
शरद ऋतु – 21 अक्टूबर से 15 मार्च तक।
सोमवार, बुधवार से रविवार
प्रातः 9.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक।
गर्मी का मौसम – 16 मार्च से 20 अक्टूबर तक।
सोमवार, बुधवार से रविवार
प्रातः 9.00 बजे से सायं 5.30 बजे तक।
मंगलवार – अवकाश

प्रवेश शुल्क :

वयस्क	–	रु 30/–
विदेशी पर्यटक	–	रु 300/–
फोटोग्राफी कैमरा	–	रु 80/–
विडियो कैमरा	–	रु 200/–

हरियाली एवं उदयपुर : झील एवं पहाड़ी क्षेत्र उदयपुर हरियाली की अकूत सम्पदा लिए हुए है। 11724 वर्ग कि.मी. क्षेत्र तक फैले इस जिले के 2753.39 वर्ग कि.मी. इलाके पर वन हैं। कुल क्षेत्रफल का 23.49 प्रतिशत यह हिस्सा प्रदेश में सबसे ज्यादा है। भारतीय वन सर्वेक्षण का वर्ष 2021 में जारी प्रतिवेदन बताता है कि वन क्षेत्र के मामले में प्रदेश के 33 जिलों में उदयपुर सिरमौर है। जयपुर जिले का विस्तार भी उदयपुर जितना ही है लेकिन वहां वन क्षेत्र महज 4.98 प्रतिशत है। जयपुर अपने हेरिटेज से तो उदयपुर इसी हरियाली और स्वस्थ आबोहवा के बूते देश–दुनिया को अपनी ओर खींचता है। इसी संभाग का प्रतापगढ़ जिला वन क्षेत्र के मामले में दूसरे नम्बर है। यहां 4449 में से 1033.77 वर्ग कि.मी. (23.24 प्रतिशत) हिस्से में वन है। यह चित्तौड़गढ़, राजसमन्द, डूंगरपुर और बाँसवाड़ा के क्रमशः 12. 66, 11.10, 8.08, 5.94 प्रतिशत क्षेत्र पर वन विद्यमान है। हरियाली की यही सम्पदा मेवाड़ को सबसे खास बनाती है। इन्हीं वनों में कई दुर्लभ पेड़–पौधे हैं तो वे वन्यजीव भी बसते हैं, जो देश–दुनिया में और कहीं नहीं दिखते हैं। राजस्थान में सबसे कम वन क्षेत्र चुरू, जैसलमेर, बीकानेर जिलों में क्रमशः 0.56, 0.84, 0.92 प्रतिशत हैं।

सज्जनगढ़ अभयारण्य का हरित क्षेत्र

गुलाब बाग बर्ड पार्क : गुलाब बाग स्थित बर्ड पार्क का शुभारम्भ माननीय मुख्यमंत्री श्रीमान् अशोक गहलोत ने 12 मई, 2022 को किया। यह 3.85 हेक्टेयर में फैला हुआ है तथा 14 पक्षी घर बनाए गए हैं। यह पार्क 28 विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों की चहचहाहट से गुंजायमान है। इसके साथ ही पक्षी चिकित्सालय, वॉच टॉवर, जन सुविधाएँ, शिक्षण केन्द्र के साथ ही पार्क के सौन्दर्यीकरण पर भी कार्य किया गया है। बर्ड पार्क पर्यटन विभाग, नगर निगम एवं नगर विकास प्रन्यास के आर्थिक सहयोग से वन विभाग द्वारा बनाया गया है। पार्क में तैयार पक्षीघरों में एशियन, ऑस्ट्रेलियन, अफ्रिकन और अमेरिकन परिन्दे जिनमें मकाऊ, काकातू, तोते, जलीय पक्षी, उल्लू, शिकरे, गिद्ध, बाज, ग्रीन मुनिया, पेसेराइल, ईमू, हॉनबिल, पहाड़ी मैना, सन कॉनुअर, सेलेगन पैरेट, बेरा बैंड पैराकीट, नॉर्थन बॉब व्हाइट, चाइनीज क्वेल, रिंग पैरा कीट, एलन्जैड़िया पैरेट, प्लम हैडेड पैराकोट, मोर आदि पक्षी रखे गये हैं। गुलाब बाग में जो पक्षी थे उन्हें भी नवनिर्मित पक्षीघर में स्थानान्तरित किया गया है। यहां पर विविध रंगों के पक्षियों को बाहर से लाया गया है। इन पक्षियों के लिए पहाड़ी, रेगिस्तान, मिट्टी के टीले, तालाब, जंगल सभी तरह की व्यवस्थाएँ की गई हैं। यहाँ पर एक कंकरिट–सीमेन्ट के फुटपाथ का निर्माण किया गया है। प्रकृति का अहसास देने के लिए पिंजरों को घास से ढ़क दिया गया है। इन पिंजरों में शाखाएँ एवं टहनियाँ भी हैं ताकि पक्षी उसी तरह का आनन्द ले सकें, जैसे वे जंगलों में पेड़ों पर लेते हैं। पिंजरों के चारों ओर सीमेन्ट की रैलिंग बनी हुई है। पक्षियों को पूर्णतया प्राकृतिक वातावरण प्रदान करने के लिए इस पार्क में वेटलैण्ड, लैण्ड स्केपिंग एवं वॉटर बॉडीज बनाई गई है। शहरवासी एवं पर्यटक इस पार्क में ट्रेन का लुत्फ भी उठा सकते हैं। यह शहर का एक नया आकर्षण केन्द्र बन गया है। बर्ड पार्क के खुलने का समय प्रातः 9 बजे से दोपहर 2 बजे तक होकर प्रत्येक मंगलवार को अवकाश रहता है।

बर्ड पार्क की टिकिट दर

यात्री श्रेणी	राशि (रु.)
भारतीय	25
विदेशी पर्यटक	152
विद्यार्थी	17
सामान्य कैमरा	75
विडियो कैमरा	150
डॉक्यूमेन्ट्री फिल्म	1000
फीचर फिल्म	5000

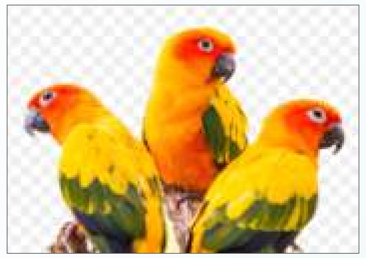

सीतामाता वन्यजीव अभयारण्य – एक दिव्य विरासत : सीतामाता वन्यजीव अभयारण्य राजस्थान के प्रसिद्ध वन्यजीव क्षेत्रों में से एक है, जो राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित है। यह अरावली, विंध्याचल और मालवा का पठार के संगम पर स्थित राज्य के उदयपुर, प्रतापगढ़ और चित्तौड़गढ़ जिलों तक विस्तृत है। इसका क्षेत्रफल 422.95 वर्ग कि.मी. है एवं यह 74°25′ एवं 74°40′ पूर्वी देशान्तर और 24°04′ एवं 24°23′ उत्तरी अक्षांश के मध्य स्थित है। समुद्रतल से इसकी औसत ऊँचाई 280 और 600 मीटर के मध्य है। यह अभयारण्य उदयपुर–प्रतापगढ़ राज्य राजमार्ग पर उदयपुर से 100 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। जाखम, करमोई, बुधो, टंकिया और सीतामाता नदियाँ अभयारण्य से होकर बहती है। जाखम नदी जो छोटी सादड़ी के पास जाखमिया गांव से निकलती है और बेणेश्वर में माही नदी के साथ मिलती है, सीतामाता वन्यजीव अभयारण्य की मुख्य जीवन रेखा है।

इसके नाम अनुरूप इसका अपना ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व है। लोगों का मानना है कि देवी सीता ने अपने वनवास के दिन इसी जंगल में व्यतीत किये थे। यहाँ ऋषि वाल्मिकी का आश्रम स्थित है, जिन्होंने 'रामायण' नामक प्रसिद्ध पवित्र हिन्दु ग्रन्थ लिखा था। यहाँ विशाल बरगद के पेड़ के अवशेष भी देखें जा सकते हैं, जो लगभग 5 एकड़ भूमि क्षेत्र में फैला हुआ है। यहां पर प्रसिद्ध सीतामाता मन्दिर भी मौजूद है। यहां एक झरने के पास आंशिक रूप से चट्टान को काटकर एक छोटा मन्दिर निर्मित किया गया है। बरसात के मौसम में यह झरना नदी का रूप ले लेता है लेकिन सर्दियों और गर्मियों के दौरान सीतामाता नदी के नाम से लोकप्रिय इस नदी के पूरे क्षेत्र में छोटे–छोटे कुण्ड देखे जा सकते हैं।

स्थानीय लोगों के बीच यह मान्यता है कि भगवान श्रीराम और देवी सीता के पुत्र लव और कुश ने अपना बचपन वाल्मिकी आश्रम में बिताया और वाल्मिकी गुरुजी से ही इस आश्रम में शिक्षा प्राप्त की।

दमदमा गेट से वाल्मिकी आश्रम की ओर आते समय एक कच्चा रास्ता उपलब्ध है। प्रारम्भ में छिटपुट जंगल नजर आता है लेकिन आगे चलकर घना जंगल प्रारम्भ हो जाता है। भागी बावड़ी के बाद पेड़ लम्बे एवं जंगल घना हो जाता है।

लोगों का कहना है कि जब देवी सीतामाता वन में प्रवेश कर रही थी तो उन्हें प्यास लगी लेकिन जंगल में पानी नहीं था। पीने का पानी प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपनी एडी से पृथ्वी पर दबाव बनाया जिसके कारण जमीन से पानी का एक फव्वारा निकला, जिस बिन्दु से पानी निकल रहा है, वह एक उथला गड्ढा है जिसे ''भागी बावड़ी'' कहा जाता है यानी टूटी हुई या क्षतिग्रस्त बावड़ी। संभवतः यह राजस्थान की सबसे छोटी बावड़ी है। यह बारहमासी जल स्रोत है और यहां से गुजरने वाले तीर्थयात्री और पर्यावरण प्रेमी ''भागी बावड़ी'' के ठण्डे, स्वच्छ और ताजे पानी से अपनी प्यास बुझाते हैं।

देवी सीतामाता मन्दिर के पास एक ''गौमुख'' बनाया गया है। गौमुख के माध्यम से पानी की एक धारा बहती है। अभयारण्य का हनुमान मन्दिर भी काफी दर्शनीय है। लोगों का कहना है कि इस स्थान पर लव और कुश द्वारा भगवान हनुमान को रस्सी से बांधा गया था।

सीतामाता अभयारण्य जैव विविधता से समृद्ध है। इस अभयारण्य में जीवों और वानस्पतियों की एक विस्तृत श्रेणी मौजूद है। सीतामाता अभयारण्य में सागवान के घने जंगल है। इस अभयारण्य में कई एपिफाइटिक (Epiphytic) एवं स्थलीय ऑर्किड (Terrestial orchids) मौजूद है। इस अभयारण्य में विभिन्न प्रकार के कन्द पौधे, टेरिडोफाइट (Pteridophyte), ब्रायोफाइट्स (Bryophytes) और थैलोफाइट्स (Thallophyte) देखें जा सकते हैं। इस अभयारण्य में पौधों की 800 से अधिक प्रजातियां मौजूद है। हस्तिकर्ण (Hastikarna – lee macrophylla), चारोली (Charoli – Buchanania lanzan), गिवनार (Givnar-Cochlospermum religiosum), जंगली काली मिर्च (Peperomia pellucida), नर्वलिया अरोगुआना (Narvilia aroguana) आदि इस क्षेत्र की उल्लेखनीय पौधों की प्रजातियाँ हैं। सीतामाता अभयारण्य औषधीय पौधों के लिए भी प्रसिद्ध है।

सीतामाता अभयारण्य जीव विविधता में भी समृद्ध है। इसमें स्तनधारियों की लगभग 50 प्रजातियाँ, पक्षियों की 275 प्रजातियाँ, सरीसृपों की 40 प्रजातियाँ, अभयचरों की 9 प्रजातियाँ, मछलियों की 30 प्रजातियाँ और तितलियों की 50 से अधिक प्रजातियाँ सूचीबद्ध हैं। यह विशालकाय भारतीय उड़न गिलहरियों को देखने के लिए भारत के सबसे अच्छे स्थलों में से एक है तथा यह चार सींग वाले मृगों एवं तेन्दूओं के लिए भी प्रसिद्ध है। जीव और वनस्पति भी एक दिव्य रचना है। सीतामाता में यह दिव्य विरासत दर्शनीय एवं संरक्षित है। पहाड़ियाँ, नदियाँ, नाले, जंगल, जैव विविधता आदि सभी भगवान द्वारा बनाए गये हैं और ये सभी प्रकृति द्वारा उपहार में दी गई दिव्य विरासत है। विभिन्न धार्मिक स्थल ऐतिहासिक और दैविक विरासत का हिस्सा है। देश की इस दैविक विरासत को अपने और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

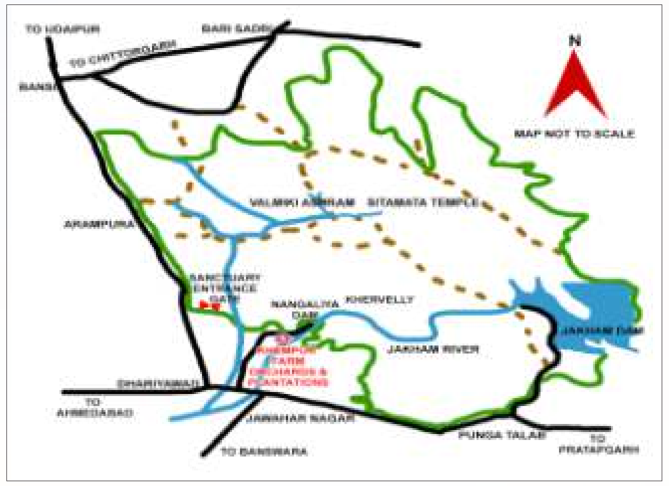

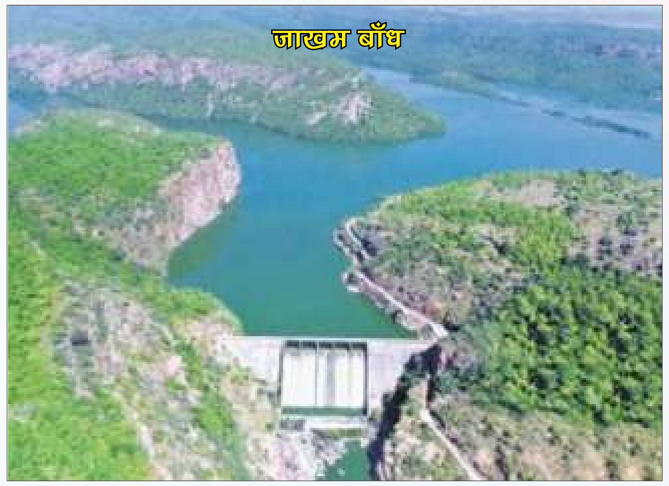

आयड़ : गिर्वा घाटी का आयड़ क्षेत्र पूर्व ऐतिहासिक काल से ही बसा हुआ है। यहाँ धूलकोट यानी मिट्टी का टीला या मिट्टी की पहाड़ियों में 4000 वर्ष पुरानी सभ्यता के अवशेष उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। अभी भी धूलकोट रहस्य के आवरण में है। बहरहाल आहाड़ ऐतिहासिक युग में मालवा, गुजरात, दक्षिण तथा उत्तर भारत के व्यापारियों से व्यापार करने वाले मेवाड़ के एक समृद्ध कस्बे के रूप में प्रसिद्ध था। समय के साथ यह विभिन्न नामों से पुकारा जाने लगा, जैसे – ताम्बवती नगरी, आटपुर, आघाटपुर, आहड, अल्लाटपुर, ऐतपुर, आनन्दपुर आदि। ताम्बावती नगरी के एक पुराने स्थान पर पूर्व की ओर एक प्राचीन शहर के अवशेष हैं, जो राजा असादित्य द्वारा बसाया गया था। पहले इसका नाम बदलकर आनन्दपुर रखा गया था और बाद में इसे आहाड़ के नाम से जाना जाने लगा। पुराने जैन साहित्य और शिलालेखों में इस स्थान को अगहतपुरा या अटपुरा भी कहा जाता है, जो 10वीं शताब्दी में गुहिल राजाओं की राजधानी रहा था। लगभग 200 वर्षों तक यह नगर मेवाड़ की राजधानी रहा। 18वें रावल नरवाहन (671 ई.) से 34वें रावल क्षेम सिंह (1168 ई.) तक तथा उसके बाद रावल जैत्रसिंह (1213–1253 ई.) ने शासन करते हुए चित्तौड़ पर पुनः अधिकार किया। रावल शासकों का महत्वपूर्ण महल (17 रावलां रो रावलों) वर्तमान महासतिया (महान सत्य–राजवंश श्मशान भूमि) पर स्थित था। इसका विकास महाराणा अमरसिंह की 1620 ई. में मृत्यु के पश्चात् किया गया। इसी क्षेत्र में एक विशाल सुन्दर ढंग से निर्मित बावड़ी गंगोद्भव कुंड (644 ई. से पूर्व का संरचना) स्थित है।

इसके समीप खुले गलियारों से घिरा 10वीं सदी का शिव मन्दिर है, जिसे गंगु कुंड के नाम से जाना जाता है। इस पवित्र स्थान को पवित्र गंगा नदी से बहने वाली धारा के रूप में भी माना जाता है। इस शिव मन्दिर का निर्माण मेवाड़ के रावल अल्लाट ने 950 ई. में करवाया था। इस मन्दिर के सभा मंडप, जहां चतुर्मुखी शिवलिंग स्थित है, के चारों ओर छोटी–छोटी छतरियों से घिरे मन्दिर परिसर स्थित है। यह कुण्ड काफी खूबसूरती से निर्मित है जिसके चारों ओर निर्मित सीढ़ियाँ अति दर्शनीय हैं। यह मन्दिर पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है। मन्दिर के गर्भगृह में अलग–अलग दिशाओं में तीन मूर्तियाँ उत्तर में चामुण्डा, पूर्व में हरिहर और दक्षिण में लकुलिश के रूप में स्थापित हैं। विरासत में मिला यह मन्दिर 10वीं शताब्दी की मूर्तिकला और वास्तुकला का बेहतरीन उदाहरण है। इसी शताब्दी की भक्तमयी मीरा का मन्दिर भी पास में स्थित है, जो उत्तम नक्काशी और मूर्तियों की निरन्तर बनावट के साथ अपने ऊँचे चबूतरे के लिए प्रसिद्ध है। इस स्थान को गंगोद्भव तीर्थ के नाम से भी जाना जाता था। आहाड़ ब्राह्मणवादी धर्म के साथ–साथ जैन धर्म का भी एक महान केन्द्र था। गंगोद्भव कुण्ड के दक्षिण की ओर कुछ गज की दूरी पर पूर्वी दिशा में एक और कुंड है, जहाँ राहिलेश्वर महादेव का एक पुराना मन्दिर है। महल के दक्षिण में करीब एक हेक्टयर क्षेत्र में फैला यह एक प्रतिष्ठित जैन मन्दिर परिसर है, जिसे एक प्रसिद्ध जैन आचार्य यशोभद्र सूरिजी ने तीर्थंकर पार्श्वनाथ को समर्पित करने हेतु वि.सं. 1026 (672 ई.) में रावल नरवाहक सिंह के शासनकाल में बनवाया था।

आयड़ नदी के उत्तरी किनारे तथा आयड़ बस्ती के दक्षिणी छोर पर आयड़ के निवासियों के लिए श्मशान भूमि स्थित है। यही भूमि रावल परिवार के सदस्यों के द्वारा भी उपयोग में ली जाती थी। गिर्वा घाटी का पश्चिमी भाग भी ज्ञात था जिसे छिटपुट रूप से बसाया गया था, हस्तिमाता मन्दिर के समीप से प्राप्त शिलालेख से यह स्पष्ट है। यह रावल शक्ति कुमार के समय 677 ई. का है। इसी प्रकार वर्तमान अशोक नगर श्मशान स्थल के पास स्थित सारणेश्वर मन्दिर में रावल अल्लट का शिलालेख प्राप्त हुआ है।

आयड़ स्मारक (महासतिया) : आयड़ स्थित महासतिया मेवाड़ राजवंश के राजाओं, रानियों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्मान में बनाये गये स्मारकों का समूह है। ये स्मारक मेवाड़ के राजाओं के शौर्य एवं पराक्रम को दर्शाते हैं। इसमें लगभग 350 वर्ष पूर्व बनाये गये 250 से अधिक स्मारक दर्शनीय हैं। इसमें 19 छतरियों का निर्माण 19 महाराणाओं की स्मृति में किया गया, जिनका यहाँ पर अंतिम संस्कार किया गया था। इसमें स्मारकों के एक समूह को महासतिया भी कहा जाता है। वर्तमान में यह एक प्रसिद्ध पुरातत्व स्थल बन गया है जो उदयपुर के मेवाड़ राजवंश के गौरवशाली अतीत की एक झलक प्रस्तुत करता है। इन स्मारकों की वास्तुकला इस क्षेत्र की सुन्दरता में चार चाँद लगा देती है। इनकी धनुषाकार छतें अद्भुत स्तम्भों को बड़ी सुन्दरता के साथ आश्रय देती हैं जो उच्च प्लेटफार्मों पर उठाए गए हैं, जो वास्तव में इन्हें आकर्षक बनाते हैं। इनकी बनावट की प्रेरणा 15वीं सदी के मध्य निर्मित अद्भुत मन्दिरों से मिली है।

आयड़ जैन मन्दिर

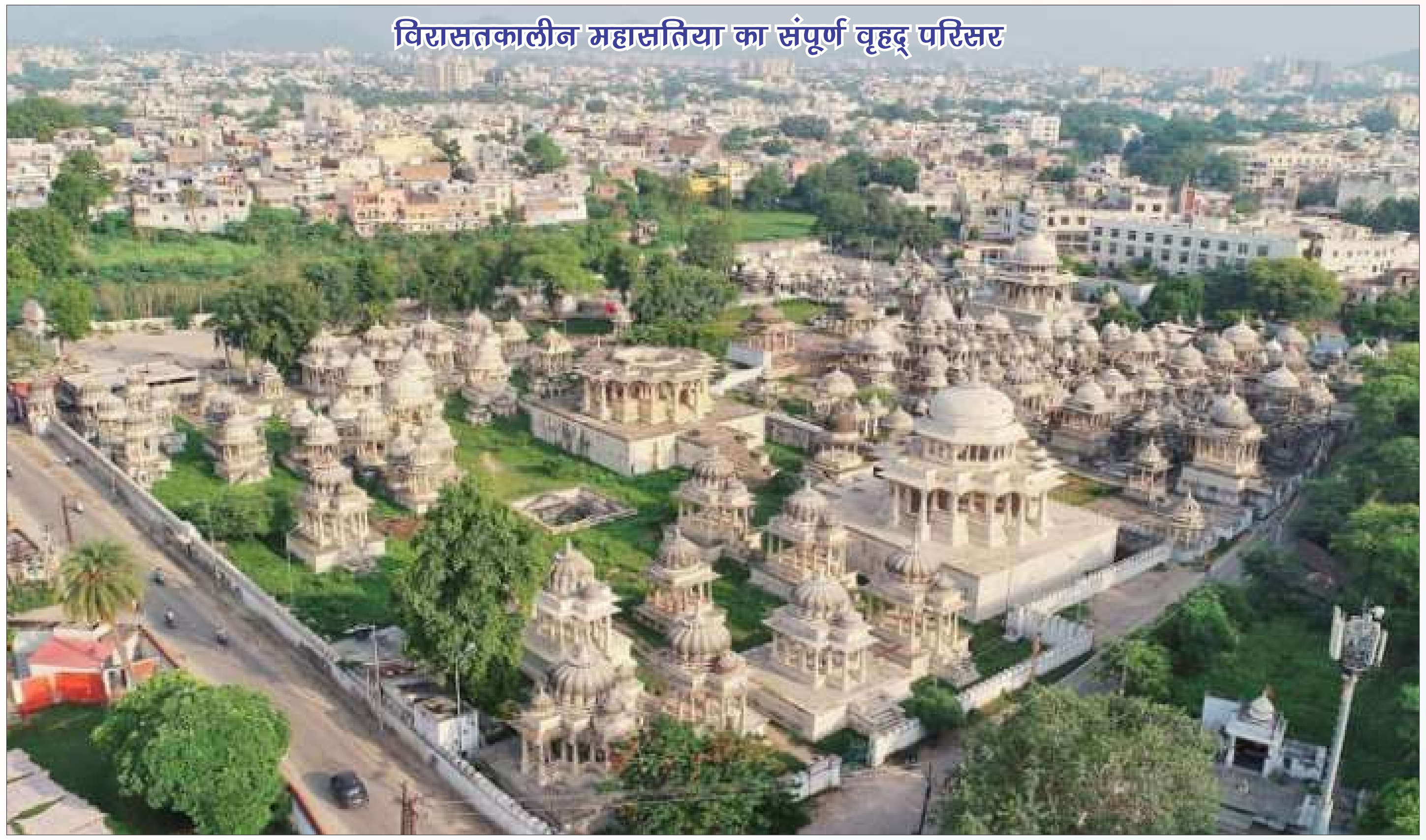

विरासतकालीन महासतिया का संपूर्ण वृहद् परिसर

स्मारकों के अन्दर मूर्तिकला के साथ–साथ भगवान शिव को प्रदर्शित करते हुए सीधे खड़े वास्तुशिल्प की एक संरचना है। छवि में महाराणा और उनकी पत्नियों को दर्शाया गया हैं, जिन्हें चित्र में सती कहा जाता है। सती राजाओं की पत्नियाँ हैं जो उस समय प्रचलित प्रथा का प्रतिनिधित्व करने वाले अपने पतियों की श्मशान अग्नि में आत्मदाह करने की प्रवृत्ति रखती हैं। सती प्रथा के अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने पति की चिता में आत्मदाह कर ले। यहाँ पर सबसे रोमांचक स्मारकों में से एक स्मारक महाराणा अमर सिंह के सम्मान में बनाया गया है। कुछ स्मारक फतेह सिंह, स्वरुप सिंह, भूपाल सिंह, शंभू सिंह, भगवत सिंह और सज्जन सिंह को समर्पित किये गये हैं। इन स्मारकों का निर्माण संगमरमर से करने के साथ इन्हें बेहतरीन नक्काशी से सजाया गया हैं।

वर्ष 1734 में निर्मित महाराणा संग्राम सिंह के स्मारक को सबसे आकर्षक नजारा प्रस्तुत करता है। इनकी समाधि के प्रांगण में 56 स्तम्भ हैं। बीचों–बीच एक अष्टकोणीय गुम्बद है, जो आठ छोटे स्तम्भों द्वारा समर्थित है। यहाँ पर महाराणा संग्राम सिंह का उनकी 21 पत्नियों के साथ अंतिम संस्कार किया गया था। आहड स्मारक को आमतौर पर शाही श्मशान घाट के रूप में भी जाना जाता है। यह 400 वर्ष पूर्व बनाई गई मेवाड़ साम्राज्य की विरासत है।

इस क्रम में वर्ष 2004 में महाराणा भगवत सिंह के दाह संस्कार के लिए अंतिम स्मारक का निर्माण किया गया था। आहड स्मारक ने सदैव पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित किया है तथा यह हॉलीवुड की कुछ फिल्मों का हिस्सा भी रहा है। इस परिसर में गंगोद्भव नामक एक पवित्र कुंड है, जिसे 'गंगु कुंड' कहा जाता है। यह कुंड एक शिव मन्दिर के पास है, जिसके चारों ओर छोटी–छोटी छतरियों से घिरे मंदिर क्षेत्र में चतुर्मुखी लिंग स्थित है। यह खूबसूरती से निर्मित एक कुआं है जिसके चारों ओर दर्शनीय सीढ़ियाँ निर्मित है।

महाराणा अमर सिंह जी की छतरी

महाराणा संग्राम सिंह जी की छतरी

मेवाड़ राजवंश के 19 महाराणाओं एवं अन्य राजवंश के समाधि स्थलों का समूह 'महासतिया'' आयड़ में स्थित है।

आहाड़ संग्रहालय (आयड़) : इस संग्रहालय की स्थापना छः दशक पूर्व वर्ष 1961–62 में उदयपुर के धूलकोट यानी मिट्टी की पहाड़ियों के मध्य किया गया। यहाँ करीब 4000 वर्ष पुराने अवशेष दबे हुए मिले हैं। राज्य सरकार ने वर्ष 1962 में इसे आहाड़ संग्रहालय के रूप में स्थापित किया। आहाड़ संग्रहालय मेवाड़ के महाराणाओं के आकर्षक स्मारकों (महासतिया) के समीप राणा प्रताप रेलवे स्टेशन एवं उदयपुर सिटी रेलवे स्टेशन से क्रमशः 1 एवं 3 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

यह पुरातत्व संग्रहालय प्राचीन वस्तुओं और कलाकृतियों का भण्डार है। संग्रहालय में सिक्के, मिट्टी के बर्तन, टेराकोटा के खिलौने, पत्थर के तौले, जानवरों के कंकाल, गेंदे, मुहरें और लोहे की वस्तुएँ आदि हैं। भगवान बुद्ध की धातु की मूर्ति, विष्णु–नाग–नाथन और भगवान सूर्य की छवि यहाँ सबसे उल्लेखनीय प्रदर्शनों में से हैं जो 5200 से 3200 वर्ष पुराने हैं। इसकी खुदाई राजस्थान के पुरातत्व विभाग द्वारा की गई है।

अरावली के इस भाग में आहाड़ संस्कृति के रचयिता फले–फूले। वे इस क्षेत्र के पहले किसान थे और अपनी अद्वितीय मिट्टी के बर्तनों के कारण जाने जाते हैं। ये पाषाण यानी पत्थर एवं ताँबे दोनों प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करते थे। उन्हें ताम्र पाषाण काल के लोग भी कहा जाता है। आहाड़ संस्कृति के लोग (24° 35′ उत्तरी अक्षांश एवं 73° 44′ पूर्वी देशान्तर) गोमती, बेड़च और बनास नदी की घाटियों में चौथी सहस्त्राब्दी और दूसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य में फले–फूले। अब तक डूंगरपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, कोटा, बूँदी, भीलवाड़ा और अजमेर जिलों में इनके 100 से अधिक स्थल मिल चुके हैं। गिलूण्ड, आयड़, बालाथल, ओजियाना, महाराज की खेड़ी, छत्रीखेड़ा में खुदाई की गई है। यह खुदाई पुरातत्व और संग्रहालय विभाग–राजस्थान सरकार, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग–नई दिल्ली, डेक्कन कॉलेज–पूना, साहित्य संस्थान (राजस्थान अध्ययन संस्थान, जे.आर.एन. राजस्थान विद्यापीठ) उदयपुर और पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय, यू.एस.ए द्वारा की गई। राजस्थान सरकार के पुरातत्व और संग्रहालय विभाग के श्री अक्षय कीर्ति व्यास (1951–52), श्री आर.सी. अग्रवाल (1954–55–56), प्रो. एच.डी. संकलिया एवं डेक्कन कॉलेज, पूना (1960–61) ने आहाड़ की खुदाई की। प्रो. संकलिया ने पहली बार इसे आहाड़ संस्कृति की संज्ञा दी। इस आहाड़ संग्रहालय में प्रदर्शित सभी सामग्री उक्त खुदाई से प्राप्त हुई हैं।

विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन, आयताकार घर, तांबे की वस्तुएं, टेराकोटा की मूर्तियां आदि आहाड़ संस्कृति की विशेषताएं थी। हड़प्पा के ब्रह्माण्ड के बाहर, अहरियाई एकमात्र ऐसे लोग थे जो मिट्टी की ईंट और मवेशियों की पत्थर की संरचनाएँ, चौकोर और आयताकार बहु–कमरे वाले आवासीय ढांचे से परिचित थे। इसके लिए बालाथल और गिलूण्ड जैसे स्थलों पर आवासीय परिसर, किलेबन्दी की दीवार और गढ़वाले बाड़े देखे जा सकते हैं। सार्वजनिक वास्तुकला के इस प्रकार के साक्ष्य न केवल विकसित समाज बल्कि व्यापारिक गतिविधियों को भी दृढ़ता से इंगित करते हैं।

आहाड़ संस्कृति की पहचान मुख्य रूप से अद्वितीय मिट्टी के बर्तनों के आधार पर की जाती है, जिनमें सफेद रंग युक्त काले और लाल रंग के बर्तन, चमकदार लाल स्लिप्ड, ग्रे वेयर, टेन वेयर, ब्लेक पेन्टेड बफ वेयर, पतली लाल स्लिप्ड और रिजर्व स्लिप्ड वेयर मुख्य हैं। मिट्टी के बर्तनों के अलावा तांबे की वस्तुएं (कुल्हाड़ी, चाकू, ब्लेड, चादर, चूड़ी, अंगूठियां, कांटेदार तीर का सिरा, उस्तरा, चोपर्स, छैनी) स्टोन ब्लेड्स, हेयर स्टोन आदि सम्मिलित हैं। आहरियों द्वारा मवेशी (गाय–बैल), भैंस, भेड़, बकरी और सूअर पालन के साथ सर्दी व गर्मी की फसलें जिनमें गेहूँ, जौ, चावल, बाजरा, छोटे अनाज, मूँग, उड़द, मटर आदि की खेती की जाती थी।

इस संग्रहालय में बड़ी मात्रा में छोटी वस्तुएँ और उच्च तकनीकी गुणवत्ता के मिट्टी के बर्तन, वास्तुकला के उत्कृष्ट प्रमाण हैं जो आहरियों की उच्च स्तर की आर्थिक संमृद्धि को इंगित करता है। आहाड़ की रेडियो कार्बन तिथियों के अनुसार इस संस्कृति को 3500 से 1500 वर्ष ईसा पूर्व उचित रूप से माना जा सकता है। इस संग्रहालय में भी 7वीं से 15वीं शताब्दी के विभिन्न प्रकार के चिह्नों का समृद्ध संग्रह है। इस संग्रह में हिन्दू व जैन देवता और आहाड़ तथा दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान के पास के क्षेत्रों की देवियों की मूर्तियाँ भी प्रदर्शित हैं। संग्रह में कुछ महत्वपूर्ण प्रतीक जैसे भगवान विष्णु के दशावतार, कच्छपवतार, मत्स्य और कूर्मावतार को दर्शाया गया हैं जिनके निचले पैनल में शंख, चक्र और पद्म जैसे विष्णु के आयुध का उल्लेख है।

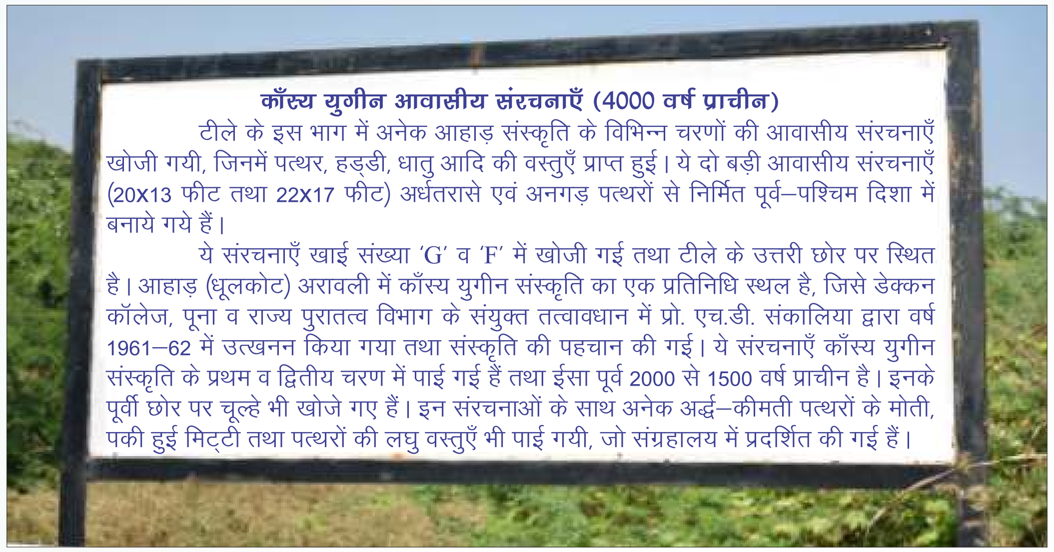

आहाड़ संग्रहालय परिसर

उदयपुर वृत के प्रमुख संरक्षित स्मारक : पुरातात्विक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थान देश के समृद्धतम् राज्यों में से एक है, जहां कदम–कदम पर पुरातात्विक सम्पदा बिखरी पड़ी हैं। मेवाड़ अपनी इस विशेष और बहुमूल्य सम्पदा के लिए केवल राज्य ही नहीं अपितु संपूर्ण देश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। प्रागैतिहासिक काल के प्राचीन उपकरण भी इस क्षेत्र से प्राप्त किए जाते रहे हैं। इस क्षेत्र से ही संपूर्ण देश में पहली बार ग्रामीण स्तर की आवासीय बस्ती के चारों ओर सुरक्षात्मक दीवार के साक्ष्य बालाथल पुरास्थल से प्राप्त हुए हैं। हमारे पूर्वजों ने हमें अपने मन्दिरों, बावड़ियों, स्मारकों के रूप में ऐसे अनेक उपहार दिए हैं, जो अन्य कहीं पर भी उपलब्ध नहीं हैं।

इसी क्रम में पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, उदयपुर वृत्त द्वारा विश्व विरासत सप्ताह के अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसके अन्तर्गत इस वृत्त के अधीन संरक्षित स्मारक जगत स्थित अम्बिका मन्दिर, आहाड़ स्थित मीरा मन्दिर, गंगोद्भव कुण्ड एवं शिव मन्दिर समूह, उदयपुर स्थित जगदीश मन्दिर, मोती मगरी के खण्डहर, सज्जनगढ़, अमरखजी स्थित शिव मन्दिर, पालड़ी स्थित शिव मन्दिर, विष्णु मन्दिर कथड़ावन, भदेसर स्थित सूर्य मन्दिर, ईसवाल स्थित विष्णु मन्दिर, चित्तौड़ स्थित गंभीरी नदी का पुल, नगरी स्थित उभदेवला, केसरियाजी स्थित ऋषभदेव मन्दिर, तलवाड़ा स्थित द्वारिकाधीश मन्दिर, अवलेश्वर स्थित स्तम्भलेख आदि को छाया–चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया। ये स्मारक हमारी बहुमूल्य धरोहर हैं जो हमारे पूर्वजों द्वारा हमें उपहार के रूप में प्राप्त हुए हैं।

अस्त्र–शस्त्र : लाखों वर्षों से मानव अपने अस्तित्व को बचाये रखने हेतु अनेक शस्त्रों के निर्माण के साथ उन्हें प्रयुक्त करता आ रहा है। इन शस्त्रों को वह अपनी जरूरत के अनुसार खेलने और मनोरंजन करने हेतु भी उपयोग में लेता रहा है। इन शस्त्रों से तत्कालीन समय के तकनीकी विकास एवं कला पर भी काफी बहुमूल्य जानकारी प्राप्त होती है। मनुष्य ने सर्वप्रथम अपने उपकरणों का निर्माण पाषाण एवं लकड़ी से किया। तत्पश्चात् उसने ताँबे और लोहे के उपकरण बनाने प्रारम्भ किये। वे इसके तकनीकी विकास के परिचायक हैं। विज्ञान के विकास, उनकी समस्याओं तथा उनके नित्य संघर्षों ने नवीन उपकरणों के निर्माण को जन्म दिया, जिनमें धनुष, बाण, तलवारें, तोप, बन्दूकों का निर्माण आदि प्रमुख हैं।

भारतीय लोक कला मण्डल : भारतीय लोक कला मण्डल की स्थापना 1952 में पद्मश्री श्रीमान् देवीलाल जी सामर ने की थी। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि क्षेत्रों की लोक कला, संस्कृति, गीतों और त्यौहारों का अध्ययन करना और लुप्त हो रही लोक कला को पुनर्जीवित करना है।

इस लोक कला मण्डल में एक लोक कला संग्रहालय है जहाँ लोक एवं जनजातीय कला की वस्तुओं, आभूषणों, कठपुतलियों, मुखौटों, गुड़ियाओं, पोशाकों, उपकरणों, काबड़ों तथा और भी बहुत कुछ के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध है। इसमें आदिवासी कला का एक अलग खण्ड है। यह संस्थान लोक नृत्य के लिए एक खुला मंच भी प्रदान करता है। यहाँ पर विभिन्न लोक कला विषयों पर कार्यशालाएँ भी आयोजित की जाती हैं। यहाँ पर शिल्पकारों को कठपुतली बनाते, नक्काशी एवं कावड़ पर चित्रकारी आदि करते देखा जा सकता है।

संस्थान में एक कठपुतली इकाई है, जो बच्चों, शिक्षकों और अन्य कलाकारों को कठपुतली की कला में प्रशिक्षित करती है। यह एक बहुत ही शक्तिशाली गैर–पारम्परिक शिक्षा का माध्यम है। विभिन्न लोक कला विषयों पर नियमित कठपुतली प्रदर्शन भी आयोजित होते हैं। कठपुतली शो और विभिन्न लोक नृत्यों के प्रदर्शनों की सूची के साथ करीब 25 कलाकारों का एक समूह देश और विदेश में अपनी प्रस्तुतियाँ आयोजित करने हेतु सक्रिय रहता है। उक्त प्रदर्शनों से इस संस्थान को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई सम्मान प्राप्त हुए हैं।

संस्थान के उद्देश्य :

- लोक कलाओं, लोक नृत्यों और लोक साहित्य को लोकप्रिय बनाकर प्रचारित करना।
- लोक कथाओं और लोक कलाओं के अनुसंधान में तेजी लाना।
- आधुनिक परिवेश के अनुरूप पारम्परिक लोक कलाओं का अध्ययन करना।
- देश और विदेश में कठपुतली शो, लोक नृत्य और गीतों की प्रस्तुति देना।
- लोक कथाओं में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संचालित करना।
- लोक कलाकारों को प्रोत्साहित करना।
- सम्बन्धित शैक्षणिक अभ्यास एवं कार्यशालाएँ आयोजित करना।

भारतीय लोक कला मण्डल परिसर

फॉल्क लोक

तेरहताली नृत्य

भारतीय लोक कला मण्डल मुख्य भवन एवं खुला मंच प्रवेश द्वार

लोक कलाओं का संग्रहालय

कठपुतली प्रदर्शन

लोक नृत्य

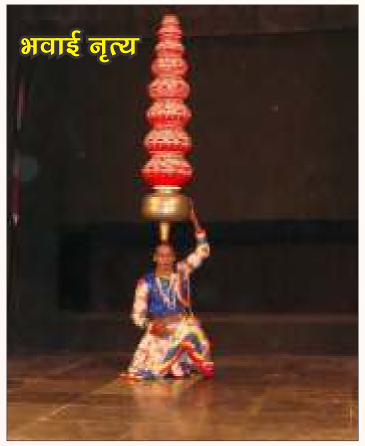
भवाई नृत्य

पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र 'शिल्पग्राम' : यह केन्द्र सांस्कृतिक विरासत को जीवन्त रखने के लिए सन् 1985 में स्थापित देश के सात केन्द्रों में से एक है। यह केन्द्र राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, दमन दीव, दादरा नगर हवेली की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षण प्रदान करता है। उदयपुर शहर में बागोर की हवेली में स्थापित इस केन्द्र में एक संग्रहालय एवं एक आर्ट गैलेरी भी है। वर्ष में कई बार विभिन्न नाट्य एवं नृत्य कार्यक्रम भी यहां पर आयोजित किये जाते हैं। इस केन्द्र से 3 कि.मी. की दूरी पर हवाला गांव के पास ग्रामीण शिल्पकारों के लिए 'शिल्पग्राम' नामक एक छोटे से गांव का निर्माण किया है। शिल्पग्राम का शाब्दिक अर्थ है – ''शिल्पकारों का गाँव'' अर्थात् ग्रामीण कला एवं शिल्प परिसर, जो विभिन्न पश्चिमी राज्यों के मध्य शिल्प, कला और संस्कृति की वृहद विविधता को दर्शाता है। शिल्पग्राम अरावली की पहाड़ियों की तलहटी पर 70 एकड़ के प्राकृतिक परिवेश में स्थित है। इसमें सदस्य राज्यों की 26 पारम्परिक झोपड़ियाँ हैं जो विभिन्न भौगोलिक और जातीय समूहों के पारम्परिक वास्तुशिल्प विशेषताओं को शामिल करते हुए सभी घरेलू सामग्रियों से सुसज्जित है।

शिल्पग्राम का उद्देश्य विशेष रूप से युवा पीढ़ी में ग्रामीण जीवन और शिल्प के बारे में जागरूकता और ज्ञान बढ़ाना है। यहाँ पर कला, शिल्प, नाट्य, संगीत व नृत्य पर आधारित कार्यशालाओं पर विशेष जोर दिया जाता है।

'शिल्पग्राम' ग्रामीण और शहरी कलाकारों को एक साथ एक मंच पर आकर शिविर एवं कार्यशालाओं के माध्यम से अपनी संस्कृति एवं शिल्प कला का आदान–प्रदान करने का एक सुनहरा अवसर प्रदान करता है। इसका उद्देश्य विभिन्न शैलियों और अनुभवों के गहन अवलोकन के माध्यम से शहरी और ग्रामीण कलाकारों का एक–दूसरे से सीखना और अपने कौशल और कला रूपों को समृद्ध करना है।

शिल्पग्राम में दो संग्रहालय विकसित किये हैं। इनमें दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली साधारण वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया हैं, जो ग्रामीण और आदिवासी जीवन की विशेषताओ और सौन्दर्य की झलक का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके अतिरिक्त पारम्परिक 'हाट' मेले के रूप में एक शिल्प बाजार बनाया गया है, जहां आगन्तुक इस क्षेत्र के पारम्परिक शिल्प खरीद सकते हैं। शिल्पग्राम में अपने कौशल का प्रदर्शन करने और आगन्तुकों को शिल्प बेचने के लिए शिल्पकारों को समय–समय पर आमंत्रित किया जाता है।

प्रतिवर्ष दिसम्बर–जनवरी माह में यहाँ पर सभी सदस्य राज्यों के पारम्परिक जातीय शिल्प और कलाओं का मेला आयोजित किया जाता है। इसका विशाल खुला रंगमंच यहाँ आयोजित होने वाले प्रमुख सांस्कृतिक उत्सवों का केन्द्र स्थल है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर एक वातानुकूलित थियेटर का निर्माण भी किया गया है।

संपूर्ण शिल्पग्राम परिसर

पारम्परिक झोपड़ियाँ

हाट बाजार

पारम्परिक झोपड़ियाँ

शिल्पग्राम मेला

प्रवेश द्वार

संग्रहालय

पारम्परिक नृत्य प्रदर्शन

खुला रंगमंच स्थल

संग्रहालय

पारम्परिक नृत्य प्रदर्शन

सुखाड़िया सर्कल : इस खूबसूरत शहर के हर नुक्कड़ और कॉर्नर पर कई दर्शनीय झीलों, ऐतिहासिक स्मारकों और खूबसूरत बगीचों का भ्रमण यहाँ के स्थानीय स्ट्रीट फूड के बिना अधूरा है। सुखाड़िया सर्कल, उदयपुर भ्रमण के लिए सबसे लोकप्रिय स्थलों में से एक है, जो एक थाली में परोसे जाने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य एवं शानदार स्ट्रीट फूड का एक उत्कृष्ट मिश्रण पेश करता है। उदयपुर के पंचवटी, न्यू फतहपुरा क्षेत्र के उत्तरी उपनगरीय क्षेत्र में सुखाड़िया सर्कल मनोरंजन एवं समृद्धि के एक बड़े आकर्षण स्थल के रूप में जाना जाता है। इस स्थल पर पर्यटक एवं शहरवासी अपने प्रियजनों के साथ फव्वारों की सुन्दरता को निहारते व स्वादिष्ट व्यंजनों का आनन्द लेते हुए दो से तीन घंटे व्यतीत कर सकते हैं।

खूबसूरत वृत्ताकार उद्यान में एक छोटा कृत्रिम जलाशय है, जिसके मध्य में एक 21 फीट ऊँचाई वाला त्रि–स्तरीय फाउन्टेन शोभायमान है। यह फाउन्टेन सफेद संगमरमर से निर्मित है। इसकी सुन्दरता को बढ़ाने के लिए यहाँ पर द्वि–स्तरीय बगीचे विकसित किये गये हैं। फाउन्टेन के अंतिम भाग की आकृति गेहूँ की बाली के समान है, जिसे इस क्षेत्र में समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। सुखाड़िया सर्कल उदयपुर के मूल निवासी एवं राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री स्व. श्री मोहनलाल जी सुखाड़िया की स्मृति में बनाया गया है। इसकी नींव वर्ष 1968 में रखी गई तथा यह मनोरंजन स्थल के रूप में वर्ष 1970 से जनता के लिए खोला गया था।

यह उदयपुर रेलवे स्टेशन एवं महाराणा प्रताप हवाई अड्डे से क्रमशः 4.6 एवं 24.8 कि.मी. दूर स्थित है। सुखाड़िया सर्कल प्रातःकालीन भ्रमण करने के लिए सबसे अच्छी जगह है। यह प्रातः 6.00 बजे खुलता है और रात को 9.30 बजे बन्द हो जाता है। इस सर्कल के लिए कोई प्रवेश शुल्क नहीं लिया जाता है। सर्कल में स्थित छोटे जलाशय में पेड़ल बोट की सवारी की दर प्रतिव्यक्ति 40/–रु. और दो व चार सीटर बोट राइड की दर क्रमशः 100/–रु. और 200/–रु. है। सुखाड़िया सर्कल सदैव एक रोमांचकारी स्थल रहा है तथा शाम के समय इस क्षेत्र की सुन्दरता में और वृद्धि हो जाती है।

अनुशंषाएँ :–

- पर्यटकों एवं शहरवासियों के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय इस विशाल सर्कल की नियमित साफ–सफाई, रखरखाव एवं विकास (सौन्दर्यीकरण) पर नगर निगम को विशेष ध्यान देना चाहिये।
- सुखाड़िया सर्कल की रिंग रोड के बाद कियोस्क एवं थैलों के साथ वाले उद्यानों का रखरखाव समुचित रूप से नहीं किया जा रहा है। प्रत्येक वर्ष सड़कों के डामरीकरण उपरान्त मुख्य पार्क के अतिरिक्त करीब सभी पार्कों का भूमि तल सड़क से काफी नीचे हो गया है। इन पार्कों में मिट्टी भरकर इनमें घास एवं सुन्दर पौधे पुनः लगाये जाये एवं उनकी नियमित कटाई हो। इन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि पर्यटक इनमें बैठकर थैलों पर उपलब्ध विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का आनन्द उठा सकेंगे।
- सुखाड़िया सर्कल के दक्षिण में स्थापित कियोस्क की तरह पश्चिम एवं उत्तर–पश्चिम में उपलब्ध पार्कों में भी कियोस्क बनाकर सभी थैले वालों को आवंटित कर देने चाहिये। इससे सर्कल और पार्क के बीच की सड़क आवागमन के लिए पूर्णतया उपलब्ध रहेगी। यहाँ पर भी सफाई व्यवस्था नियमित रूप से होनी चाहिये।
- सुखाड़िया सर्कल के मध्य स्थित मुख्य पार्क के फव्वारें वाले पोण्ड, जहाँ पेडस्टल नावें संचालित होती हैं, पर जल शुद्धीकरण यंत्र लगाकर नियमित सफाई होनी चाहिए। यदि यहां पर पानी पारदर्शी होगा तो मुख्य फव्वारें की खूबसूरती में और अभिवृद्धि संभव होगी।

उदयपुर शहर के मध्य स्थित सुखाड़िया सर्कल

सुखाड़िया सर्कल की विशेषताएँ

- सुखाड़िया सर्कल हरे–भरे बगीचों से आच्छादित है तथा यह स्थानीय एवं पर्यटकों के लिए सबसे अच्छा पिकनिक स्पॉट है।
- यहाँ पर संचालित फूड हब में बेहद रियायती दर पर स्वादिष्ट एवं प्रामाणिक राजस्थानी फास्ट फूड, चाट, भोजन आदि की एक विस्तृत श्रृंखला का लुत्फ उठाया जा सकता है। यह स्थान स्ट्रीट फूड प्रेमियों के लिए एक आनन्ददायक स्थल है। इस क्षेत्र में कई कियोस्क एवं थैले हैं जो विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोसते हैं जिनमें पावभाजी, पानी पुरी, चाट, डोसा, बड़ा पाव, चाइनीज व्यंजन, पिज्जा, आइसक्रीम, गोटा, फलूदा और बहुत कुछ शामिल है।
- ऊँचे फाउन्टेन के मनोहारी नज़ारे का आनन्द लेने के साथ छोटे जलाशय में पेडल नाव की सवारी कर सकते हैं।
- यहाँ पर ऊँट और घुड़सवारी का आनन्द भी ले सकते हैं।
- बच्चों के खेलने–कूदने के लिए एक विशेष क्षेत्र अलग से आरक्षित है।
- रात्रिकाल में यहां का फव्वारा रंग–बिरंगी रोशनी से जगमगाता है और अपने आकर्षण से दूर से ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है।
- सुखाड़िया सर्कल के पूर्व में उत्तर–पश्चिमी रेलवे का विशाल प्रशिक्षण संस्थान है।
- सर्कल के रिंग रोड के पूर्वी भाग पर एक बगीचा है, जहाँ राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री स्व. श्री मोहनलाल सुखाड़िया की एक विशाल प्रतिमा ऊँचे पेडल पर प्रतिस्थापित है।

- माननीय स्व. सुखाड़िया सा. की प्रतिमा युक्त पार्क के उत्तरी छोर को सुसज्जित किया गया है। इसमें एक छोटा टीन शेड भी बनाया गया है। इस पार्क को उच्च गुणवत्ता के साथ और सुन्दर एवं अच्छा बनाया जा सकता था। मूर्ति के दक्षिणी छोर के पार्क का विकास अपेक्षित है। इसकी लोहे की जालियाँ टूट गई हैं जिन्हें पुनः स्थापित कराया जाना अपेक्षित है।
- उत्तर पश्चिम रेलवे प्रशिक्षण संस्थान के परिसर के दोनों मुख्य द्वारों के मध्य स्थित पार्क को विकसित कर इसमें उच्च स्तर का म्यूजिकल फाउन्टेन लगाया जाना चाहिये। इससे सुखाड़िया सर्कल के साथ इस प्रशिक्षण संस्थान की सुन्दरता में भी वृद्धि होगी।
- जन सुविधा स्थल से सटे पार्क पर मल्टी स्टोरी पार्किंग विकसित करने से सुखाड़िया सर्कल पर आने वाली दो, तीन व चार पहिया वाहन की व्यवस्थित पार्किंग की जा सकेगी। इसकी पाँचवीं मंजिल पर उच्च स्तर का फूड हब भी बनाया जा सकता है।
- वर्तमान में सुखाड़िया सर्कल पार्क का रखरखाव उच्च स्तर का नहीं है। मुख्य पार्क के बाहर लोहे के सुन्दर पाइप के मध्य लोहे की झालर लगी हुई है। कुछ स्थानों पर यह झालर टूट गई या चोरी हो गई है। इस झालर के स्थान पर लोहे के पाईप लगाने के स्थान पर झालर को ही लगाया जाना चाहिये ताकि समरूपता बनी रहे।
- उदयपुर के नियोजक, नगर निगम एवं नगर विकास प्रन्यास पिछले 50 वर्षों में दूसरा सुखाड़िया सर्कल नहीं बना सके। इसी तरह के पार्क, जलाशय एवं फाउन्टेन पुला के पास निर्मित आर.के. सर्कल एवं शोभागपुरा सर्कल पर भी विकसित किया जा सकता था।

उत्तर–पश्चिम रेलवे प्रशिक्षण संस्थान : सुखाड़िया सर्कल स्थित क्षेत्रीय रेलवे प्रशिक्षण संस्थान शहर के बीचों–बीच स्थित सबसे बड़े ऑक्सीजन हब में से एक है जो आमजन को शुद्ध हवा देता है। यहाँ दस हजार से अधिक अलग–अलग प्रजाति के पेड़–पौधे लगे हुए हैं।

करीब 150 एकड़ क्षेत्र में फैले इस संस्थान की नींव 25 मार्च, 1955 को महाराणा भूपाल सिंह जी ने रखी थी। इसका उद्घाटन 9 अक्टूबर, 1956 को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और रेलमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने किया था। उदयपुर में इसका तीन बार नामकरण हुआ। सबसे पहले क्षेत्रीय प्रशिक्षण स्कूल (एटीएस) रखा था। 1992 में जोनल ट्रेनिंग सेन्टर (जेटीसी) में बदलकर जोनल ट्रेनिंग स्कूल (जेटीएस) कर दिया गया। वर्तमान में इसे उत्तर–पश्चिम रेलवे प्रशिक्षण संस्थान के नाम से जाना जाता है।

हरे–भरे प्राकृतिक वातावरण के बीच यहाँ ट्रेनिंग करने वालों के दिन की शुरूआत योग–प्राणायाम की कक्षा के साथ होती है। यहाँ लोको पायलट, गार्ड, ट्रेन कन्ट्रोलर, टीसी, रिजर्वेशन क्लर्क सहित रेलवे के हर विभाग के कर्मचारियों को ट्रेनिंग दी जाती है। यह प्रदेश का सबसे बड़ा और देश के टॉप–10 रेलवे ट्रेनिंग संस्थानों में से एक है। इस संस्थान में 1957 से अब तक 4.48 लाख युवाओं को ट्रेनिंग दी जा चुकी हैं। यहाँ रेलवे ट्रेनिंग के साथ जीवन में फिट रहने के मंत्र भी सिखाये जाते हैं।

इस परिसर में 70 वर्ष पुराने पीपल और बरगद के पेड़ विद्यमान हैं। यहाँ पेड़ों की कटाई पर पूरी तरह से पाबन्दी है। यदि कोई पेड़ सूख जाता है तो सघनता बनाए रखने हेतु उसकी जगह पर दूसरा पौधा रोपित किया जाता है।

यहाँ के मोडल हॉल में लोको पायलट, गार्ड और कन्ट्रोलर को डमी ट्रेन संचालित कर सिग्नल पैनल, स्टार्टर और होम सिग्नल के बारे में बताया जाता है। अन्य केटेगरी के कर्मचारियों को टाईपिंग, कॉमर्सियल और स्टेब्लिशमेन्ट मैनुअल, ऑपरेशनल और रेलवे नियमों की जानकारी दी जाती है। यहाँ पुरुष और महिला ट्रेनी के लिए आठ अलग–अलग हॉस्टल हैं, जो सर्वोदय, गीतांजली, चेतक, अरावली, नवजीवन, सरस्वती, स्वर्णजयन्ती और हरित्या नाम से जाने जाते हैं।

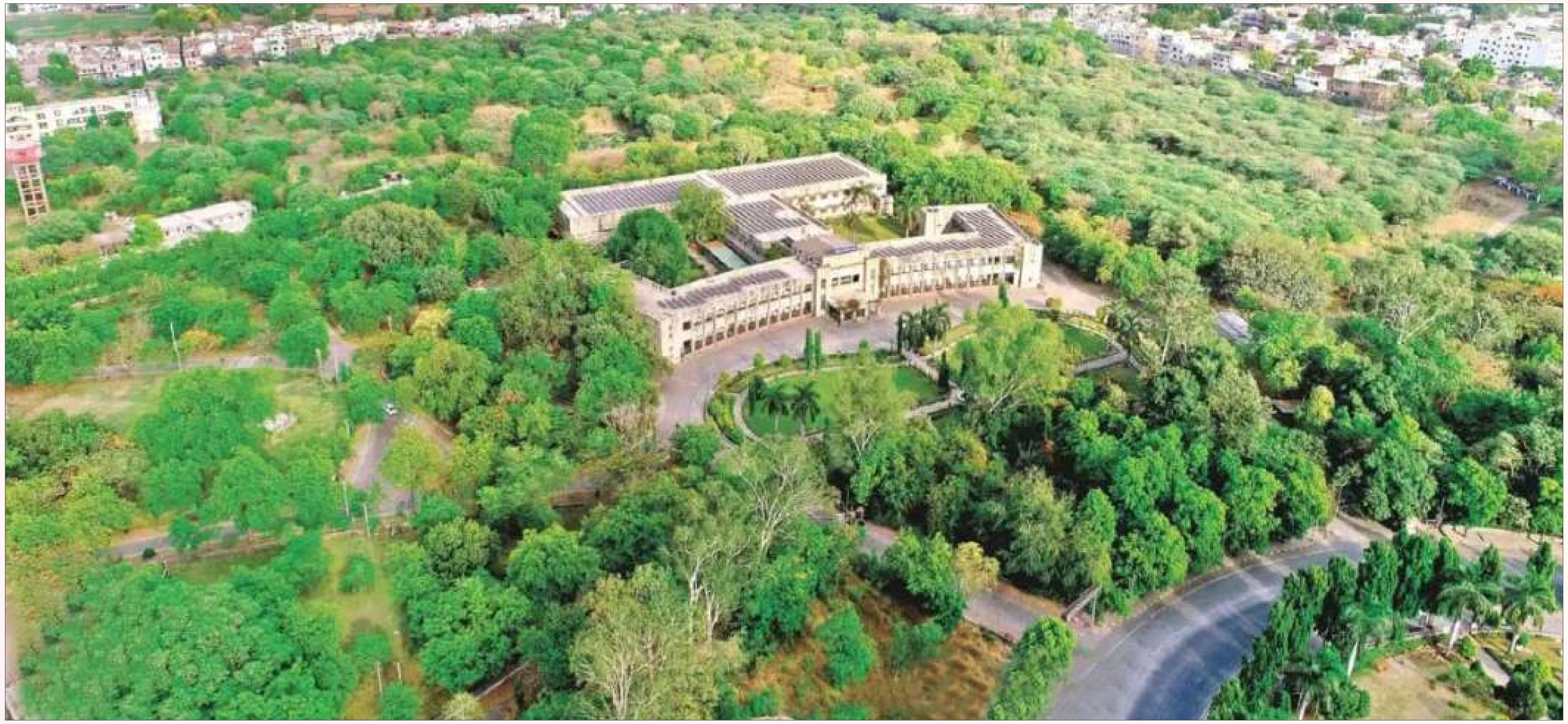

शौर्य दीर्घा एवं शहीद स्तम्भ : नगर निगम का मुख्य प्रशासनिक भवन, सुखाड़िया रंगमंच, नेहरू बाल उद्यान, शौर्य दीर्घा करीब 13 एकड़ क्षेत्र में फैले हुए हैं। नेहरू बाल उद्यान के उत्तरी क्षेत्र में हाथी वाला पार्क एवं दक्षिण में शौर्य दीर्घा का निर्माण किया गया है। शौर्य दीर्घा के साथ शहीद स्तम्भ एवं महाराणा प्रताप की आदमकद भव्य प्रतिमा ऊँचे पेडस्टल पर स्थापित है।

इस शौर्य दीर्घा में देश के करीब 33 अति प्रतिष्ठित स्वतंत्रता सैनानी, क्रांतिकारी महापुरुष, महान् योद्धा, दर्शन–संस्कृति के ज्ञाता, शिक्षाविद्, समाजसेवी आदि की अति सुन्दर कांस्य मूर्तियाँ बहुत व्यवस्थित रूप से संक्षिप्त परिचय के साथ प्रदर्शित की गई हैं। इस दीर्घा के बाहर पूर्व दिशा में मेवाड़ गौरव महान स्वतंत्रता सैनानी महाराणा प्रताप की ऊँचे पेडस्टल पर सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा के पश्चिम में शहीद स्तम्भ स्थित है, जहाँ प्रतिवर्ष गणमान्य नागरिक, सेवानिवृत्त सेना अधिकारी, आमजन आदि शहीद दिवस के अवसर पर राष्ट्र की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहूति देने वाले सैनानियों का स्मरण कर उनको श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हैं। शौर्य दीर्घा, शहीद स्तम्भ, महाराणा प्रताप प्रतिमा एवं उद्यान के समुचित रखरखाव पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

इस शौर्य दीर्घा में महर्षि दयानन्द सरस्वती, शहीद भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, नाना साहेब पेशवा, शहीद मंगल पाण्डे, महारानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, गुरु रामसिंह कूका, बिरसा मुण्डा, वासुदेव बलवन्त फड़के, चन्द्रशेखर आजाद, दामोदर चाफेकर, वीर सावरकर, खुदीराम बोस, मदनलाल धींगरा, महर्षि अरविन्द घोष, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, विजय सिंह पथिक, हेमू कालानी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, विपिनचन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, अशफाक उल्ला खान, रामप्रसाद बिस्मिल, डॉ. हेड़गेवार, सरदार उधम सिंह, गोविन्द गुरु, केसरी सिंह बारहठ, जोरावर सिंह, प्रताप सिंह, भगिनी निवेदिता आदि की मूर्तियाँ उनके संक्षिप्त परिचय के साथ स्थापित हैं।

नेहरू बाल उद्यान उदयपुर का एक प्रमुख उद्यान था जहाँ नेहरू जी की मूर्ति के चारों ओर बहुरंगी रोशनी में फव्वारें चलते थे। इसके कृत्रिम पोण्ड में छोटी पेड़ल नावें चला करती थी। उद्यान का रखरखाव भी अति उच्च स्तर का था। इस पोण्ड के चारों ओर बकरा गाड़ी का उपयोग बच्चे बड़े हर्षोल्लास के साथ करते थे। वर्तमान में हाथी वाले उद्यान में भूमिगत एवं भूतल पर पार्किंग स्थल विकसित किया गया है। इसके पास ही आमजन हेतु ओपन जिम का निर्माण भी किया गया है। काशः यह दोनों निर्माण नगर निगम के मुख्य भवन के पीछे स्थित रिक्त भूमि पर किये जाते तो इस उद्यान एवं हाथी वाले पार्क की सुन्दरता कायम रहने के साथ पीछे उपलब्ध रिक्त स्थान का भी सर्वोत्तम उपयोग संभव हो सकता था।

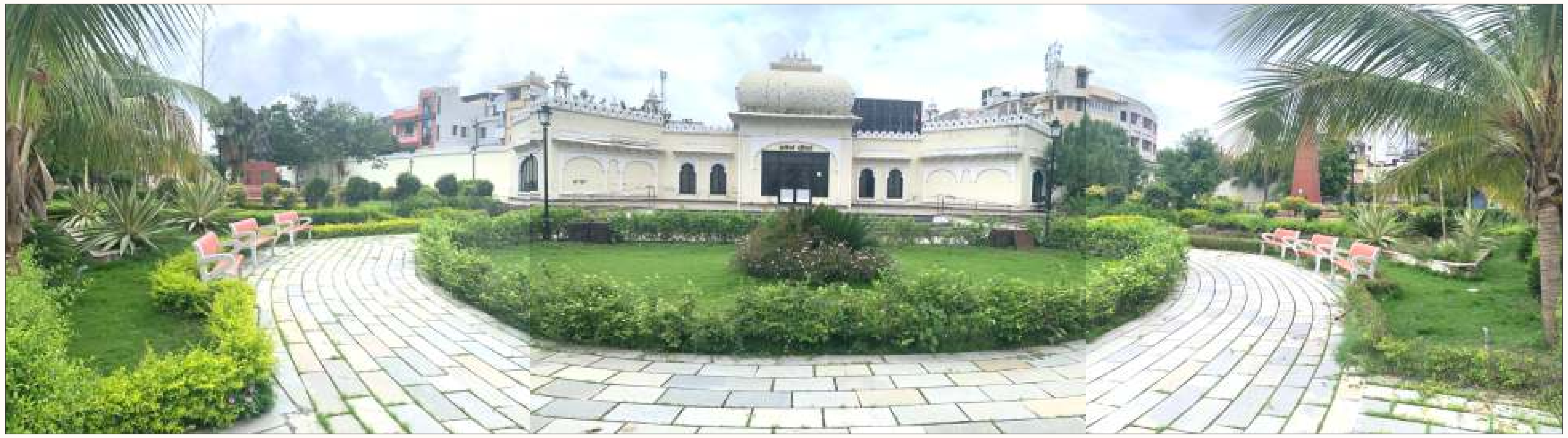

प्रथम आराध्यदेव श्री गणेश जी के मुख्य मन्दिर : उदयपुर शहर में भगवान श्री गणेश जी के प्रसिद्ध मन्दिरों में बोहरा गणेश जी, पाला गणेश जी, जाड़ा गणेश जी, मावा गणेश जी और दुधिया गणेश जी प्रमुख मन्दिर स्थित हैं। हिन्दू धर्म में किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व भगवान श्री गणेश जी को अवश्य स्मरण किया जाता है। इनका विस्तृत विवरण निम्नानुसार है :–

बोहरा गणेश जी मन्दिर : यह उदयपुर में भगवान गणेश जी का एक प्राचीन मन्दिर है। पूरे वर्ष कुछ न कुछ मांगलिक आयोजनों से पहले यहाँ गणपति को न्यौता दिया जाता है। स्थानीय लोग नये वाहन खरीदकर यहीं से मुहूर्त करना शुभ मानते हैं। यह मन्दिर उदयपुर की तत्कालीन शहर की सीमा के बाहर बनाया गया था, लेकिन तब से शहर की सीमाओं के निरन्तर विस्तार के कारण अब यह क्षेत्र शहर की सीमा में आता है। अब यह शहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वर्तमान में इस पूरे क्षेत्र को 'बोहरा गणेश' के नाम से भी जाना जाता है।

बोहरा गणेश मन्दिर लगभग 350 वर्ष पहले 17वीं शताब्दी में बनाया गया था। इस मन्दिर की अहमियत ठीक वैसी ही है जैसी मोती डूंगरी की जयपुर में है। इस मन्दिर के केन्द्र में नृत्य मुद्रा में भगवान श्री गणेश जी की पूर्वमुखी मूर्ति है। यह मन्दिर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय के पास एवं शहर के केन्द्र से लगभग 2 कि.मी. और उदयपुर सिटी रेलवे स्टेशन से 4 कि.मी. दूर स्थित है।

बोहरा गणेश जी का वास्तविक नाम बोर गणेश जी था। मन्दिर के इस नए नाम के पीछे भी एक दिलचस्प कहानी है। मान्यता है कि करीब 70–80 वर्षों पहले लोगों की आर्थिक जरूरतें यहां से पूरी हो जाती थी। मांगलिक आयोजनों के लिए खर्च का बंदोबस्त भी इस मन्दिर में मांगने पर सहजता से पूरा हो जाता था। भक्तों द्वारा जो भी गणपति के चरणों में अर्जी लगाई जाती और परेशानी शीघ्र दूर हो जाती तथा यह माना जाने लगा कि गणपति से अर्जी के कारण ही आर्थिक मदद हो पाई है। ऐसे में वे ब्याज समेत पैसे यहां गणेश जी को अर्पित करने लगे। पुरानी परम्पराओं के अनुसार भी ब्याज पर धन देने का काम बोहरा समाज का माना जाता है। इसी प्रथा को गणपति से जोड़ कर इस मन्दिर का नाम 'बोहरा गणेश जी' पड़ा। हालांकि यह व्यापक रूप से माना जाता है कि यहाँ भगवान एक आम व्यवसायी से कहीं अधिक हैं और वह वफादार अनुयायियों को आशीर्वाद देते हैं और उनकी सभी निस्वार्थ आकांक्षाओं को पूरा करके उनके विश्वास को पुरस्कृत करते हैं। इसके अतिरिक्त एक धारणा यह भी है कि बोहरा गणेश जी पर सच्ची आस्था रखने वाले भक्तों की मनोकामना सदैव पूर्ण होती है।

भाद्रपद (अगस्त–सितम्बर) के महीने में मनाई जाने वाली गणेश चतुर्थी पर बोहरा गणेश जी मन्दिर में एक भव्य एवं बड़ा उत्सव आयोजित होता है जो खुशी और उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस दिन श्री गणेश जी की विशेष पूजा की जाती है तथा श्री गणेश जी के दर्शनार्थ यहाँ पर लगभग दो लाख से अधिक श्रद्धालु आते हैं। इसी प्रकार दीपावली के ठीक बाद मनाई जाने वाली गोवर्धन पूजा या अन्नकूट बोहरा गणेश मन्दिर में एक शुभ कार्यक्रम के रूप में मनाया जाता है। इस दिन भोर में आंगी नामक एक अनुष्ठान किया जाता है। इसके बाद मन्दिर में भगवान श्री गणेश जी को छप्पन भोग चढ़ाते हैं। यह अन्नकूट भक्तों द्वारा भगवान श्री गणेश को समर्पित है। सायं को पुजारी ''महाआरती'' करते हैं और बाद में भक्तों को दिव्य प्रसाद का वितरण किया जाता है।

इसके अतिरिक्त श्रद्धालुओं द्वारा मनोवांछित फल प्राप्ति उपरान्त आये दिन परसादी कार्यक्रम यहाँ पर पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति से आयोजित किये जाते हैं। इस हेतु मन्दिर प्रांगण में सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

बोहरा गणेश जी मन्दिर

पाला गणेश जी : यह समोर बाग से दूध तलाई रोड़ पर गुलाब बाग में स्थित उदयपुर के सबसे पुराने गणेश मन्दिर में से एक है, जो करीबन 500 वर्ष पुराना है। इस मन्दिर के बनने के पीछे एक कहानी है जो लाखा बंजारे से जुड़ी हुई है। लाखा बंजारा इस जगह से गुजर रहा था तो उसने कुछ देर विश्राम करने का सोचा। वहां उसने आसपास पड़े जानवरों के गोबर से गणेश जी की मूर्ति बना डाली। रात में जब ये लोग सो रहे थे, तब सीसारमा नदी में तेज पानी आया और आसपास बंधे जानवर और गणेश जी की मूर्ति को बहा ले गया। इस बात से लाखा बंजारा बहुत दुःखी हुआ और उसने महाराणा से गणेश मन्दिर बनवाने की अरज कर डाली। पिछोला झील की पाल के एकदम निकट स्थित होने के कारण इस मन्दिर को पाला गणेश जी के नाम से जाना जाता है। यहाँ हर वर्ष गणेश चतुर्थी पर बहुत बड़ा एवं भव्य आयोजन होता है। इस मुख्य मन्दिर के दो द्वार है, एक को रिद्धि पोल कहा जाता है, जो आमतौर पर प्रवेश द्वार है तथा दूसरा सिद्धि पोल है, जिससे निकास होता है।

पाला गणेश जी मन्दिर

जाड़ा गणेश जी : शहर की पिछोला झील के पास चांदपोल इलाके में अमराई घाट के कॉर्नर पर यह मन्दिर स्थित है। यह मन्दिर करीब 250 वर्ष पूर्व एक पंडित परिवार ने बनाया था। लोगों की श्रद्धा इस मन्दिर से इतनी अपार है कि वे मानते है कि भगवान इस मूर्ति में साक्षात निवास करते हैं तथा इस मन्दिर के आसपास का क्षेत्र इतना पवित्र है कि कोई भी बुरी शक्ति यहाँ आ ही नहीं सकती। ऐसा बताया जाता है कि इस मन्दिर में प्रतिस्थापित गणेश जी की प्रतिमा सज्जनगढ़ किले के पत्थर से बनी है। एक ही चट्टान की मोटी प्रतिमा होने के कारण इस मन्दिर को जाड़ा गणेश जी मन्दिर के नाम से जाना जाता है। प्रतिमा की ऊँचाई करीब 6 फीट एवं चौड़ाई 4 फीट है। इस मन्दिर की प्रसिद्धि इतनी है कि प्रातः 4.00 बजे से लाइन लगनी शुरू हो जाती है और रात्रि में 12.00 बजे तक मन्दिर खुला रहता है तथा इस मन्दिर में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त अमराई घाट पर जाने वाले विदेशी पर्यटक भी दर्शन करते देखे जाते हैं।

जाड़ा गणेश जी मन्दिर

मावा गणेश जी : शहर के हाथीपोल से घंटाघर रोड पर स्थित यह एक छोटा मन्दिर है। इस मन्दिर के बारे में दो मान्यताएँ हैं, प्रथम इस मन्दिर में स्थापित प्रतिमा का रंग मावे जैसा होने के कारण इस मन्दिर का नाम मावा गणेश के रूप में अस्तित्व में आया तथा दूसरा इस इलाके में मावे की दुकाने अधिक होने के कारण व्यापारी मावा बनते ही सबसे पहले इन्हीं को अर्पण करते थे, तब से लोग इन्हें मावा गणेश के रूप में जानने लगे। आज भी इस क्षेत्र में मिठाई का पहला भोग मावा गणेश जी को ही चढ़ाने की मान्यता है।

मावा गणेश जी मन्दिर

दुधिया गणेश जी : शहर के मल्लातलाई क्षेत्र में सज्जनगढ़ रोड पर मुख्य सड़क के किनारे यह मन्दिर स्थित है। एक मान्यता के अनुसार पहले सीसारमा एवं नाई–बुझड़ा क्षेत्र के लोग शहर में दूध बेचने जाने से पहले यहां पर दूध चढ़ाया करते थे। दूध से गणेश जी का अभिषेक होने से इस मन्दिर को दुधिया गणेश जी के नाम से जाना जाने लगा। दुधिया गणेश जी के मन्दिर का निर्माण महाराणा सज्जन सिंह जी ने सज्जनगढ़ की नींव पड़ने से पहले सन् 1874–84 में करवा दिया था। प्रत्येक गणेश चतुर्थी पर महाराणा और उनके परिवारजन यहां पर आकर पूरे शहर के लोगों के साथ गणेश चतुर्थी मनाते थे। गणेश चतुर्थी के अवसर पर मखमल की आंगी से गणपति का श्रृंगार होता है। साथ ही यहाँ विशाल भजन संध्या आयोजन के साथ महाप्रसादी में भक्तजनों को नुकती का वितरण होता है।

दुधिया गणेश जी मन्दिर

महालक्ष्मी मन्दिर : यह मन्दिर भट्टियानी चौहट्टा में स्थित है। भट्टियानी चौहट्टा का नाम भाटी रानी के नाम पर रखा गया था जिन्होंने इस क्षेत्र को विकसित किया था। महालक्ष्मी मन्दिर उदयपुर में एकमात्र मन्दिर है, जिसका निर्माण जगदीश मन्दिर की स्थापना के तुरन्त पश्चात् हुआ। इस मन्दिर में महालक्ष्मी जी की प्रतिमा सफेद पत्थर से निर्मित होकर हाथी पर विराजित है। ऐसा कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण महाराणा शंभुसिंह ने करवाया था जिन्होंने एक लड़ाई लड़ी एवं विजयोपरान्त महालक्ष्मी, ऋषभदेव और सुन्दर विनायक की मूर्तियाँ प्राप्त की। महालक्ष्मी को धन और समृद्धि की देवी माना जाता है।

प्रतिवर्ष श्राद्ध पक्ष की अष्टमी को महालक्ष्मी का जन्मोत्सव बड़े हर्षोल्लास और जोश के साथ मनाया जाता है। सुबह पंचामृत अभिषेक किया जाता है। भक्तगण मन्दिर आते हैं और अपनी ओर से श्रद्धा नमन कर पावन दर्शन करते हैं। इस अवसर पर मूर्ति को आकर्षक ढ़ंग से सजाया जाता है। दिन में पंडितों की मदद से एक बड़ा 'यज्ञ' किया जाता है। प्रातः 5.30 बजे की आरती के साथ मन्दिर के कपाट खुल जाते हैं। मंगला आरती प्रातः 9.30 बजे और शाम की आरती 7.30 बजे की जाती है। इसके बाद सुन्दरकांड का जाप होता है। मध्यरात्रि को होने वाली आरती में भक्तों की भारी भीड़ उमड़ती है। प्रत्येक शुक्रवार को भी महालक्ष्मी जी के दर्शनार्थ बड़ी संख्या में लोग मन्दिर आते हैं। दर्शन और पूजा के लिए आने वाले लोग महालक्ष्मी जी को खीर, पंजेरी, फूल, फल और लड्डू चढ़ाते हैं।

महालक्ष्मी जी श्रीमाली समाज की कुलदेवी है। श्रीमाली समाज के लोग हर महत्वपूर्ण समारोह की शुरूआत में महालक्ष्मी आदि शक्ति का आह्वान करते हैं। मन्दिर का रखरखाव श्रीमाली जातीय सम्पत्ति ट्रस्ट द्वारा किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि जगदीश मन्दिर के निर्माण के बाद शेष रह गई सामग्री से कुछ मन्दिरों का निर्माण किया गया, जिनमें महालक्ष्मी, हजारेश्वर महादेव, जगदीश चौक में राधाकृष्ण मन्दिर आदि मुख्य थे। मन्दिर के सभा मण्डप के सामने दोनों ओर हाथी की मूर्तियाँ स्थापित हैं जिनकी सूँड पर कमल और जल से भरा कलश है और वे महालक्ष्मी का अभिषेक करते प्रतीत होते हैं। महालक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति को हमेशा आकर्षक रूप में तैयार किया जाता है। लाल, हरे, पीले या सुनहरे रंग की साड़ी–चुनरी के साथ एक सुनहरे मुकुट और कंगन से देवी का श्रृंगार किया जाता है। यहां पर पत्थर की शिला पर खुदे हुए ''श्लोक'' में उनके सुन्दर रूप का वर्णन किया गया है।

महालक्ष्मी से संबंधित दीपावली उत्सव धनतेरस पर शुरू होता है। इस अवसर पर मन्दिर एवं भट्टियानी चौहट्टा क्षेत्र में भव्य रोशनी की सजावट से भक्तगण हर्षित होते हैं। इन दिनों मन्दिर प्रातः 4.00 बजे खुल जाता है। दीपावली के बाद आने वाला अन्नकूट महोत्सव भी इस मन्दिर में बड़े पैमाने पर मनाया जाता है। सायं 7.30 बजे आरती होती है और भक्तों को भारी मात्रा में विभिन्न रूपों का प्रसाद वितरित किया जाता है। इन चार दिनों के दौरान महालक्ष्मी जी का विशेष श्रृंगार किया जाता है।

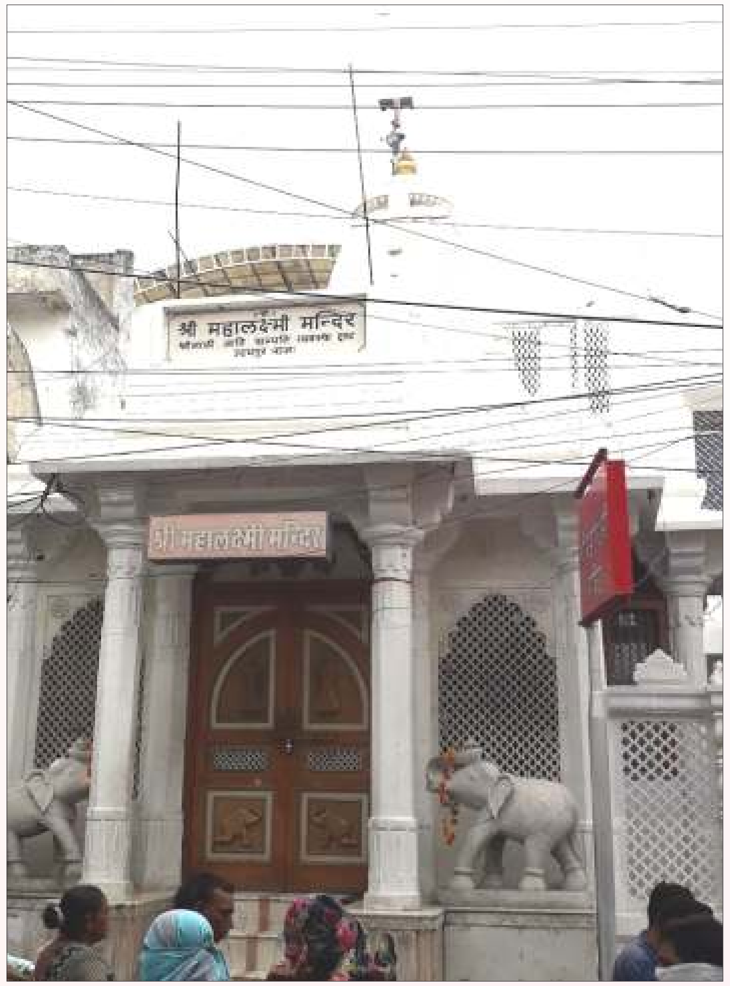

सुखदेवी माता मन्दिर : इस मन्दिर को बेदला माता मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। मन्दिर की वास्तुकला बहुत ही सुन्दर है। मन्दिर में एक शिखर है तथा आन्तरिक मन्दिर के बाहर एक हवन कुण्ड है। चारों ओर परिक्रमा पथ है। इस मन्दिर की देवी की चमत्कारी शक्ति में लोगों की अटूट आस्था है। यहाँ दूर–दूर से भक्तगण अपने परिवारजनों के बेहतर स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना के लिए प्रार्थना करने आते हैं। बेदला माता मन्दिर जाने के लिए एक पहाड़ी को काटकर रास्ता बनाया गया है। ऐसी मान्यता है कि जो भी व्यक्ति इस पहाड़ी के बीच से होकर गुजरता है, वह उसके लिए सुखदायी सिद्ध होता है। कहा जाता है कि यही रास्ता पूर्व में माता के मन्दिर का दरवाजा था। इतिहास के अनुसार आठवीं शताब्दी के इस अति प्राचीन इस मन्दिर का जीर्णोद्धार महाराणा फतहसिंह जी ने करवाया था। बेदला तत्कालीन मेवाड़ राज्य का ठिकाना था और यहां रहने वाले ठिकानेदारों की कुलदेवी बेदला माता है। ऐसी मान्यता है कि इस मन्दिर में देवी माँ के दर्शन करने के बाद लौटते समय कोई भक्त पीछे मुड़कर नहीं देखता। स्वजनों को पक्षाघात या लकवा होने पर भक्तजन उन्हें इस मंदिर में देवी माँ के दर्शनार्थ लाते हैं। उनका मानना है कि यहां आने के बाद उनके स्वास्थ्य में सुधार होने लगता है। निःसन्तान दम्पत्ती भी यहाँ आते हैं और अपनी झोली भरने की मन्नत पूरी होने पर मन्दिर प्रांगण में बने पेड़ों पर झूला टंगवाते हैं। यहां बड़ी संख्या मे मुर्गे घूमते हुए दिखाई देते हैं। मन्नत पूरी होने पर लोग मन्दिर में बकरे तथा मुर्गे छोड़कर जाते हैं। यहां आने वाले भक्तगण प्रसाद के रूप में अन्न मंदिर के बाहरी परिसर में डालते हैं जो उनके लिए भोजन के रूप में उपलब्ध होता रहता है। पहले कभी यहां बलि की परम्परा थी लेकिन कई दशकों पहले ही इसे बन्द कर दिया गया।

त्योहारों के दिनों में सुखदेवी माता की पूजा बड़े उत्साह के साथ उत्सव के रूप में आयोजित की जाती है। चैत्र व अश्विन माह की नवरात्रि के साथ दीपावली, होली और अन्य त्योहारों के अवसरों पर भजन–कीर्तन, एवं अन्य अनुष्ठान होते हैं। इन अवसरों पर यहाँ पर भक्तों की भारी भीड़ रहती है। इस मन्दिर के सामने स्थित पहाड़ी की चोटी पर अम्बामाता नामक एक अन्य मन्दिर भी स्थित है। यहाँ पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई है। पूरा रास्ता प्राकृतिक पहाड़ी, जंगल और हरी–भरी हरियाली से आच्छादित है जो कठिन यात्रा को सुगम बनाता है। जब हम पहाड़ी की चोटी पर पहुंचते है, तो एक सकारात्मक एवं शांत अनुभव हमें प्रसन्नचित्तता का बेजोड़ आभास प्रदान करता है। यहां से सूर्योदय का नजारा भी मंत्रमुग्ध कर देने वाला होता है।

समृद्ध जीवन के चार गुण

एक समृद्ध जीवन के लिए जो चार गुण सबसे जरुरी है वो देती है देवी माँ। हमारा जीवन साहस, बुद्धि, संतुष्टि और सुख के चार स्तम्भों पर खड़ा है। इन गुणों को मन में जगाने के लिए भगवान विष्णु और राम ने भी शक्ति आराधना की थी।

देवताओं ने इस मंत्र से की थी शक्ति उपासना

मार्कण्डेय पुराण एवं दुर्गा सप्तशती में देवताओं की शक्ति की उपासना का उल्लेख है। इसका एक श्लोक है :–

''विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः सतस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा पराक्ति।।''

यानी संसार में जितनी भी विद्याएं, कलाएं और कौशल हैं, वो देवी के कारण ही है और संसार में जितनी भी महिलाएँ हैं, वे देवी का ही रूप हैं। दुनिया में सबसे शक्तिशाली देवी है।

अमरखजी महादेव मन्दिर : यह मन्दिर उदयपुर शहर से करीब 10 कि.मी. की दूरी पर उदयपुर–नाथद्वारा राष्ट्रीय मार्ग पर हरी–भरी खूबसूरत वनस्पति से आच्छादित ऊँची अरावली पहाड़ियों के समूह की तलहटी के मध्य स्थित है। यह मन्दिर लगभग 1500 वर्ष पुराना होने के साथ शांतिपूर्ण एवं ऐतिहासिक पूजा स्थलों में से एक है। वर्षा ऋतु में हरियाली से घिरे हुए मन्दिर प्रांगण एवं गंग कुण्ड लोकप्रिय पूजा एवं पिकनिक स्थल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यहां आगन्तुक अपनी इच्छानुसार कोई भी शाकाहारी भोजन बनाने के लिए स्वतंत्र हैं। यह मन्दिर अपनी स्थिति के कारण काफी विशाल एवं शीतल है जो ध्यान करने वालों के लिए एक उत्कृष्ट स्थल के रूप में प्रसिद्ध है।

अमरख जी महादेव मन्दिर में तीन प्रवेश द्वार हैं और इसे पंचायतन शैली में बनाया गया है। गर्भगृह में चतुर्मुखी महादेव की मूर्ति है और कोनों में तीन छोटे मन्दिर हैं। सभा मण्डप की छत पर सात देवी–देवताओं को चित्रित किया गया था। इनमें कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, पार्वती और चामुण्डा देवियों की मूर्तियाँ आज भी विद्यमान हैं। प्राचीनकाल में राजा अम्बरीश द्वारा इस मूर्ति की पूजा की जाती थी। इसके परिसर में एक और मन्दिर है, जहां राजा अम्बरीश की मूर्ति स्थापित है। उन्होंने इस स्थान पर ही मोक्ष प्राप्त किया था। इस प्रतिमा का निर्माण राजा अम्बरीश के बाद के शासकों ने उनकी इच्छा के अनुसार करवाया था।

इतिहास के अनुसार अम्बरीश नाम के एक राजा थे जिन्होंने लगभग 1500 वर्ष पूर्व राज्य किया था। राजा सभी सांसारिक सुखों को छोड़कर शिवजी की पूजा करने के लिए इस स्थान पर आ गये। वह प्रतिदिन गंगा नदी में जाकर शिवलिंग की पूजा करने के लिए जल लेकर आते थे, जिसका उपयोग वे शिवलिंग के अभिषेक में करते थे। देवी गंगा उनकी आस्था और भक्ति से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने एक दिन राजा के साथ जाने का निर्णय कर लिया और कहा जाता है कि तब से इस मन्दिर में गंगा नदी का पानी बह रहा है तथा जिस स्थान पर पानी बहता है उसे गंग कुंड के नाम से जाना जाता है। सूखे के दौरान भी यह कुण्ड कभी नहीं सूखता है। राजा बाद में अमर ऋषि के नाम से लोकप्रिय हुए, इसलिए इस मन्दिर का नाम अमरख जी महादेव मन्दिर के नाम से जाना जाने लगा।

ये मन्दिर मुगलकाल के दौरान खण्डित हो गए थे, जहां मुगलों ने मन्दिर के साथ–साथ मूर्तियों को भी खण्डित कर दिया था। वर्ष 1993 से 2003 के दौरान इन मन्दिरों को पुनर्निर्मित किया गया। पुराने मन्दिर के अवशेष अभी भी मन्दिर में देखें जा सकते हैं। यहां स्तम्भ और मन्दिर का निचला हिस्सा 1500 वर्ष पुरानी वास्तुकला को दर्शाता है। गुम्बद के अन्दर के ऊपरी हिस्से पर कुछ नक्काशी देखी जा सकती है।

मन्दिर के बाहर गंग कुण्ड स्थित है, जहां विभिन्न प्रकार की मछलियाँ दर्शनीय हैं। इससे संबंधित मान्यता है कि इस कुण्ड का पानी पीने से कई प्रकार की बीमारियां दूर हो जाती हैं। प्रतिवर्ष रक्षाबन्धन के अगले दिन जिसे ठंडी राखी के नाम से भी जाना जाता है, इस स्थान पर एक बड़ा मेला आयोजित होता है। इस मेले में प्रतिवर्ष आसपास के गांवों के 20–25 हजार लोग शामिल होते हैं। कहा जाता है कि यह मेला पौराणिक काल से आयोजित हो रहा है। इसके अलावा प्रत्येक अमावस्या के दिन मन्दिर में एक भव्य कालसर्प पूजा होती है जिसमें भक्तगण उत्साहपूर्वक शामिल होते हैं। उत्सुक इतिहासकार और भारतीय वास्तुकला में अत्यधिक रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए यह एक विशिष्ट स्थल है।

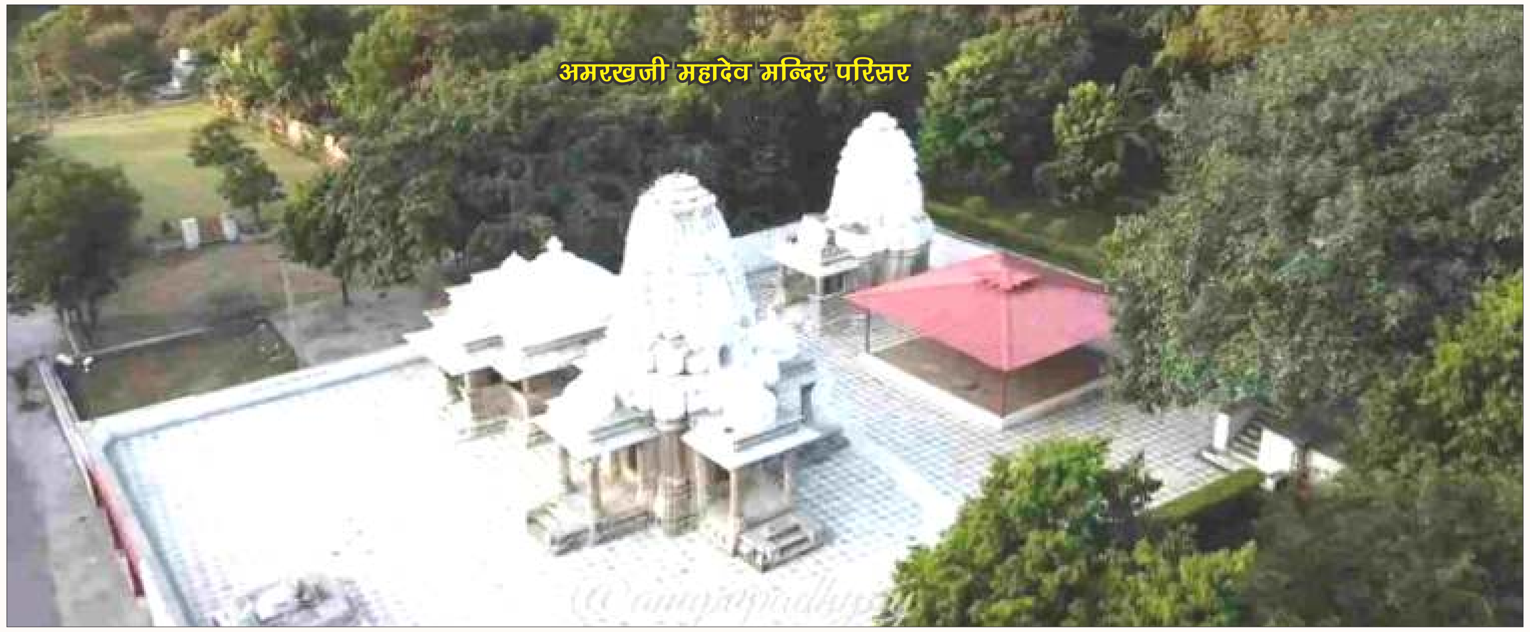
अमरखजी महादेव मन्दिर परिसर

मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार

मन्दिर परिसर में स्थित गंग कुण्ड

मन्दिर परिसर में मेले का आयोजन

रणकपुर मन्दिर : यह मन्दिर उदयपुर से 90 कि.मी., जोधपुर से 190 कि.मी. और कुंभलगढ़ से 50 कि.मी. की दूरी पर अरावली की गहरी एवं शांत घाटी में राणा कुंभा के नाम से स्थापित रणकपुर गांव जो पाली जिले के घाणेराव सादड़ी कस्बे के पास है, में स्थित है। यहाँ पर मन्दिरों का निर्माण 15वीं शताब्दी में शुरू हुआ और उन्हें बनाने में 88 वर्ष से अधिक का समय लगा।

राजस्थानी जैन पोरवाल परिवार के सेठ धरना शाह द्वारा संगमरमर से निर्मित इन मन्दिरों की एक अनूठी शैली और संरचना है। परिसर में चौमुखा आदिनाथ मन्दिर, सूर्य मन्दिर, सुपार्श्वनाथ मन्दिर, नेमीनाथ मन्दिर, अम्बा मन्दिर आदि विद्यमान हैं। मन्दिर निर्माण का वर्णन ताँबे की प्लेट पर लिखित एक शिलालेख एवं एक संस्कृत पाठ 'सोम–सौभाग्य काव्य' में प्रलेखित है। धरना शाह ने एक अद्भुत वाहन नलिनी–गुलमा विमान यानी स्वर्गलोक के वाहन (लोटस विमान) के सपने से प्रेरित होकर इस मन्दिर का निर्माण कार्य मेवाड़ के शासक राणा कुंभा के संरक्षण में प्रारम्भ किया। मन्दिर का वास्तुकार द्वीपा नामक शिल्पी था। मन्दिर की मुख्य संरचना (भूतल) का उद्घाटन धरना शाह और उनके गुरु तपोगच्छ के आचार्य सोमसुन्द्रा सूरी के सान्निध्य में किया गया था।

रणकपुर का भव्य मन्दिर जैन समुदाय के देश के पाँच सबसे बड़े एवं पवित्र मान्यता प्राप्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जैन मन्दिरों में से एक माना जाता है। यह गोरवाड़ पंच तीर्थ का हिस्सा है। ये मन्दिर मूर्तिकला के विशिष्ट कौशल और कलात्मकता के साथ बनाई गई नक्काशी से समृद्ध हैं एवं वास्तुकला के बेहतरीन उदाहरण को प्रदर्शित करते हैं। ये मन्दिर पाँच सौ वर्षों से अधिक पुराने हैं तथा बहुत अच्छी तरह से संरक्षिंत हैं। यह मन्दिर शांति की एक अविश्वसनीय आभा प्रदान करता है, जहां हवा भी धीरे–धीरे चलकर एक शाश्वत मौन का अहसास देती है।

चौमुखा आदिनाथ मन्दिर : यह मन्दिर जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान के अनुसार वर्तमान अर्द्ध–चक्र (अवसर्पिणीयकाल) के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित है। यह घने जंगल के मध्य संगमरमर से बने अपने विशिष्ट गुम्बद, शिखर, बुर्ज, कपोलस के साथ एक पहाड़ी के ढलान पर भव्य रूप से ऊपर उठता हुआ परिलक्षित होता है। इस मन्दिर के नाम का श्रेय इसकी चौमुखी बनावट को जाता है जिसमें चार चेहरों के साथ मन्दिर का निर्माण और गर्भगृह के भीतर 6 फीट ऊँची श्वेत वर्ण युक्त चौमुखी आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की गई है, जो चार प्रमुख दिशाओं यानी ब्रह्माण्ड की विजय का प्रतीक है। गर्भगृह के बाहर चार खुले दो मंजिला रंग मंडप (नृत्यशाला) है जो फिर से एक और दो मंजिले मंडप से जुड़ा हुआ है जिसे बलानां और नलिमंडप कहा जाता है। यह प्रांगण देवकुलिकों और देवताओं के उप–मन्दिरों की दीवार से घिरा हुआ है। मन्दिर में पांच शिखर हैं जिनमें से एक सबसे बड़ा है। मन्दिर का शिखर माउण्टमेरु का प्रतीक है, जहाँ पर्वत जम्बूद्वीप में एक उपदेश सभागार (समवशरण) है। इस मन्दिर की वास्तुकला और पत्थर की नक्काशी राजस्थान के प्राचीन मीरपुर जैन मन्दिर पर आधारित है। आबूपर्वत का देलवाड़ा (दिलवाड़ा) मन्दिर जो अपनी मूर्तिकला के लिए पहचाना जाता है, वही रणकपुर चौमुखा आदिनाथ मन्दिर अपनी बारीक नक्काशी और अनूठी वास्तुकला के लिए भी प्रसिद्ध है।

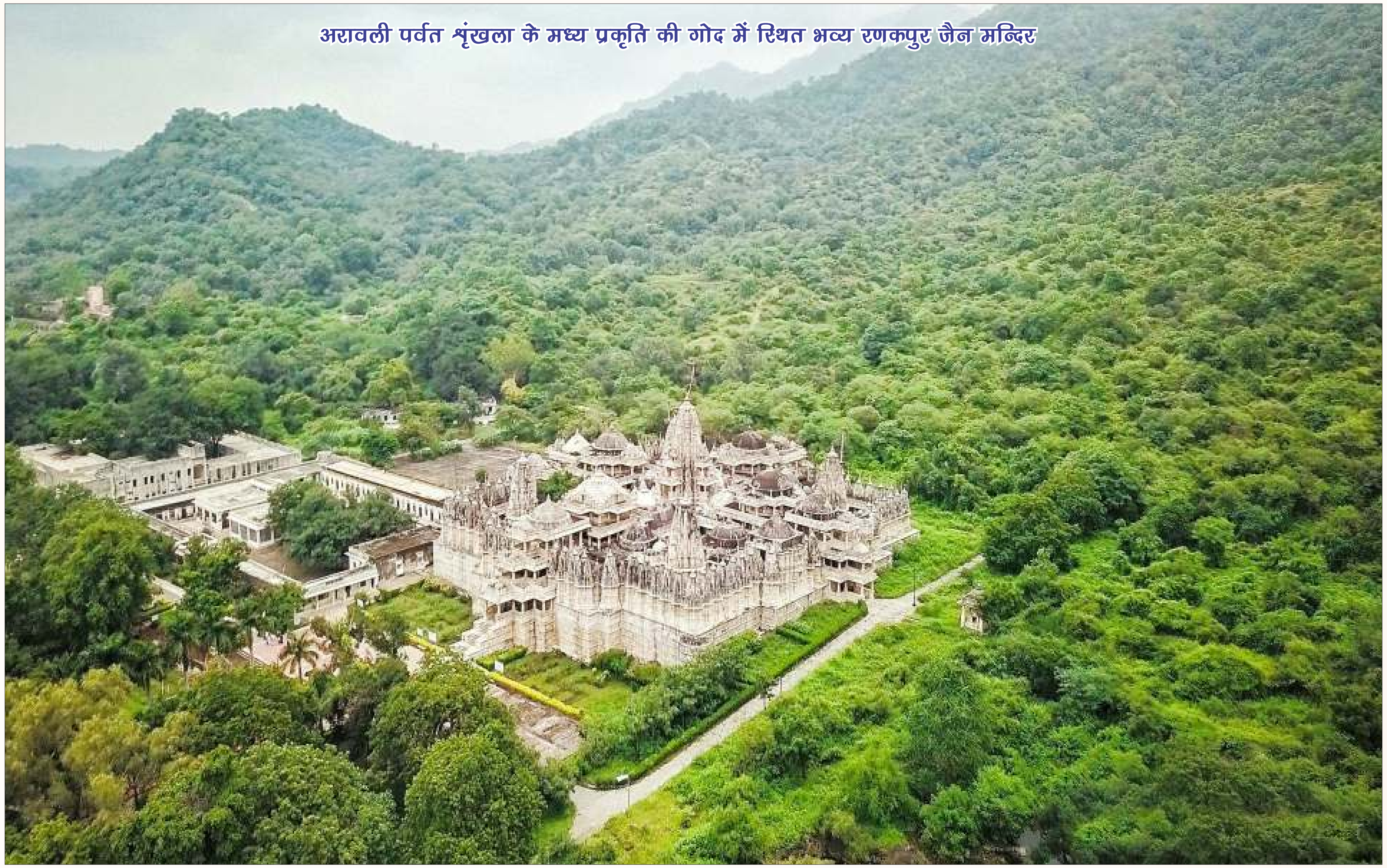
अरावली पर्वत शृंखला के मध्य प्रकृति की गोद में स्थित भव्य रणकपुर जैन मन्दिर

चौमुखा आदिनाथ मन्दिर – उत्तम वास्तुकला एवं पत्थर की नक्काशी – लगभग पाँच शताब्दी से संरक्षित

प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान

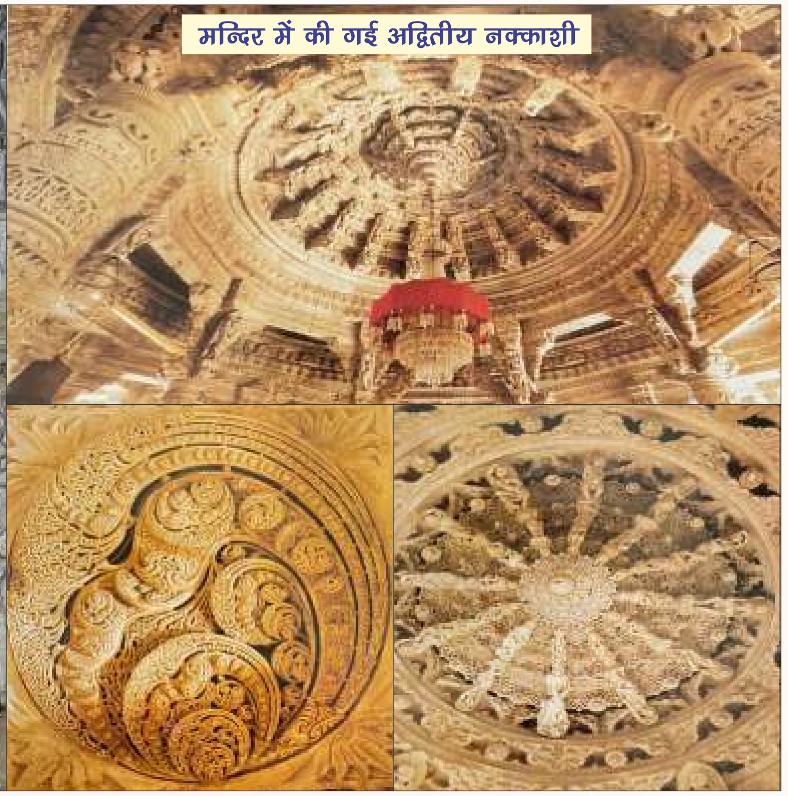
मन्दिर में की गई अद्वितीय नक्काशी

यह मन्दिर एक भव्य सफेद संगमरमर की संरचना है जो 48000 वर्गफीट (4500 वर्गमीटर) में फैला हुआ है। इसमें 1444 संगमरमर के खंभे, 29 हॉल, 80 गुम्बद और 426 स्तम्भ हैं, जिनमें से एक स्तम्भ अधूरा है जिसके बारे में किंवदन्ती है कि हर बार जब इसे बनाया जाता तो यह अगली सुबह फिर से टूट जाता था।

संगमरमर के खंभे उत्कृष्ट संरचना के साथ उकेरे गये हैं, जो मन्दिर को सहारा देते हैं। खंभे पर सुन्दर नृत्य करती हुई देवी की आकृतियाँ वास्तुशिल्प का एक अदभुत नमूना है। ये खंभे पृथक–पृथक रूप से खुदे हुए हैं और कोई भी दो खंभे समान नहीं हैं। किंवदन्ती कहती है कि इन खंभों को गिनना असंभव है। मन्दिर में खंभे ही नहीं बल्कि लगभग हर सतह को बड़ी ही बारीकी से उकेरा गया है। मन्दिर की छत पर बारीक फीते के आकार के सूक्ष्म कार्य एवं जियोमेट्रिक पैटर्न के साथ नक्काशी की गई है। गुम्बदों को कन्सेन्ट्रिक बैंड में उकेरा गया है और शीर्ष के साथ गुम्बद के आधार को जोड़ने वाले ब्रेक्रेट देवी–देवताओं की मूर्तियों से ढके हुए हैं। मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार की धुरी पश्चिम दिशा की तरफ है तथा यह सबसे बड़ी छवि है।

मन्दिर में कुल 84 भोनीरा (भूमिगत कक्ष) हैं, जो जैन मूर्तियों को मुगलों से बचाने के लिए बनाये गये थे। यह मन्दिर एक संगमरमर के खण्ड पर बनी पार्श्वनाथ की सुन्दर नक्काशीदार मूर्ति के लिए भी प्रसिद्ध है। मूर्ति में 1008 साँपों के कई सिर और पूँछ हैं। दो चवर वाहक और यक्ष व यक्षी आधा मानव और आधा साँप दोनों तरफ खड़े हैं। पार्श्वनाथ को शुद्ध करने वाले दो हाथी हैं। इसमें कोई भी साँप की पूँछ का अंत नहीं ढूँढ सकता। मन्दिर में अष्टपद का भी प्रतिनिधित्व है जिसमें गिरनार और नंदीश्वर द्वीप के साथ आठ तीर्थंकरों को एक पंक्ति में दिखाया गया है।

1444 संगमरमर के खंभे – प्रत्येक खम्भा पृथक नक्काशी से उकेरित है।

भगवान पार्श्वनाथ की सुन्दर नक्काशीदार मूर्ति : 1008 सर्पो के कई सिर एवं पूँछ हैं।

सुपार्श्वनाथ मन्दिर : यहाँ पर सुपार्श्वनाथ को समर्पित मन्दिर भी स्थित है। मन्दिर का आंतरिक स्वरूप अति सुन्दर होने के साथ मन्दिर की दीवार कामुक कलाओं के लिए भी प्रसिद्ध है।

नेमिनाथ मन्दिर : यह मन्दिर उत्तम नक्काशी के साथ तीर्थंकर नेमिनाथ को समर्पित है। इसकी वास्तुकला भी अति सुन्दर है।

सूर्य मन्दिर : रणकपुर का सूर्य मन्दिर 13वीं शताब्दी का है। इसके ध्वस्त होने के बाद इसे 15वीं शताब्दी में फिर से बनाया गया था। इस मन्दिर का प्रबन्धन उदयपुर के राज–परिवार के ट्रस्ट के माध्यम से किया जाता है। रणकपुर के सूर्य मन्दिर के अतिरिक्त सभी मन्दिरों का प्रबन्धन पिछली शताब्दी से आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है।

श्री एकलिंगनाथ जी मन्दिर "कैलाशपुरी तीर्थ" : यह मन्दिर उदयपुर से 23 कि.मी. दूर कैलाशपुरी कस्बे में स्थित है जिसे एकलिंगजी भी कहा जाता है। यह नगर एक ऊँची गढ़वाली दीवार से घिरा हुआ अपने 108 मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। इस परिसर में भगवान शिव एकलिंगजी के रूप में उनके प्राचीन प्रसिद्ध एवं विशाल मन्दिर में विराजित है।

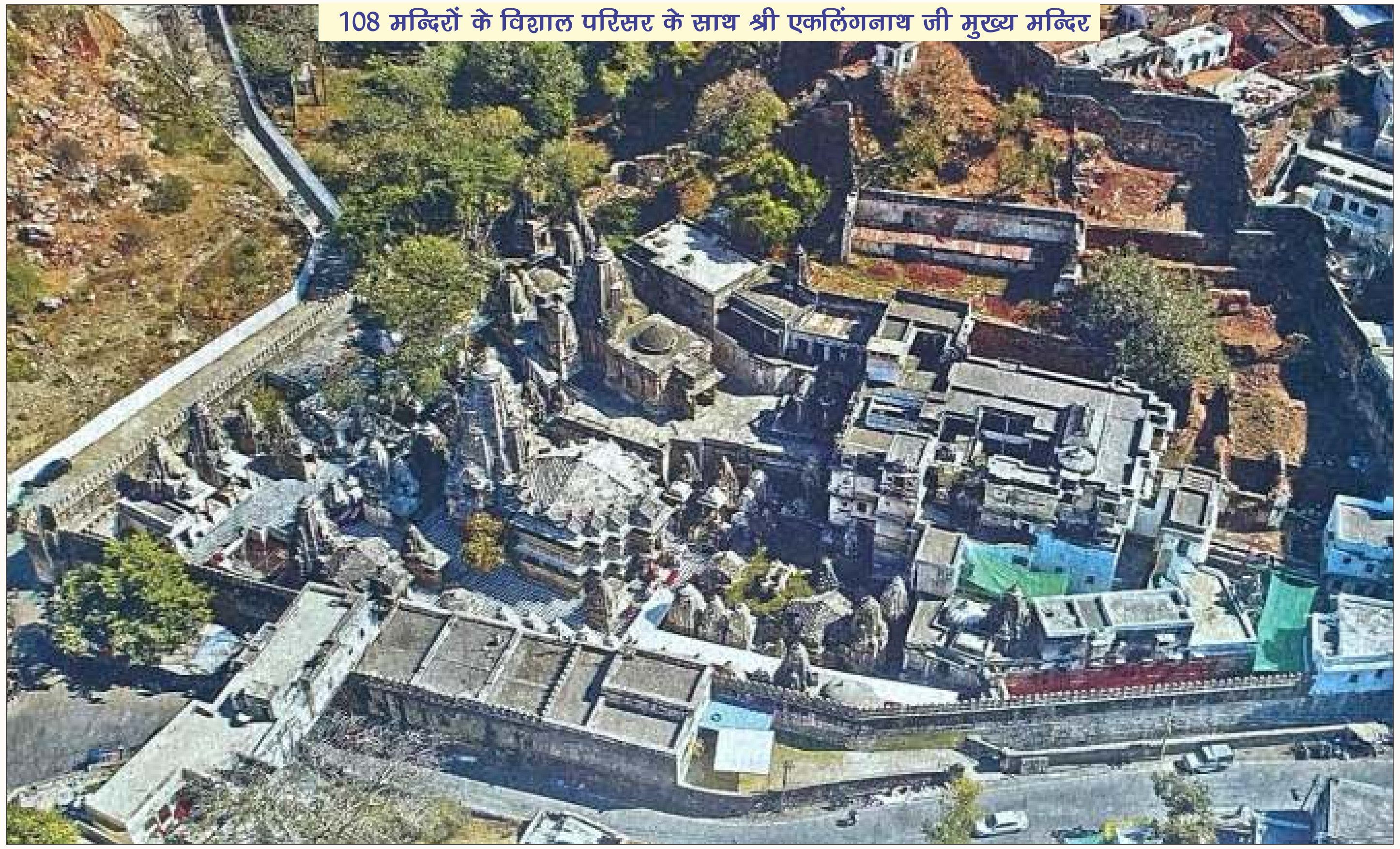

108 मन्दिरों के विशाल परिसर के साथ श्री एकलिंगनाथ जी मुख्य मन्दिर

एक दन्तकथा है कि बप्पा रावल 734 ईस्वी में यहाँ पर हरित ऋषि से मिले थे जिनकी अनुमति से उन्होंने भगवान शिव को समर्पित एकलिंगजी मन्दिर का निर्माण किया था। श्री एकलिंगजी की कृपा से बप्पा रावल (कालभोज) को मेवाड़ राज्य मिला। वे ऐसे दृढ़ भक्त थे कि उन्होंने अपना संपूर्ण राज्य एकलिंगजी के श्री चरणों में रख दिया एवं उन्हें ईष्टदेव मानते हुए अपने शासक के रूप में स्वीकार कर लिया। महाराणा ने उनके प्रतिनिधि होकर राज्य के शासन सूत्र का संचालन किया और इसी के दीवान कहलाये। जब महाराणा गद्दी पर बिराजते थे, तब राज्याभिषेक होने के पश्चात् यहां श्री एकलिंगजी की सेवा करते थे और सेवा होने के बाद गोस्वामीजी महाराणा को मन्दिर में सरोपाव, तलवार एवं राज्य चिह्न देते थे। राज्य के हर एक हुक्म, पट्टे, परवाने आदि पर आरम्भ में श्री एकलिंगजी लिखा जाता था।

बप्पारावल ने एकलिंगजी के मन्दिर के साथ भोजेला तालाब जिसको 'इन्द्र सरोवर' कहते हैं कि इस तालाब में स्नान करने से इन्द्रदेव के कुष्ठ रोग का निदान हो गया, इसी से इन्द्र सरोवर प्रसिद्ध हुआ। महाराणा बप्पा द्वारा बनवाये गये मन्दिर को युद्धों में बहुत नुकसान पहुँचने के कारण महाराणा मोकल ने इसकी मरम्मत करवाकर इसके चारों तरफ सुदृढ़ पत्थर की दीवार बनवा दी। इसके पूर्व में एक खिड़की और पश्चिम में दरवाजा है।

महाराणा कुंभा ने इस छोटे मन्दिर को बड़ा बनवाया। इसके पास ही उत्तर में उत्तम शिल्पकला का एक छोटा मन्दिर और बनवाया जिसको आजकल मीरांबाई का मन्दिर कहते हैं। उदय कर्ण के समय की लड़ाइयों में बड़े मन्दिर को नुकसान पहुँचा, इसलिए महाराणा रायमल ने बड़े मन्दिर को पुनः बनवाकर काले संगमरमर में खुदी हुई चतुर्मुखी प्रतिमा की स्थापना और प्राण प्रतिष्ठा की।

पूरे परिसर को बलुआ पत्थर और संगमरमर से तराशा हुआ है। इसमें एक अलंकृत मण्डप एवं स्तम्भनुमा हॉल है जिसमें एक विशाल पिरामिड़ छत वाला गुम्बद बना हुआ है, जो सैंकड़ों ग्रन्थियों से संयोजित है। मन्दिर के बाहर एक पोर्च और छत वाला आंगन है जो भगवान शिव के परिचारक बैल नान्दी की एक बड़ी प्रतिमा के साथ स्तम्भों द्वारा मण्डित है।

महाराणा बप्पा के बनवाये हुए इन्द्र सरोवर (भोजेला) की पाल ऊमरिया भैरव की बाड़ी के ऊपर जाते वक्त रास्ते में आती है। इसका जीर्णोद्धार महाराणा मोकल ने करवाया था और इससे आगे जो सुन्दर संगमरमर की पाल और उस पर दक्षिण दिशा तथा नैऋत्य कोण पर जो महल है वह महाराणा राजसिंह प्रथम ने बनवाये। इनका जीर्णोद्धार करवाकर महाराणा फतहसिंह ने नैऋत्य कोण के महल जिनको कुँअरपदों के महल कहते है, इनकी भी वृद्धि करायी क्योंकि जब वे सकुटुम्ब पधारते थे तब दक्षिणी दिशा के बड़े महलों में महारानी जी आदि का जनाना रहता था और नैऋत्य कोण वाले कुँअरपदों के महलों में महाराणा साहब और महाराज कुमार साहब रहते थे।

मन्दिर के अहाते के बाहर उत्तर में सड़क के बायीं तरफ श्री बाणमाता तथा विंध्यवासिनी के मन्दिर हैं। हरित ऋषि की मूर्ति के सामने ही भर्तृहरि की गुफा स्थित है। हरित ऋषि के अनुयायी यहां के गोस्वामी हैं जो मन्दिर के पास स्थित मठ में रहते हैं। बप्पा रावल ने वि.सं. 810 (ई.सं. 753) में संन्यास ग्रहण कर करावाड़ी के पास समाधि ले ली, जहाँ पर उनका समाधि मन्दिर विद्यमान है।

इन्द्र सरोवर : राजसमुद्र और जयसमुद्र के अतिरिक्त 17वीं शताब्दी के तालाबों में एकलिंगजी के मन्दिर के पूर्वी भाग में पहाड़ियों से घिरे स्थान पर स्थित इन्द्रसरोवर नामक तालाब भी महत्त्वपूर्ण है। वैसे यह तालाब पहले का बना हुआ था; किन्तु उसका बाँध जीर्ण–शीर्ण हो गया था, अतः महाराणा राजसिंहजी ने पुराने बाँध के स्थान पर नया बाँध बनवाया। यह बाँध वैसे एक तरफ से ही बँधा हुआ है, किन्तु इस पर दो दिशाओं में कुण्ड (सीढ़ियाँ) बने हुए हैं, जिससे इसका स्वरूप विशिष्ट प्रकार का बन गया है। इसके कुण्ड सीधी सपाट सीढ़ियों के हैं, उनमें परिधें अथवा मिट्टों की विशिष्ट योजना नहीं है, किन्तु यह तालाब अपने सम्पूर्ण स्वरूप में ज्योतिर्विद वराह मिहिर के ग्रंथ वृहत्संहिता के उस वर्णन की अनुकृति लगता है, जिसमें विद्वान कला–मर्मज्ञ ने लिखा है कि "जहाँ राजहँसों द्वारा स्वच्छ जलपथ का निर्माण किया जाता है और हँसों के वक्षस्थल जलपथ के श्वेत पद्मों को आलोडित करते हैं, जहाँ राजहँस एवं बतख किलोले करते हैं और धान–पक्षी कलरव जहां नित्य सुना जाता है और निकट के निकुल वृक्षों की छाया में बैठकर पशु विश्राम करते हैं, ऐसे सरिता तीरों पर भगवान हमेशा खेलते हैं। इन्द्र सरोवर में भगवान श्री एकलिंगनाथजी को धारण कराने के लिए जो कमल खिलते हैं और उनके बीच बतखें इत्यादि जिस रूप में किलोले करते हैं और मानव समूह एवं पशु इस सरोवर की पाल पर स्थित सघन वृक्षों की छाया में बैठकर विश्राम करते जिस रूप में देखें जाते हैं, यह सम्पूर्ण दृश्य उसी स्वरूप को प्रस्तुत करता है जिसे ऊपर उद्घृत किया गया है।

कमल के पुष्पों से आच्छादित इन्द्र सरोवर

'कैलाशपुरी' तीर्थ पर भगवान शिव एकलिंगजी के नाम से विराजित है। मूल रूप से यह लाकुलीश सम्प्रदाय का मन्दिर रहा है। 971 ई. का शिलालेख भी मिला है, लेकिन मध्यकाल में वर्तमान एकलिंगजी का मन्दिर बना और उसकी अलग ही पूजा पद्धति है। एकलिंगजी मन्दिर के मध्यकालीन पूजा विधान के प्रवर्तक के रूप में आचार्य विद्यानन्द का नाम ऐतिहासिक स्रोतों में उभरकर सामने आता है, उनको हरित ऋषि की परम्परा में बताया गया है। एकलिंगपुराण में कहा गया है कि वे हरित ऋषि की शिष्य परम्परा में थे। एकलिंगनाथजी के मन्दिर का बड़ा महत्व है क्योंकि यहाँ के मेवाड़ के महाराणा शासकों ने शिव को राजा और स्वयं को उनका प्रतिनिधि स्थापित कर शासन सूत्र का संचालन किया। यूँ तो यहाँ मन्दिर की स्थापना और विकास 9वीं सदी से सिद्ध किया गया है लेकिन अभिलेखी प्रमाण 10वीं सदी से मिलने लगते हैं।

शैव सम्प्रदाय के इस मन्दिर का नागर शैली में मेरु रूपेण स्थापत्य शैली में निर्माण किया गया। मन्दिर में एकलिंगजी की प्रतिमा की स्थापना और प्राण–प्रतिष्ठा महाराणा रायमल ने की। महाराणा मेवाड़ ऑफ चेरिटेबल फाउण्डेशन के तहत एकलिंगनाथजी ट्रस्ट की ओर से संचालित यह मन्दिर अपने ऐतिहासिक महत्त्व के चलते देशी–विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करता है। अभिलेखों के अनुसार यहाँ सबसे पहली भेंट चढ़ाने का कार्य महाराणा हम्मीर ने किया, जिसका विवरण महाराणा रायमल के शासनकाल में 12 मार्च, 1489 ई. के शिलालेख में मिलता है। मन्दिर के दक्षिण द्वार की 1489 ई. की प्रशस्ति में इस मन्दिर के लिए महाराणा हम्मीर (1330–60 ई.) ने शिहेला ग्राम का दान करने का सन्दर्भ मिलता है।

– डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू
इतिहासकार

बाघेला तालाब : बाघेला नाम से प्रसिद्ध तालाब कैलाशपुरी के प्रवेश द्वार पर स्थित है। तीर्थ यात्री यहाँ नहाकर दर्शन के लिए जाते हैं। बाघेला तालाब का केचमेन्ट क्षेत्र झालों का गुड़ा, चीरवा की पहाड़ियाँ, कैलाशपुरी की पहाड़ियाँ एवं समीपवर्ती क्षेत्रों में फैला हुआ है एवं इसी क्षेत्र से यहाँ बरसाती पानी आता है। तालाब में अतिक्रमण हो रहा है एवं इसकी भराव क्षमता को पेटा क्षेत्र में भराव भरकर कम किया जा रहा है। तालाब का रेवेन्यू रिकॉर्ड के अनुसार सीमांकन करवाया जाये तथा अतिक्रमणों से तालाब को संरक्षित एवं सुरक्षित रखना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिये। इस तालाब के ओवरफ्लो होने पर पानी बप्पारावल बाँध से होते हुए राजसमन्द के देलवाड़ा के पलेरा तालाब में आता है। यहाँ से पानी मांगथला होते हुए मावली के गन्धर्व सागर में जाता है।

नागदा : सास बहू (विष्णु मन्दिर) एवं अद्भुत जी (जैन मन्दिर) : उदयपुर से 20 कि.मी. दूर उत्तर दिशा में स्थित नागदा छठी शताब्दी में नागादित्य द्वारा स्थापित मेवाड़ की राजधानी थी। नागदा को अल्तमश द्वारा 1222 एवं 1229 ईस्वी के बीच लूटा गया था और वर्तमान में केवल विष्णु, शिव एवं जैन मन्दिर के खण्डहर हैं। दसवीं शताब्दी के अन्त में निर्मित सबसे महत्वपूर्ण सास–बहू के मन्दिर समय की कसौटी पर जीवन्त बने हुए हैं। दोनों मन्दिर पूर्वाभिमुख हैं एवं भगवान विष्णु को समर्पित हैं। सास–बहू के नाम से भारत में अनेक मन्दिर हैं। इसका सीधा अर्थ है – जुड़वा प्रसाद।

सास–बहू के मन्दिरों को आकर्षक आकृतियों और मूर्तियों से सुसज्जित किया गया हैं। सास मन्दिर बहू के मन्दिर से बहुत बड़ा है और इसके सामने एक तोरण (मेहराब) है। इन्हें पूर्व दिशा में एक तालाब की ओर एक भूतल को ऊपर उठाया गया है। मन्दिरों में प्रवेश एक नक्काशीदार चौखट के साथ द्वार के माध्यम से है जिसके मध्य एक खण्डदार मेहराब है। गुहिल रानी महालक्ष्मी और उसकी बहू हरियादेवी जो हूण राजकुमारी थी, को इन मन्दिरों के निर्माण का श्रेय जाता है।

इतिहासकार बताते हैं कि यहां दो ही नहीं बल्कि दस मन्दिर रहे होंगे, जो दक्षिण और पश्चिम में दिखाई देते हैं। दसवीं सदी में इन मन्दिरों का निर्माण हुआ। यह वह काल था जब मन्दिरों को स्वर्ग के सोपान द्वार रूप तोरण और हिंडोलों से सुसज्जित किया जाता था। इस काल में मन्दिरों की बाहरी भित्ति को अर्थ, धर्म, काम रूप धारणा प्रतिमा फलकों से किसी गहने की तरह मंडित किया जाता था।

विष्णु को पोषण करने वाले देवता के रूप में सम्मान देने के लिए पितामह ब्रह्मा और शिव को परिक्रमण करते दिखाया जाता था। विष्णु के अवतार और अवतारी कथाओं को जहां–तहां उकेरा जाता था। ये सब मान्यताएँ इस मन्दिर में मौजूद हैं। यह देवल संस्कृति 'देवलवाट या दिलवाड़ा' के नाम से आबू से होकर गुजरात, मालवा, महाराष्ट्र तक देवस्थान में भी पहुंची हैं।

यहाँ पर स्थित अद्भुतजी का जैन मन्दिर 1437 ईस्वी में ओसवाल जैन 'सारंग' द्वारा निर्मित जैन संत तीर्थकर शांतिनाथ जी की नौ फीट ऊँची प्रतिमा राणा कुंभा के शासनकाल के दौरान निर्मित की गयी थी।

नागदा के आसपास अन्य कई मनोहारी स्थल–वाघेला तालाब, नागदा कस्बे के खण्डहर, इन्द्र सरोवर, भर्तृहरि की गुफा, हरित ऋषि का मन्दिर और बप्पारावल की समाधि, पहाड़ी पर खीमज माताजी का मन्दिर सम्मिलित हैं।

इतिहास के पृष्ठों से ... नागदा–शांतिनाथ भगवान का नागहट तीर्थ : यह तीर्थ स्थल मेवाड़ की राजधानी रहा है। यहां पर पूर्व में पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर सम्प्रति महाराजा द्वारा बनवाने का उल्लेख मिलता है। जैसा कि मुनि सुन्दरसूरीश्वर ने नागहट तीर्थ स्तोत्र में लिखा है, ''5वीं सदी में समुद्रसूरीश्वर ने शास्त्रार्थ में दिगम्बर आचार्यों को परास्त कर पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर अपने कब्जे में लिया।'' वि.सं. 1494 में शांतिनाथ भगवान के मन्दिर में स्थापित प्रतिमा श्याम पाषाण की 108 इंच ऊँची है, जो अपने आप एक अद्वितीय उदाहरण है। इस प्रतिमा के नीचे लेख इस प्रकार है – ''संवत् 1494 वर्षे माघ सुदी 11 गुरुवारे ''श्री भेद पाट देशे श्री देवकुल पाटण पुखरे नरेश्वर श्री मोकल पुत्र श्री कुभकर्ण भूपति विजय राज्ये श्री उस वंशे (से) श्री नवलक्ष शाखा मण्डन सा. लक्ष्मीवर सुत सा. साधु तत्पुत्र साधु श्री रामदेव तत भार्या प्रथम मेलादे द्वितीया माल्हण दे। मेला दे कुक्षि संभूश सा श्री सहणपाल माल्हण दे कुक्षि सरोज हंसो पक्ष जिन धर्म कर्पूर बात संघ धीनु सा. सांरण। नंदगना हीमादे लश्वमादे प्रमुख परिवार सहितेन सा. सांरगेन (ग) निज भूजो पार्जित लक्ष्मी सफली करणार्थ निरूपम् सद्भुत श्री महत श्री शांति जिनवर बिंब परि रिकत् कारित प्रतिष्ठित श्री वर्धमान स्वास्थ्न्वर्य श्री भट्ट खरतरगच्छे श्री जिनराज सूरि पट्टे श्री जिनवर्धन सूरि (स्त) तत्पपट्टे श्री जिनचन्द्र सूरि (स्त) तत्पट्ट पूर्वाचल चूलिका सहत करावतीरे श्री जिनसागर सूरिभि (ख) सढ़ा वंदते श्रीभद धर्म मूर्ति उपाध्याय घटित सूत्रधार मदन पुत्र घरणाणी काम्या।'' पालीताणा में प्रतिष्ठित प्रतिमा की तरह इस मन्दिर में 108 इंच ऊँची प्रतिमा होने से इस तीर्थ को अद्भुत जी कहते हैं।

जैन मन्दिर के पास एक ऊंची पहाड़ी पर खीमच माता जी मन्दिर भी दर्शनीय स्थल है।

श्रीनाथजी मन्दिर, नाथद्वारा : नाथद्वारा बनास नदी के दाहिने किनारे पर प्राकृतिक रूप से समृद्ध तथा पूरे देश में श्रीनाथजी के निवास स्थान के रूप में प्रसिद्ध है, जो भगवान श्रीकृष्ण के सबसे लोकप्रिय प्रतीकों में से एक है। श्रीनाथजी का यह प्रमुख मन्दिर राजस्थान के उदयपुर शहर से 49 कि.मी. दूर उदयपुर–जयपुर मार्ग पर स्थित है। इस शहर को "मेवाड़ के अपोलो" के रूप में भी जाना जाता है। यह शहर छोटा हो सकता है लेकिन भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित वैष्णव सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय के लिए यह एक महान् तीर्थ स्थल के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका है।

श्रीनाथजी श्रीकृष्ण भगवान के रूप में 7 वर्ष की अवस्था "विग्रह के मूलरूप" में है। श्रीकृष्ण को निकुंज नायक भी कहा जाता है, जब उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत को उठाया था। इनकी प्रतिमा में श्रीकृष्ण को उनके बाएं हाथ को उठाए हुए, दाहिने हाथ को पहले कूल्हे में बंद किए हुए और उनके कूल्हे पर विश्राम अवस्था में दिखाया गया है।

पुष्टि मार्ग के अनुयायी के अनुसार श्रीनाथजी के स्वरूप का हाथ और चेहरा गोवर्द्धन पहाड़ी पर उभरा था और उसके बाद माधवेन्द्र पुरी के आध्यात्मिक नेतृत्व में ब्रजवासियों ने गोपाल (श्रीकृष्ण) की पूजा शुरू की। इन्हीं गोपाल को बाद में श्रीनाथजी कहा गया। इस प्रकार माधवेन्द्र पुरी को गोवर्द्धन पहाड़ी के पास गोपाल देवता की खोज के लिए मान्यता दी जाती है जिसे बाद में वल्लभाचार्य द्वारा श्रीनाथजी के रूप में पूजा जाने लगा। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथजी ने नाथद्वारा में श्रीनाथजी की पूजा को संस्थागत रूप दिया। श्रीनाथजी वैष्णव सम्प्रदाय के केन्द्रीय पीठासीन देव है जिन्हें पुष्टिमार्ग या वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित वल्लभ सम्प्रदाय के रूप में जाना जाता है।

श्रीनाथजी की मूर्ति को सर्वप्रथम 1495 ईस्वी में मथुरा के एक छोटे से मन्दिर में वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित किया गया था। यह मूर्ति एक बड़े काले पत्थर से बनाई गई है और उस पर उकेरे गए कई जानवर दो गाय, एक साँप, एक शेर, दो मोर एवं भगवान के सिर पर एक तोता, तीन ऋषि जिनमें एक भगवान के बायीं ओर तथा दो उनके दायीं तरफ विराजित हैं। भगवान की गर्दन के चारों ओर पत्थर की बनी एक फूलों की माला काले सर्प जैसी परिलक्षित होती है।

17वीं शताब्दी में मुगल शासक औरंगजेब पूरे भारतवर्ष में हिन्दू मन्दिरों और हिन्दू धर्म स्थलों को तहस–नहस कर रहा था। इसी क्रम में औरंगजेब की नजर मथुरा में स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर पर पड़ गई और भगवान श्रीनाथ के विग्रह को तोड़ने के लिए मुगल सेना को भेजा। जब सेना मथुरा (गोवर्द्धन) पहुँची तो प्रभु के भक्तों ने उन्हें पूर्व मुगल शासकों द्वारा मन्दिर को दिये गये खिताब और उपहार दिखाये, तब सेनापति ने भगवान की मूर्ति को मथुरा से दूर ले जाने का आदेश दिया।

इस समय श्रीनाथजी मन्दिर के मुख्य पुजारी दामोदर गोसाई थे। जब उन्हें पता चला कि मेवाड़ में भगवान श्रीनाथ जी का विग्रह एकदम सुरक्षित रहेगा तो वह श्रीनाथजी को आगरा और ग्वालियर के रास्ते मेवाड़ क्षेत्र में ले आये। लगभग छः माह तक यह प्रतिमा आगरा में रही। उसके बाद इस मूर्ति को मेवाड़ की यात्रा पूर्ण

भगवान श्रीकृष्ण गोवर्द्धन पर्वत को उठाते हुए

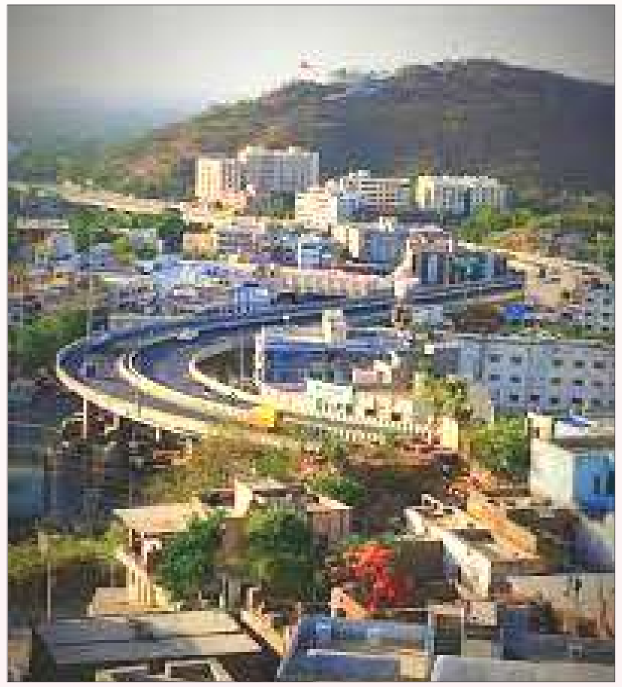

इतिहास के पृष्ठों से ... नाथद्वारा पर आक्रमण एवं भगवान श्रीकृष्ण का उदयपुर–घसियार आगमन : द्वापर युग में जरासंध और कालयवन ने जिस प्रकार मथुरा पर आक्रमण किया था और उससे बचकर भगवान श्रीकृष्ण कुछ समय के लिए अन्यत्र चले गये थे एवं शांति होने पर पुनः ब्रज लौट आये, वैसा ही लीला चरित्र नाथद्वारा में श्रीकृष्ण स्वरूप प्रभु श्रीनाथजी के साथ बना।

वि.सं. 1835 में अजमेर मेरवाड़ा के मेरो ने मेवाड़ पर भयानक आक्रमण किया तथा नृशंस हत्याएं करना प्रारम्भ कर दिया। इधर पिंडारियों ने नाथद्वारा में घुसकर लूट–खसोट की और धन–जन को हानि पहुँचाई। निरन्तर बढ़ती हुई अशांति के बादल अभी छितरा भी नहीं पाये कि वि.सं. 1858 में दौलतराव सिन्धिया से पराजित होकर जसवन्तराव होल्कर यत्र–तत्र भटकता हुआ मेवाड़ भूमि के समीप आ गया। परन्तु सिन्धिया की सेना उसे खोजती हुई नाथद्वारा आ पहुँची। अनवरत युद्धों की विभीषिका के मध्य स्थित नाथद्वारा का अनुपम वैभव देखकर उन्होंने गोस्वामी जी से तीन लाख रुपया मांगा और उसे वसूलने का निरर्थक प्रयास किया। मन्दिर की अचल सम्पत्ति पर भी उसका मन मचल उठा और उसे भी हथियाने की चेष्टाएँ की जाने लगी। आने वाली विकट स्थिति को भांपकर प्रभु श्रीनाथजी को सुरक्षित रखने के लिए गो.ति. श्री गिरिधरजी महाराज ने घसियार नामक बीहड़ में नाथद्वारा के समान ही मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया और नगर की संकटापन्न स्थिति के बारे में महाराज श्री ने वि.सं. 1857 आषाढ़ सुदी 2 को मेवाड़ महाराणा श्री भीमसिंह को एक पत्र लिखा। प्रभु श्रीनाथजी एवं नगर का जनजीवन संकटग्रस्त देखकर गो.ति. श्री गिरिधर महाराज को मेवाड़ महाराणा ने ठाकुर जी को लेकर उदयपुर पधारने की आज्ञा दे दी। भगवत् भक्त महाराणा ने त्वरित ही देलवाड़ा के राजा कल्याणसिंह झाला, कूंठवा के ठाकुर विजयसिह जी चुडावत सांगावत आगर्या के ठाकुर जगतसिंह जेत मालोत, मोई के जागीरदार अजीतसिंह भाटी, शाह एकलिंगदास बोल्या तथा जमादार नाथूसिंह को सेना सहित नाथद्वारा की ओर रवाना किया। मेवाड़ की बहादुर सेना ने नाथद्वारा आकर घोर संग्राम किया तथा शत्रुओं को तितर–बितर कर दिया। गो.ति. श्री गिरिधरजी महाराज ने उदयपुर चले जाने में ही अपना हित समझा और वि.सं. 1858 माघ कृष्ण 1 तद्नुसार दिनांक 29 जनवरी, 1902 को प्रभु श्रीनाथजी, श्री नवनीत प्रियजी और विट्ठलनाथजी को रत्नालंकारों सहित लेकर महाराज श्री उदयपुर की ओर चल पड़े। कुछ ही समय में कोठारिया के रावत विजयसिंह चौहान उनके साथ हो लिये। इनका पहला पड़ाव उनवास नामक ग्राम में हुआ। वहां जब सुना कि नाथद्वारा में होल्कर की सेना बड़ा उत्पात मचा रही है तब कोठारिया रावत नगर की रक्षार्थ नाथद्वारा लौट आये। यहां पर होल्कर की सेना से युद्ध हुआ और लड़ते–लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए।

प्रभु श्रीनाथजी उदयपुर की सीमा में आगे बढ़ने लगे। मेवाड़ महाराणा ने घसियार में प्रभु श्रीनाथजी व अन्य स्वरूपों की अगवानी की, लेकिन उस समय तक घसियार का मन्दिर निर्माणाधीन था। अतः मेवाड़ महाराणा प्रभु को लेकर उदयपुर पधारे।

उदयपुर में प्रभु का दिव्य स्वागत : उस समय उदयपुर मेवाड़ की सुप्रसिद्ध राजधानी थी। भारत के वैभवशाली नगरों में इसकी गणना होती थी। जिसके चारों ओर सुन्दर–सुन्दर जलाशय थे। उनके किनारे हरे–भरे उपवन लहरा रहे थे। वृक्ष फल–फूलों से लदे हुए थे। उन पर विविध प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। हिरण चौकड़ी भरते स्पष्ट दिखाई देते थे। दूसरी ओर नगर की सम्पन्नता भी वर्णनातीत थी। बड़ी–बड़ी अटारियां, बाजार, अन्न के गोदाम, घी–तेल के कुण्ड, सभा भवन, बड़े–बड़े गोपुर तथा चार दीवारियों से यह नगर अत्यन्त ही शोभायमान था। अस्तबल घोड़ों से भरे हुए थे तथा गजशाला में अनेक मदमस्त हाथी सुशोभित हो रहे थे।

जैसे ही प्रभु श्रीनाथजी के शुभागमन की चर्चा इस नगर में फैली वैसे ही राजप्रसादों के गगनचुम्बी शिखरों पर चमकते स्वर्ण–कलशों को स्वच्छ कर दिया गया और उस पर विचित्र झांडियां फहरा दी गई। कितने ही दिनों पूर्व से ही नर–नारियों ने प्रभु के आगमन की खुशी में घर–बारों को लीपा–पोता तथा गृह–द्वारों को आम्र तथा आशा पल्लवों से सजा दिया। नगर में बड़े–बड़े दरवाजे बनाये गये तथा रंग–बिरंगी पताकाओं की सैकड़ों,

करने में 32 माह लगे। उस समय मेवाड़ के शासक महाराणा राज सिंह को जब पता चला तो स्वयं दामोदर गोसाई जी के पास भगवान श्रीनाथजी के दर्शन करने के लिए पधारे। दर्शन उपरान्त उन्होंने गोसाई जी को यह वचन दिया कि जब तक मेवाड़ में एक भी राजपूत जीवित है तब तक भगवान श्रीनाथ जी के विग्रह को औरंगजेब और उसकी मुगल सेना हाथ भी नहीं लगा सकेगी।

माना जाता है कि श्रीनाथजी की प्रतिमा को ले जाते समय रथ यात्रा के दौरान मेवाड़ सिंहाड़ गांव में यह रथ कीचड़ में फंस गया था, जिसे एक दिव्य संकेत के रूप में देखा गया और उसके अनुसार भगवान श्रीनाथजी ने यहीं पर बसने की इच्छा व्यक्त की। इसलिए इस मूर्ति की स्थापना मेवाड़ के तत्कालीन महाराणाा राजसिंह की अनुमति के साथ एक मन्दिर में की गई। इस प्रकार धार्मिक मान्यताओं के अनुसार नाथद्वारा में इस मन्दिर का निर्माण 1669–1672 के मध्य श्रीनाथजी द्वारा स्वयं चिह्नित किये गये स्थान पर किया गया था। सिंहाड़ गांव अब नाथद्वारा शहर बन गया है।

श्रीनाथजी का मन्दिर एक घर/हवेली की तरह निर्मित एक साधारण संरचना है लेकिन इसके डिजाइन में पर्याप्त आकर्षण एवं सामंजस्य है। इसकी संरचना को श्रीकृष्ण के पिता वृंदावन के नन्द महाराजा के घर की तर्ज पर डिजाइन किया गया है और इसे नन्द घर या नन्दालय के रूप में भी जाना जाता है। इसमें गृहस्थी की तरह रथ जिसमें श्रीनाथजी को सिंहाड़ लाया गया था, की नियमित रूप से आवाजाही होती है। इस हवेली में दूध के लिए दूधघर, सुपारी के लिए पानघर, चीनी और मिठाइयों के लिए मिश्रीघर, फूलों के लिए फूलघर, एक कार्यात्मक रसोई, एक आभूषण कक्ष गहनाघर, एक खजाना कक्ष, रथ के घोड़ों के लिए अश्वशाला, एक बैठक कक्ष तथा एक सोने एवं चांदी का पहिया चक्की भी स्थित हैं। वर्तमान में इनके मूलरूप बनाये रखते हुए भव्य जीर्णोद्धार करवाया जा रहा है।

दर्शन समय सारणी

1. मंगला आरती : प्रातः 05.45 से 06.30 बजे तक
2. श्रृंगार आरती : प्रातः 07.15 से 07.45 बजे तक
3. ग्वाल आरती : प्रातः 09.15 से 09.30 बजे तक
4. राजभोग आरती : प्रातः 11.15 से 12.05 बजे तक
5. उत्थापन आरती : सायं 03.45 से 04.00 बजे तक
6. भोग आरती : सायं 04.45 से 05.00 बजे तक
7. आरती : सायं 05.15 से 06.00 बजे तक
8. शयन आरती : सायं 06.15 से 07.15 बजे तक

मन्दिर के शीर्ष भाग पर एक कलश स्थापित किया गया है। कलश के साथ भगवान श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र के अलावा मन्दिर के शिखर पर सात पताकाएँ भी फहराई गई हैं। ये सातों पताकाएँ पुण्य मार्ग वैष्णव सम्प्रदाय (वल्लभ सम्प्रदाय) का प्रतिनिधित्व करती हैं।

भगवान श्रीनाथजी की दिनचर्या में उन्हें प्रातः जल्दी उठाने से लेकर उन्हें नहलाना, भोजन करवाना, आराम करवाना और रात के समय शयन करवाना, ये सभी कार्य निर्धारित होते हैं। श्रीनाथजी को भोजन के

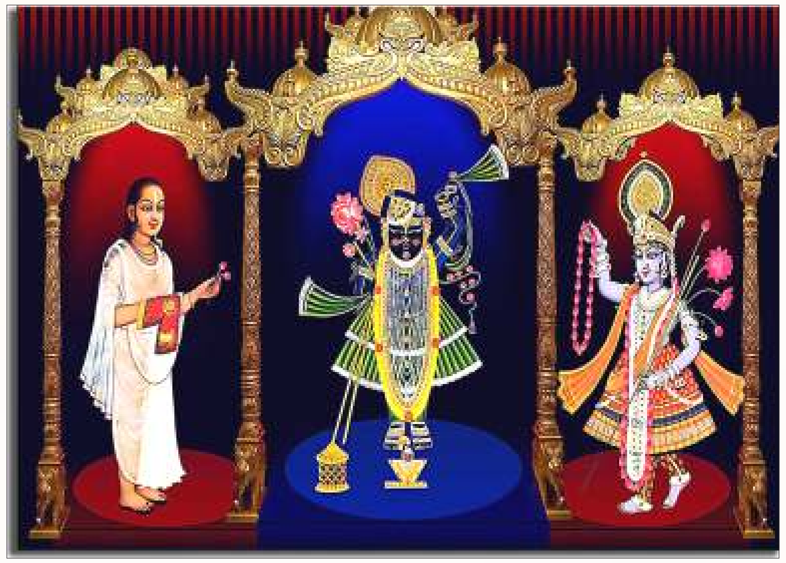

वन्दनवारों से प्रधान मार्गों को सुशोभित कर दिया गया। नगर के राजपथ, गलियों और चौराहों को झाड़–बुहारकर साफ कर दिये और उन पर निर्मल जल का छिड़काव कर दिया गया। प्रत्येक घर में उस दिन आनन्द का स्रोत फूट पड़ा। लोगों ने नई पौशाकें पहनी। जगह–जगह पर अगर–धूप लगाकर नगर को महका दिया गया। अनेक नर–नारी सजधज कर राजमार्ग में एकत्रित हो प्रभु श्रीनाथजी की बाट निहारने लगे। वर्तमान श्रीनाथजी मन्दिर से लेकर राजमार्ग, प्रमुख चौक और नगर से बाहर तक अपार जनसमूह लालायित था। सुहागिन नारियों ने किनारीदार कसुमल साड़ियों को पहना, हाथों में कंगन तथा मंगलसूत्र से अपने आप को सजा लिया। पुरुष धोती, लम्बी अंगरखी पहने हुए थे। उनके मस्तक पर रंग–बिरंगी पगड़ियां व मोठड़े देखते ही बनते थे। ऐसे ही नौजवानों के सुगठित शरीर पर नाना प्रकार के उपरणे लहरा रहे थे उनमें भी कुछ लोगों ने अपने पैरों में सोने के लंगर पहन रखे थे। वृद्ध लोगों की रजत धवल दाढ़ियाँ अत्यन्त ही गौरवान्वित हो रही थी। उस महोत्सव में सम्मिलित होने वाले अनेक रावराणा शोभायात्रा में यथावत् अपने–अपने स्थान पर खड़े थे, जैसे ही प्रभु के आगमन का बिगुल बजा, सब लोग सतर्क हो गये और अपने हाथों में पुष्पगुच्छों को ले लिया।

महाराणा भीमसिंह पहले से ही श्रीनाथ प्रभु के स्वागतार्थ नगर के प्रमुख द्वार पर खड़े थे। शोभायात्रा के अग्रभाग में अश्व पर नगाड़ा बज रहा था। उसके पीछे हाथी पर उदयपुर महाराणा का निशान था और उसके पीछे कई सुसज्जित मदमाते हाथी अपनी अल्हड़ चाल से चल रहे थे। इनके पीछे सोने व चांदी के आभूषणों से युक्त इठलाते घोड़े और इनके बाद महाराणा के अनेक शस्त्रधारी अद्वितीय योद्धा एक–एक कदम पंक्तिबद्ध बढ़ा रहे थे। उदयपुर का प्रसिद्ध बाजा इस समय अपनी मधुर आवाज से सभी दर्शकों को आत्म–विभोर किए हुए था। इसके पश्चात् गोपाल निशान को लिए ब्रजवासी अश्व पर सवार था। इनके पीछे गोस्वामी जी की सेना शनैः–शनैः अपने कदम बढ़ा रही थी। इसके पश्चात् अरबी ताशे बजाने वालों का समूह बाजे बजाता चल रहा था। तदनन्तर छड़ीदार, समाधानी तथा मन्दिर के अनेक कर्मचारी छड़ी लिए हुए आगे बढ़ रहे थे। इनके पीछे गोस्वामी बालक दिखलाई पड़ते थे। महाराज श्री गिरधरजी के मुख पर उस समय एक दिव्य चमक थी। गोस्वामी बालकों के साथ ही सच्चिदानन्द घन प्रभु श्रीनाथजी का अनुपम रथ चल रहा था और कई सेवक उस पर चंवर आदि डुला रहे थे।

जैसे ही श्रीनाथजी का रथ महाराणा को दिखाई पड़ा, वे नतमस्तक हो गये। वे बार–बार प्रभु को वन्दन करने लगे। जय–जयकार की तुमूल हर्ष की ध्वनि से सारा नगर निनादित हो उठा। महाराणा सही समय पर रथ के साथ सम्मिलित हो गये और स्वयं श्रीजी पर चंवर डुलाने लगे। श्रीजी के रथ के पीछे श्री नवनीत प्रियजी और पीछे श्री विट्ठलेश रायजी के रथ चल रहे थे। इनके पीछे नाथद्वारा नगर की असंख्य महिलाएं चल रही थी। उनके धूल धुसरित मुखड़े पर पसीने की बूंदें दिखलाई पड़ रही थी। उनमे से कई ने मस्तक पर टोकरे ले रखे थे। अनेकों की गोदी में कई नन्हे–नन्हे बच्चे किल्लोल कर रहे थे। महिलाओं के बाद नाथद्वारा के कई संभ्रान्त नागरिक चल रहे थे। इनके बाद अनेक बैलगाड़ियाँ थी जिन पर सामान लदा हुआ था। शोभायात्रा में सबसे पीछे महाराज श्री के नगर रक्षक सांडनी सवारों की कतारे चौकन्नी होकर धीरे–धीरे आगे बढ़ रही थी। इस प्रकार ''श्री गिरिराज धरण की जय'' उद्घोष के साथ प्रभु का रथ अनवरत अग्रसर होता जा रहा था। सड़कें, छतें तथा दुकानें दर्शनार्थियों से खचाखच भरी थी। लोग जय–जयकार करते हुए पुष्प वर्षा कर रहे थे। ऐसे परमानन्दमय अवसर पर कुछ भक्त आंखों में प्रेमाश्रु बहाकर प्रभु का स्तवन करने लगे और कुछ आनन्दोन्मत होकर नाचने लग गये।

जैसे ही गावर्धन धरण प्रभु श्रीनाथजी का रथ राजप्रसाद के समीप पहुँचा, मेवाड़ की महारानियों ने प्रभु श्रीनाथजी का स्वागत किया। उस समय वे अद्भुत रूप लावण्य से सम्पन्न और बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित थी। राजमहिषी ने मुट्ठी भर–भरकर प्रभु के रथ पर मुद्राएं उछाली और रजत कनक पुष्पों की वर्षा की। इस प्रकार मन्थर गति से यह शोभायात्रा सात घंटों तक चलकर वर्तमान श्रीनाथजी मन्दिर तक पहुंची। बड़ी धूमधाम के साथ रथ की आरती उतारी गई और रथ में ही श्रीकृष्ण स्वरूप प्रभु श्रीनाथजी के दर्शन

रूप में चढ़ाये जाने वाले प्रसाद को 'भोग' कहा जाता है।

मन्दिरों के पुजारियों और सेवकों को उनके कर्त्तव्यों के प्रतिफल के रूप में वेतन के स्थान पर प्रसाद दिया जाता है। अक्सर यह प्रसाद उन मेहमानों को दिया या बेचा जाता है, जो दर्शन के लिए मन्दिर आते हैं।

श्रीनाथजी के दर्शन (दिनचर्या) को आठ भागों में बांटा गया है और इन सभी भागों को अलग–अलग नाम से जाना जाता हैं, जिन्हें मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, आरती और शयन नाम से जानते हैं। इन सभी दर्शनों में श्रीनाथजी को हर बार अलग–अलग रूप में तैयार किया जाता है। वैसे तो श्रद्धालु दिन के समय होने वाली किसी भी आरती में दर्शन करने के लिए जा सकते हैं।

श्रीनाथजी की श्रृंगार आरती को देखना एक अलग ही अनुभव प्रदान करता है। श्रृंगार आरती में श्रीनाथजी को बहुत ही सुन्दर और हाथ से बने हुए रेशम के कपड़ों से सजाया जाता है। उनके सभी वस्त्रों पर जरी और कढ़ाई का बहुत महीन कार्य होता है। कपड़ों के अलावा उनको पहनाए जाने वाले सभी गहने असली सोने के बने हुए होते हैं। रात के समय मन्दिर में भजन–कीर्तन होते हैं। इस वजह से रात वाली आरती में मन्दिर का माहौल बहुत धार्मिक और आनन्दमय हो जाता है।

नाथद्वारा के स्थानीय बाजार में वैसे तो राजस्थानी हस्तशिल्प की बनी मूर्तियां, राजस्थान में पहनी जाने वाली पारम्परिक वेशभूषा, घर में काम आने वाले बर्तन आदि उपलब्ध हैं लेकिन जो चीज नाथद्वारा के स्थानीय बाजार में सबसे अधिक प्रसिद्ध है और जिसे सबसे ज्यादा खरीदा जाता है, वह है राजस्थान की प्राचीन चित्रकला पद्धति से बनाये गये भगवान श्रीनाथजी के बेहद सुन्दर चित्र। राजस्थान की जिस प्राचीन चित्र पद्धति से भगवान श्रीनाथजी के चित्र बनाये जाते हैं, उसे नाथद्वारा स्कूल एवं इसकी पेन्टिंग्स तथा पिछवाई पेन्टिंग कहा जाता है। नाथद्वारा में इन पद्धतियों से बनने वाले चित्रों में भगवान श्रीनाथजी के चित्रों के अलावा भगवान श्रीकृष्ण की रास–लीलाओं और नृत्यों को बहुत बारीकी से चित्रित किया जाता है। पिछवाई पेन्टिंग के अलावा नाथद्वारा में आने वाले पर्यटक और श्रद्धालुगण स्थानीय कलाकारों द्वारा चावल के दानों पर अपना नाम लिखवाना बहुत पसन्द करते हैं।

यहाँ पर श्रीनाथजी से जुड़े सात अन्य मन्दिर और भी स्थित हैं। मुख्य मन्दिर के अलावा श्री विट्ठलेशराय जी, श्री नवनीतप्रिय जी, श्री मदनमोहन जी मन्दिर भी दर्शनीय हैं। भगवान श्रीकृष्ण के प्रिय गौधन को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने हेतु यहाँ की गौशाला में सैंकड़ों की संख्या में गायों का पालन किया जा रहा है। इन गौशालाओं को भी श्रीनाथजी के श्रद्धालुगण बड़ी आत्मीयता से देखने के साथ उनके रखरखाव हेतु बढ़–चढ़कर दान–पुण्य करते हैं।

यह मन्दिर वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का प्रमुख स्थल है और यहां प्रतिदिन बड़ी संख्या में भक्तगण आते हैं। मन्दिर में अन्नकूट और जन्माष्टमी त्योहारों के दौरान भारत के अनेक हिस्सों, विशेषकर गुजरात से प्रतिवर्ष हजारों तीर्थ यात्री दर्शनार्थ यहाँ पर आते हैं। इस मन्दिर का प्रबन्धन वर्तमान में राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित एक मन्दिर बोर्ड द्वारा किया जा रहा है।

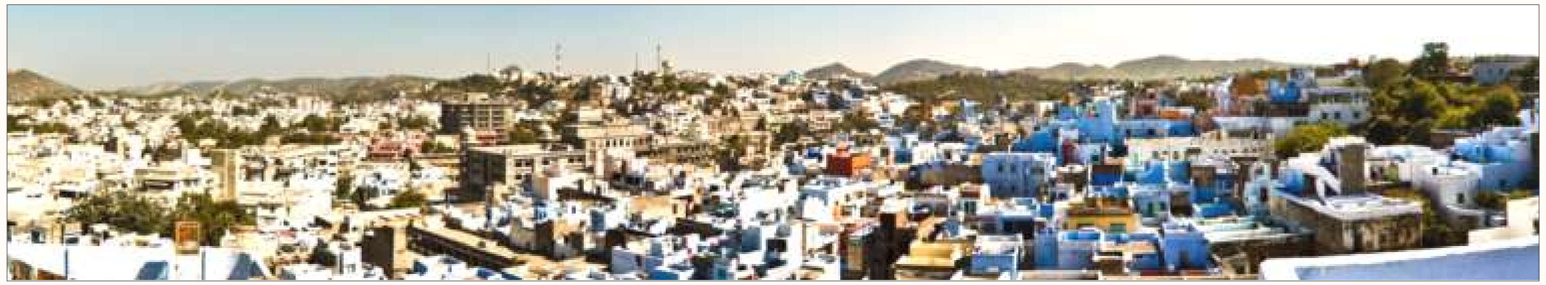

गौशाला – श्रीनाथजी मन्दिर नाथद्वारा

श्रीनाथजी मन्दिर, उदयपुर

श्रीनाथजी मन्दिर, घसियार

कराये गये। जिस समय प्रभु श्रीनाथजी के दर्शन खुले उस समय भक्तों में अपार उत्साह देखते ही बनता था। प्रभु श्रीनाथजी के उदयपुर पहुंचने पर एक लघु मन्दिर में प्रभु बिराजे। उसके बाद वहां भी नाथद्वारा के समान ही मन्दिर का निर्माण कार्य कराया गया। श्री नवनीत प्रिय प्रभु श्रीनाथजी के साथ थे। श्री विट्ठलेशराय अपने अलग मन्दिर में प्रतिष्ठापित हुए। प्रभु के साथ यहां फाल्गुन, चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन एवं कार्तिक के दीपावली व अन्नकूट आदि के उत्सव सम्पन्न किये गये। परन्तु सिन्धिया की सेना धीरे–धीरे बढ़ते हुए यहां भी आ पहुंची। महाराणा भीमसिंह ने उसे पुनः लौट जाने तथा उदयपुर को कोई क्षति नहीं पहुंचाने के लिए कर के रूप में अपनी राजरानियों के मूल्यवान हीरे–जवाहरात युक्त आभूषण भी दे दिये। ऊपर से तीन लाख रुपया और दिया। फिर भी उसकी अर्थ पिपासा शांत नहीं हुई और उसने मेवाड़ की प्रजा को लूटा। महाराणा के शूरवीर योद्धा उनसे भीड़ गये। देखते ही देखते युद्ध के प्रलयकारी बादल दिखलाई पड़े। ऐसी विषमावस्था में प्रभु के निवास स्थान के लिए एकमात्र घसियार ही उपयुक्त स्थान दिखलाई पड़ा। उदयपुर में प्रभु श्रीनाथजी दस माह और नौ दिन बिराजे। तत्पश्चात् घसियार में सुदृढ़ दुर्गनुमा मन्दिर बन जाने के बाद प्रभु श्रीनाथजी उस ओर रवाना हो गये।

घसियार प्रस्थान : घसियार सुन्दर पर्वतीय उपत्यका में हरीतिमा लिए हुए एक दुर्गम स्थल था। यकायक यहां किसी का पहुंचना सहज नहीं था। गो.ति. श्री गिरधरजी महाराज ने पन्द्रह लाख रुपया लगाकर जो प्रभु श्रीनाथजी का मन्दिर बनवाया, अब तो वह पूर्णरूपेण निर्मित हो चुका था। अतः प्रभु को वहीं बिराजमान करना उचित समझा गया। नन्दनन्दन प्रभु श्रीनाथजी अब घसियार पधारे और अपने दुर्गाकार मन्दिर में बिराजमान हुए। देखते ही देखते घसियार नाथद्वारा बन गया। मन्दिर के चारों ओर गली मौहल्ले तथा चौराहे बनने लगे। नित नये आनन्द व मनोरथों की वहां झड़ी लगने लग गई। जंगल में मंगल के नंगाड़े बज उठे।

घसियार से पुनः नाथद्वारा आगमन : घसियार का जलवायु सभी के लिए अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। वहां का पहाड़ी पानी प्रभु श्रीनाथजी की सेवा योग्य नहीं था। यहां तक कि विपरीत वातावरण से आचार्य ति. श्री गिरधरजी महाराज के तीन पुत्र कुछ ही वर्षों में परलोक सिधार गये। अतः महाराजश्री ने अपने चतुर्थ पुत्र श्री दाऊजी को प्रभु श्रीनाथजी के श्रीचरणों में डाल दिया। करुणावरुणालय प्रभु श्रीनाथजी ने तुरन्त ही अपना दायां श्रीहस्त दाऊजी के ऊपर रख दिया और अभय वर दिया। इसके साथ ही पुनः नाथद्वारा कूच करने की आज्ञा प्रदान की। इस प्रकार करीब एक वर्ष उदयपुर और पांच वर्ष घसियार वास करने के पश्चात् वि.सं. 1964 में प्रभु श्रीनाथजी दलबल सहित अनेक भक्तों को साथ लेकर युद्ध भूमि हल्दीघाटी के अरण्य मार्ग को पार कर खमनौर होते हुए नाथद्वारा आ पहुंचे। लेकिन श्री विट्ठलनाथजी प्रभु श्रीनाथजी संग नहीं पधारे। वे उदयपुर से सीधे वि.सं. 1858 में कोटा पधार गये। जब गो. ति. श्री दाऊजी महाराज ने वि.सं. 1878 में प्रभु श्रीनाथजी में द्वितीय सप्तस्वरूपोत्सव किया तब कोटा से पुनः श्री विट्ठलेशरायजी नाथद्वारा आये और अपने मन्दिर में बिराजे, तभी से अभी तक आप इस नगर को पावन किये हुए है। प्रभु श्रीनाथजी पुनः छः वर्षों बाद नाथद्वारा पधारे, उस समय तक इस नगर की ऐसी दुर्दशा हो गई कि लोग अपने पुराने मकानों तक को नहीं पहचान सके। तिलकायत महाराज का भवन मात्र भग्नावशेष रह गया। परन्तु ऐसे समय में प्रभु श्रीनाथजी की जीर्ण–शीर्ण मन्दिर सभी भक्तों के लिए परम वन्दनीय था। जिस दिन से प्रभु श्रीनाथजी ने पुनः पदार्पण किया, उसी दिन से अनवरत इस वसुधा पर सुधा वर्षण होने लगा है।

महाराणा भीमसिंह ने जब देखा कि प्रभु श्रीनाथजी आनन्दपूर्वक नाथद्वारा पधार गये हैं और पुनः उसी मन्दिर में बिराजे हैं, उनका हृदय प्रसन्नता के मारे बाँसों उछल पड़ा। क्योंकि प्रभु के घसियार वास करने से महाराणा काफी चिन्तित हो गये थे। अतः शुभवेला देख महाराणा भीमसिंह नाथद्वारा आये और प्रभु श्रीनाथजी के दर्शन कर गदगद् हो गये। इसके साथ ही श्रीजी में अनेक मनोरथ करवाकर सालोर, घसियार, व्याल, चेनपुरिया, चरबोटिया, भोजपुरिया, टांटोल, बाँसोल, होली, जीरण, देपुर छोटा, सिसोदिया, ब्राह्मणों का खेड़ा तथा मांडलगढ़ का मन्दिर आदि गांव प्रभु को भेंट कर प्रभु श्री गोवर्धनधरण श्रीनाथजी के प्रति अपनी अटूट श्रद्धाभक्ति का परिचय दिया।

विश्वास स्वरूपम शिव प्रतिमा - 369 फीट ऊँची

नाथद्वारा एवं इसके आसपास के क्षेत्र का कण-कण अपने शौर्य, बलिदान एवं भक्ति के साथ आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत के कारण देश-विदेश के लोगों को आकर्षित करता रहा है जिसमें अब एक और नया अध्याय जुड़ गया है। श्रीनाथजी की पावन धरा पर विश्व की सबसे ऊँची 369 फीट की शिव प्रतिमा तदपदम् उपवन संस्थान के अन्तर्गत निर्मित "विश्वास स्वरूपम" के लोकार्पण महोत्सव शीतल सन्त मुरारी बापू द्वारा 29 अक्टूबर से 6 नवम्बर, 2022 तक आयोजित भव्य रामकथा के दौरान किया गया है। यहाँ 21 फीट की नन्दी की प्रतिमा के तीन पैर जमीन पर तथा एक पैर हवा में इसकी प्रसन्नचित्त मुद्रा को बयां करता है। नंदी को भगवान शिव के धाम का द्वारपाल भी माना गया है।

नाथद्वारा की गणेश टेकरी पर बनी यह शिव प्रतिमा संत कृपा सनातन संस्थान के ट्रस्टी श्री मदन पालीवाल के ड्रीम प्रोजेक्ट का हिस्सा रही है। 51 बीघा की पहाड़ी पर बनी इस प्रतिमा में भगवान शिव ध्यान और अल्हड़ मुद्रा में विराजमान है। ये प्रतिमा करीब 20 कि.मी. दूर से ही नजर आने लग जाती है। रात में भी इस प्रतिमा के भव्य स्वरूप को परिलक्षित करने हेतु विशेष प्रकाश व्यवस्था की गई है। विश्व की सबसे ऊँची इस शिव मूर्ति की अपनी एक अलग ही विशेषता है। इसमें लिफ्ट, सीढ़ियाँ एवं श्रद्धालुओं के लिए हॉल बनाया गया है। प्रतिमा के सबसे ऊपरी हिस्से के लिए 4 लिफ्ट और तीन सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

इस प्रतिमा के निर्माण में 10 वर्ष के समय के साथ 3000 टन स्टील और लोहा, 2.5 लाख क्यूबिक टन कंकरीट, रेत व सीमेन्ट का उपयोग हुआ है। प्रतिमा का निर्माण 250 वर्षों की स्थिरता को ध्यान रखते हुए किया गया है। 250 कि.मी. गति से चलने वाली हवाएँ भी इस मूर्ति को प्रभावित नहीं कर सकेगी। इस प्रतिमा की डिजाइन का विंड टनल टेस्ट ऑस्ट्रेलिया में हुआ है। वर्षा और धूप से बचाने के लिए इस पर जिंक की कोटिंग कर कॉपर रंग दिया गया है। शिव प्रतिमा पर विशेष रूप से लाइट एण्ड साउण्ड के थ्री-डी इफेक्ट से शिव स्तुति का प्रसारण होता है। इस प्रतिमा के सुरक्षा मानकों का पूर्ण ध्यान रखने के साथ फायर सेफ्टी हेतु पानी के टेंक एवं अग्निशमन के साधनों की भरपूर उपलब्धता सुनिश्चित की गई हैं।

पर्यटकों के लिए गोल्फ कोर्ट की सुविधा भी उपलब्ध करवाई गई है। प्रतिमा स्थल पर पर्यटकों की सुविधा और मनोरंजन के लिए 185 फीट ऊँचाई के बंजी जम्पिंग का निर्माण किया गया है। यह ऋषिकेश के बाद दूसरी सबसे बड़ी बंजी जम्पिंग होगी। साथ ही फूडकोर्ट, गेम जोन, जिपलाइन, गो कॉटेज, एडवेंचर पार्क, जंगल कैफे आदि का निर्माण भी किया गया हैं।

इस प्रतिमा के पार्किंग स्थल से 200 मीटर की दूरी पर मुख्य प्रवेश द्वार बनाया गया है। अर्द्ध चन्द्राकार में बने मुख्य प्रवेश द्वार के दोनों ओर भगवान की प्रतिमाओं के साथ इसके मध्य एक शिवलिंग भी बनाया गया है। भगवान शिव की प्रतिमा के सामने एक कृत्रिम तालाब का निर्माण कर इसके ऊपर हरिहर सेतु बनाया गया है। यहाँ के 15000 वर्गफीट क्षेत्र में म्यूजिकल फाउण्टेन विकसित कर इसके पास ही स्टेडियमनुमा सीढ़ियों का निर्माण भी किया गया है ताकि पर्यटक यहां पर आराम से बैठकर म्यूजिकल फाउन्टेन का आनन्द ले सके। इसके अतिरिक्त यहां 10 मीटर का ग्लास वॉक-वे भी बनाया गया है। इस परिसर में एक संगम स्थल भी विकसित किया गया है, जहां पांच रास्तों का मिलन होता है। यहां पर्यटक नदी एवं शिव प्रतिमा के साथ सेल्फी भी ले सकते हैं। इस प्रतिमा में 270 से 280 फीट ऊँचाई पर एक व्यूइंग गैलेरी बनाई गई है, जहां से अरावली की पहाड़ियों के आसपास के नजारों का भरपूर आनन्द लिया जा सकता है।

हरी-भरी वादियों के मध्य इस भव्य शिव प्रतिमा स्थल के निर्माण से नाथद्वारा के पर्यटन उद्योग को भी नई गति मिलेगी। पर्यटकों के लिए यह बेहद आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

विश्वास स्वरूपम शिव प्रतिमा

- 369 फीट ऊँची विश्व की सबसे बड़ी शिव मूर्ति।
- 4 लिफ्ट और 3 सीढ़ियाँ प्रतिमा के अन्दर सबसे ऊपरी हिस्से में जाने के लिए।
- 10 वर्ष लगे इस प्रतिमा को बनाने में।
- 3000 टन स्टील और लोहे का उपयोग।
- 2.5 लाख क्यूबिक टन कंकरीट, रेत व सीमेन्ट का उपयोग।
- 250 वर्षों की स्थिरता के मद्देनजर प्रतिमा का निर्माण।
- 250 कि.मी. रफ्तार से चलती हवाएँ भी मूर्ति को हिला नहीं सकेगी।
- 51 बीघा भूमि पर बनी प्रतिमा में भगवान शिव ध्यान एवं अल्हड़ मुद्रा में विराजित।
- 20 कि.मी. दूर से ही नजर आती है शिव प्रतिमा, रात्रि में विशिष्ट रोशनी की व्यवस्था।
- प्रतिमा की डिजाइन का विंड टनल टेस्ट ऑस्ट्रेलिया में हुआ।
- वर्षा और धूप से बचाने हेतु मूर्ति पर जिंक की कोटिंग के साथ कॉपर कलर।

श्री साँवलिया सेठ मन्दिर, मण्डफिया : उदयपुर एवं चित्तौड़गढ़ से क्रमशः 65 एवं 40 कि.मी. दूर उदयपुर–चित्तौड़गढ़ मार्ग पर स्थित अपनी दिव्यता एवं चैतन्यता के लिए प्रसिद्ध ''साँवलिया सेठ'' का मन्दिर है, जहाँ सदैव देश–विदेश के अनन्य भक्तों की भीड़ उमड़ती दृष्टिगोचर होती है। इतनी बड़ी संख्या में लोगों का नियमित रूप से दर्शनों के लिए आकर करोड़ों का चढ़ावा (विदेशी मुद्रा, सोना, चाँदी, जवाहरात, रोकड़ रुपयों के साथ) चढ़ाना किसी भी चमत्कार से कम नहीं है।

किंवदन्ती है कि वर्ष 1840 में भोलाराम गुर्जर नाम के एक दूधवाले ने भादसोड़ा–बंगुड़ के चापर गांव के नीचे तीन दिव्य मूर्तियों का सपना देखा था। जब ग्रामीणों ने इस जगह की खुदाई शुरू की तो उन्हें तीन मूर्तियाँ मिली, ठीक वैसी ही जैसे भोलाराम ने सपने में देखी थी। वे भगवान कृष्ण की मूर्तियां थी। वे सभी सुन्दर और मंत्रमुग्ध कर देने वाली थी। एक मूर्ति को मंडफिया, एक को भादसोड़ा लाया गया और तीसरी उसी स्थान यानी चापर पर ही रखी गई, जहां यह पाई गई थी। तीनों स्थानों पर मन्दिर बन गए। ये तीनों मन्दिर 5 कि.मी. की दूरी के भीतर एक–दूसरे के करीब स्थित है। सांवलिया जी के तीनों मन्दिर प्रसिद्ध हुए और प्रतिदिन बड़ी संख्या में भक्तगण उनके दर्शन करने आते हैं।

वीरता और भक्ति का ऐतिहासिक शहर मंडफिया अब श्री सांवलिया धाम (भगवान कृष्ण का निवास) के रूप में जाना जाने लगा। इस मन्दिर में बाँसुरी बजाते हुए भगवान श्री कृष्ण की काले पत्थर की मूर्ति है। वैष्णव समुदाय के अनुयायियों के लिए श्रीनाथजी मन्दिर, नाथद्वारा के बाद यह मन्दिर दूसरे स्थान पर है।

सांवलिया सेठ मन्दिर दर्शन समय

मन्दिर खुलने का समय	:	प्रातः 5.30
सुबह का समय	:	प्रातः 5.30 से अपराह्न 12.00 बजे
मन्दिर बंद होने का समय	:	अपराह्न 12.00 से दोपहर 2.30 बजे
सायं का समय	:	दोपहर 2.30 से रात्रि 11.00 बजे

सांवलिया सेठ मन्दिर आरती का समय

मंगला आरती	:	प्रातः 5.30 बजे
विश्राम का समय	:	अपराह्न 12.00 से दोपहर 2.30 बजे
आरती, फलाहार प्रसाद	:	दोपहर 2.30 बजे
संध्या पूजा	:	रात्रि 8.00 से 9.15 बजे
भजन और कीर्तन	:	रात्रि 9.15 से 11.00 बजे

एक अन्य मान्यता के अनुसार संत महात्माओं की जमात में भक्तिमति मीरां बाई जिन मूर्तियों की पूजा करती थी, ये वहीं गिरधर गोपाल है, जिन्हें वर्तमान में भादसोड़ा, मंडफिया तथा तीसरी को प्राकट्य स्थल पर स्थापित किया गया। मंडफिया गांव में आज एक भव्य मन्दिर निर्मित हो गया है, जो अपने आप में एक बेजोड़ दर्शनीय स्थल है। सांवलिया सेठ की यह तीर्थ स्थली लगभग 450 वर्ष पुरानी है।

भगवान श्री कृष्ण ने अपने एक अनन्य भक्त की लड़की के विवाह पर सेठ बनकर जाना तथा ''नानीबाई का मायरा'' भरने के उपरान्त जो प्रसिद्धि पाई, वह सभी की जुबान पर सहज ही आती है। ऐसा माना जाता है कि श्री कृष्ण के भक्त अपनी आय (नौकरी, व्यवसाय, खेती आदि) का एक निश्चित भाग नियमित रूप से यहां आकर चढ़ाते हैं तथा उन्हें उसका कई गुणा मिलता है। तभी तो करोड़ों का चढ़ावा भेंट पात्र से निकलता है। यहाँ पर दर्शनों के लिए भक्तगण बार–बार आते हैं। व्यवसाय में सफल भागीदारिता ने ही तो उन्हें सेठ का दर्जा प्रदान किया है। ऐसा माना जाता है कि अफीम की खेती एवं व्यवसाय करने वाले भी इन्हें अपने लाभ का भागीदार बनाते हैं। श्री सांवलिया सेठ के दरबार में दर्शन करने एवं दिल से मांगी गई हर मनोकामना पूर्ण होती है।

मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है और मुख्य गर्भगृह पश्चिम में स्थित है। मुख्य गर्भगृह के सामने एक भव्य हॉल है जिसकी छतों और स्तम्भों पर बारीक नक्काशी की गई है और भगवान कृष्ण और राधा की छवियों से सजाया गया है। उत्तरी गलियारा मुख्य मन्दिर तक निर्मित है और गलियारे के साथ छोटे हॉल बनाये गये हैं। यहां यात्रिगण विश्राम कर सकते हैं। भव्य मुख्य द्वार विद्यमान है। पूरा मन्दिर चारदीवारी वाला परिसर है। इसकी वास्तुकला और कारीगरी शानदार है, विशेष रूप से तोरण और इस दो मंजिला मन्दिर की नक्काशीदार छत देखने योग्य है।

मन्दिर के पुजारी बताते हैं कि एक कबूतर यदा–कदा आरती के समय यहां पर आता है और चरणामृत पान कर वापस चला जाता है। मन्दिर में चढ़ावे के एक भाग का निकटवर्ती 16 गांवों में शिक्षा, चिकित्सा, मूलभूत सुविधाओं को विकसित करने के साथ मानव सेवा के अन्य कार्यों पर व्यय किया जाता है। भक्तजन एक बार किसी से महिमा व चमत्कारों की कथा सुनकर दर्शन करने आते हैं फिर वे स्वयं तो बार–बार आते ही हैं, वे कई अन्य परिवारजनों को भी दर्शनार्थ आने की प्रेरणा प्रदान करने लगते हैं। इस मन्दिर में सबसे महत्वपूर्ण त्यौहार ''जन्माष्टमी'' एवं अन्य प्रसिद्ध हिन्दू त्यौहार उत्साहपूर्वक मनाये जाते हैं।

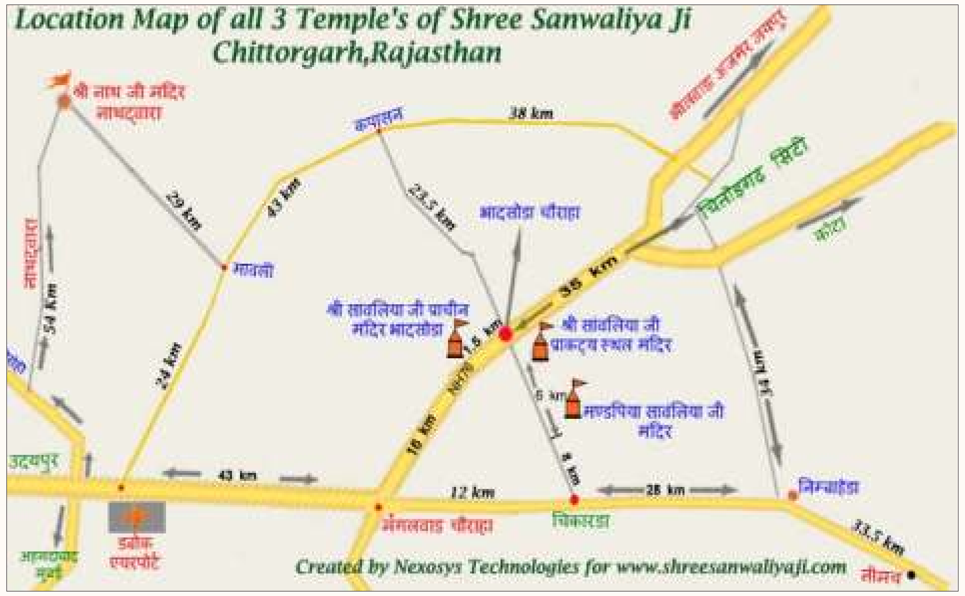

सांवरिया सेठ का भव्य विशाल मन्दिर परिसर

श्री चारभुजाजी मन्दिर : यह एक ऐतिहासिक एवं प्राचीन हिन्दु मन्दिर है जो राजस्थान के राजसमन्द जिले की कुम्भलगढ़ तहसील के गढ़बोर गांव स्थित है। यह गोमती नदी के किनारे पर उदयपुर से 112, राजसमन्द से 43 और कुम्भलगढ़ से 32 कि.मी. की दूरी पर स्थित मेवाड़ का जाना–माना तीर्थ स्थल है, जहाँ चारभुजा जी की बड़ी ही पौराणिक एवं चमत्कारिक प्रतिमा है। मेवाड़ का यह मन्दिर सांवलियाजी, केशरियानाथजी, एकलिंगजी, श्रीनाथजी, द्वारिकाधीशजी मन्दिर की भांति ही सुप्रसिद्ध हैं। चारभुजा मन्दिर भगवान विष्णु को समर्पित एक प्रसिद्ध मन्दिर है। चारभुजानाथ चार हाथों के कारण भगवान विष्णु का दूसरा नाम है। मन्दिर में भगवान की मूर्ति 85 से.मी. ऊँची है, जिसमें चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और कमल का फूल है। गदा गतिशील ऊर्जा और कौशल का प्रतीक है। दूसरे आंगन में गरुड़ जी की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर का प्रवेश द्वार दोनों ओर काले पत्थर के हाथियों से सुसज्जित है।

चारभुजा जी मन्दिर का निर्माण राजा गंग सिंह ने करवाया था। मन्दिर में स्थित शिलालेखों के अनुसार सन् 1444 ई. (वि.सं. 1501) में ठाकुर महिपाल एवं उनके पुत्र रावत लक्ष्मण ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। उसके अनुसार पूर्व में गढ़बोर नामक गांव को बद्री के नाम से जाना जाकर मन्दिर के अन्दर की मूर्ति को बद्रीनाथ माना जाता था। मन्दिर दर्पण, चूने के मोर्टार और कंचों से निर्मित है। मन्दिर का मुख्य द्वार सोने से तथा बाहरी द्वार चांदी से बना हुआ है। इसका नामकरण 'गढ' यानी 'किले' से है एवं इसका निर्माण 'बोर' राजपूतों ने करवाया, इसलिए यह 'गढ़बोर' कहलाता है। इसमें भगवान चारभुजानाथजी का मन्दिर स्थित है, इसलिए यह चारभुजा के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस मन्दिर का इतिहास तब का है, जब गढ़बोर के तत्कालीन को चारभुजानाथ ने स्वप्न में आकर आदेश दिया कि एक मूर्ति पानी में है, उसे निकाल कर मूर्ति को मन्दिर बनाकर स्थापित करो। राजा ने ऐसा ही किया। उन्होंने जल से प्राप्त मूर्ति को मन्दिर में स्थापित करवा दिया। कहा जाता है कि मुगलों के अत्याचारों को देखते हुए मूर्ति को कई बार जलमग्न रखा गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पांडवों ने अपनी अंतिम यात्रा हिमालय के प्रस्थान से पूर्व इस मूर्ति के दर्शन किये एवं मूर्ति को जलमग्न करके चले गए थे ताकि इसकी पवित्रता को कोई खण्डित नहीं कर सके।

कुछ का मानना है कि पांडवों ने प्रतिमा को जलमग्न कर दिया और यहां से चले गए। इसके बाद यह प्रतिमा राजा गंगसिंह को मिली तो उन्होंने भी प्रतिमा की पूजा की और कुछ वर्षों बाद इसे पुनः जलमग्न कर दिया। इसके उपरान्त सूरागुर्जर को स्वप्न में मूर्ति के पानी में होने की बात कही, जिस पर सूरागुर्जर ने मन्दिर को पुनर्स्थापित कर इसकी पूजा–अर्चना प्रारम्भ की। तभी से इस मन्दिर की पूजा–सेवा गुर्जर समुदाय के पास है। यहां गुर्जर समाज के एक हजार परिवार है जिनमें सेवा–पूजा औसरे के अनुसार बंटी हुई है। गढ़बोर में चारभुजानाथ जी का प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की जलझूलनी एकादशी को विशाल मेला लगता है। इस दिन गुलाल–अबीर उड़ाते हुए श्रद्धालुओं द्वारा कंधों पर सोने और चांदी की पालकियों में प्रभु की बाल प्रतिमा को विराजित कर बड़ी ही मनमोहक सवारी निकाली जाती है। चारभुजा गढ़बोर में प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु दर्शन करने आते हैं। यहां पर आने वाले भक्तों की हर मनोकामना पूर्ण होती है। इसी प्रकार होली पर भी रंगों का त्यौहार मनाया जाता है। अन्य त्यौहार नवरात्रि, जन्माष्टमी और रामनवमी भी यहां धूमधाम से मनाई जाती है। नवरात्रों में गरबा नृत्य और अन्य सांस्कृतिक उत्सव बड़े उत्साह के साथ आयोजित किये जाते हैं।

शनिदेव जी महाराज का मन्दिर : भगवान शनिदेव को न्याय का देवता कहा जाता है। सूर्य पुत्र शनिदेव को सभी ग्रहों में सबसे प्रभावशाली माना जाता है। वे मनुष्य को उसके कर्मों के आधार पर न्याय देते हैं। साथ ही शनि की वक्र दृष्टि से भी हर इंसान बचना चाहता है, इसलिए लोग शनिदेव जी की पूजा के दौरान विशेष सावधानी बरतते हैं। शनिदेव का यह मन्दिर आलीगांव में स्थित है, जिसे शनि महाराज के नाम से भी जाना जाता है। यह भादसौड़ा चौराहा से 8 कि.मी. दूर स्थित है। इसे चमत्कारी मन्दिर भी कहा जाता है। यहां शनिदेव को चढ़ाया जाने वाला तेल एक प्राकृतिक कुण्ड में इकट्ठा होता है। इस तेल का उपयोग चर्म रोगों को ठीक करने के लिए किया जाता है। प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार कई बार इस कुण्ड के तेल को व्यावसायिक उपयोग के लिए निकाला गया तो उसके चमत्कारी गुण समाप्त हो गए एवं मात्र तरल पानी में परिवर्तित हो गया।

एक और किंवदन्ती के अनुसार शनिदेव की यह मूर्ति मेवाड़ के महाराणा स्व. श्री उदयसिंह जी अपने हाथी की ओदी पर रखकर उदयपुर की ओर ले जा रहे थे। उक्त स्थान पर पहुंचने पर शनिदेव की मूर्ति हाथी की ओदी से इस स्थान से गायब हो गई, जो काफी ढूँढने पर भी नहीं मिली। कालान्तर में काफी वर्षों के बाद ऊचनार खुर्द निवासी जोतमल जाट के खेत में एक बैर की झाड़ी के नीचे शनिदेव की मूर्ति का कुछ हिस्सा बाहर प्रकट हुआ, जहाँ उनकी पूजा–अर्चना, सेवा, तेल प्रसाद, बाल–भोग आरम्भ किया गया। उस समय यह स्थान काला भेरू के नाम से जाना जाता था। विगत शताब्दी में कुछ लोगों ने मूर्ति के जमीन में धँसे हुए हिस्से को बाहर निकालने का प्रयास किया लेकिन वे इसमें सफल

नहीं हो सके। उसी समय वहाँ एक संत महात्मा अचानक आ पहुँचे, तो लोगों ने उनके साथ मिलकर उनके कहे अनुसार मूर्ति को ऊपर की ओर खींचा, तो उसका अधिकांश हिस्सा बाहर निकल आया और कुछ अन्दर ही रह गया। इसके बाद वह संत महात्मा वहां से कुछ दूरी पर जाकर गायब हो गये। लोगों ने इसे मूर्ति का चमत्कार माना। इसके बाद से ही यह स्थान शनि महाराज के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस स्थान की पूजा–अर्चना सर्वप्रथम स्व. महाराज श्री रामगिरीजी रेबारी ने प्रारम्भ की। श्री रामगिरीजी रेबारी ने मुख्य पुजारी के रूप में शनिदेव की काफी वर्षों तक सेवा–पूजा की। उनका देवलोकगमन होने के बाद उनकी समाधि स्थल के लिए नींव खोदने पर प्राकृतिक तेल निकला, जिसको कुण्ड बनाकर रखा गया और उसके पास में ही उनका समाधि स्थल बनाया गया। यहाँ प्रसादी के रूप में चूरमा–बाटी बनता है तथा इसका बालभोग लगने से पहले तक चींटियाँ भी शक्कर निर्मित चूरमें को खाना तो दूर छूती तक भी नहीं हैं।

यह मेवाड़ क्षेत्र के लोगों का एक प्रमुख धार्मिक दर्शनीय स्थल है। नवरात्रि के पर्व को यहां पर नौ दिनों तक धूमधाम से मनाया जाता है तथा मेवाड़ क्षेत्र के श्रद्धालुगण के साथ दूर–दराज इलाकों से भी यहां पर भारी संख्या में लोग शनिदेव जी महाराज के दर्शनार्थ आते हैं।

प्राकृतिक तेल कुण्ड

संत श्री रामगिरी जी महाराज की समाधि स्थल

बेणेश्वर धाम (डूंगरपुर) : इस पवित्र स्थल पर वर्ष 1453 में डूंगरपुर के महारावल आशंकर जी द्वारा एक सुन्दर मन्दिर बनाया गया था। यह मन्दिर त्रि–संगम माही, सोम एवं जाखम नदियों के डेल्टा के पास स्थित है। डेल्टा के लिए बागड़ी भाषा में शब्द '**वेणे**' और भगवान के लिए '**ईश्वर**' के नाम पर इसका नाम '**वेणेश्वर**' रखा गया। दूसरे मत के अनुसार '**वेणेश्वर**' का अर्थ है ''**वेणी–आवृतमाला**''। नदी की वेणी में आवृत महेश्वर ही वेणेश्वर महादेव है जो डूंगरपुर में शिव मन्दिर में स्थित शिवलिंग से लिया गया है। इस मन्दिर से जुड़ी एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार एक गाय शिवलिंग के पास जाकर उसमें अपना दूध चढ़ाती थी। दूध चढ़ाते समय पिछले पैर से चोट लगने से लिंग पाँच टुकड़ों में विभक्त हो गया। तभी से डूंगरपुर में इस खण्डित शिवलिंग की पूजा की जा रही है एवं इसका एक टुकड़ा वेणेश्वर महादेव के रूप में पूजनीय है।

वेणेश्वर धाम के त्रि–संगम स्थल को आदिवासी अपने मृतकों की राख (फूल) को विसर्जित करने के लिए सबसे पवित्र स्थल मानते हैं, जैसे काशी, प्रयाग, हरिद्वार, पुष्कर, मातृकुण्डिया आदि। वे राख का तर्पण करने में विश्वास करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनको मोक्ष प्राप्त होता है। पूर्णिमा पर सुबह से विभिन्न दिशाओं से आने वाले हजारों आदिवासी इस संगम पर एकत्रित होते हैं। पुरुषों की राख को सफेद कपड़े में लपेटा जाता है जबकि महिलाओं की राख को एक लाल रंग के कपड़े में और फिर मिट्टी के बर्तनों में रखा जाता है। आदिवासी अपने गुरु की सहायता से नदियों के तट पर विस्तृत अनुष्ठान करते हैं। फिर वे अपने परिवार के साथ पानी में प्रवेश कर खड़े होते हैं और उन मृतकों को अंतिम श्रद्धांजलि देते हैं

बेणेश्वर धाम : तीन नदियों माही, सोम एवं जाखम के संगम स्थल का अलौकिक स्वरूप

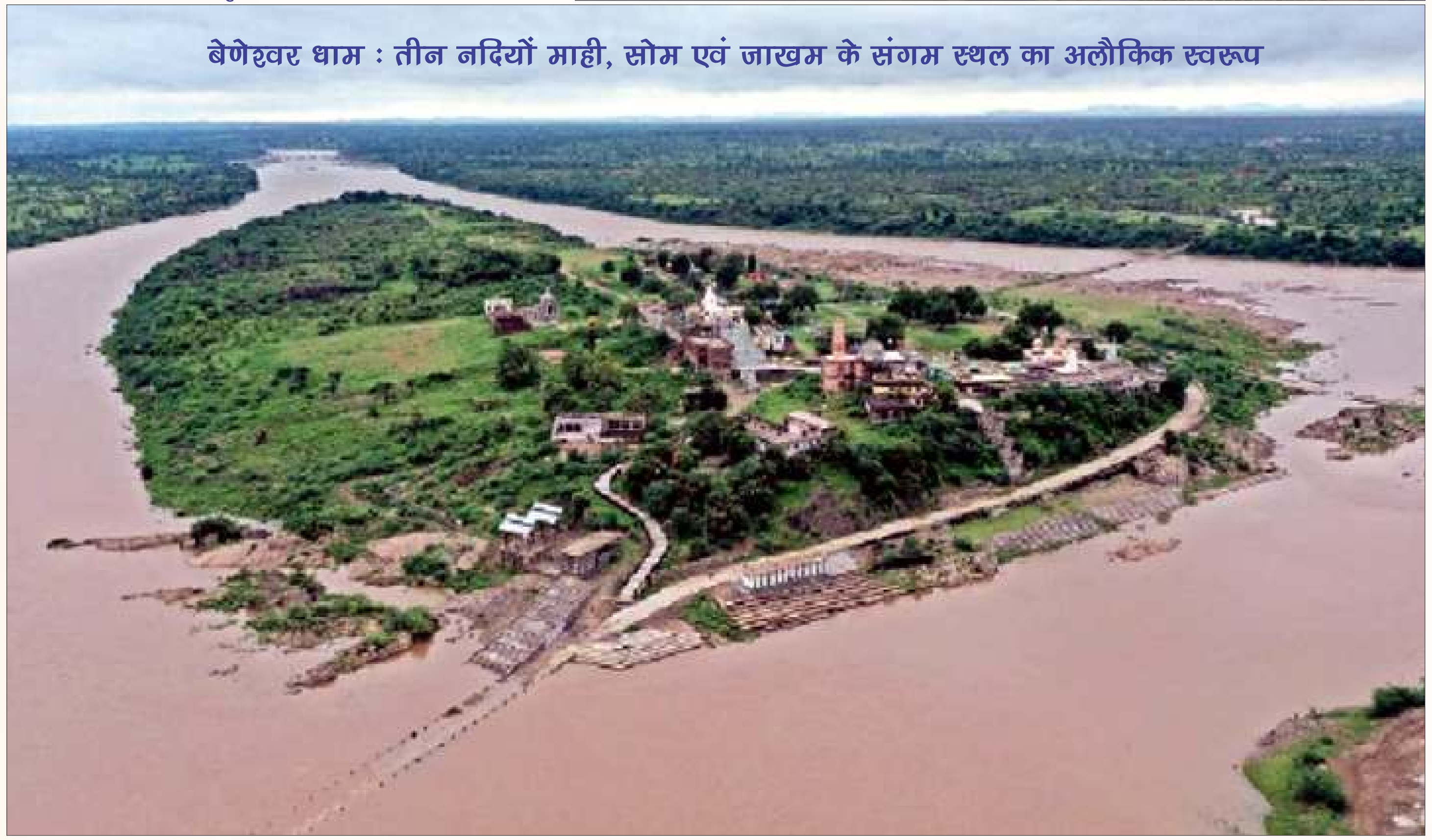

जिन्होंने पिछले वर्ष के दौरान उन्हें खो दिया था। स्नान के बाद लम्बी सीढ़ियाँ चढ़कर वे वेणेश्वर शिव मन्दिर पहुँचकर श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हैं। वेणेश्वर मेला शिवरात्रि (जनवरी–फरवरी) के दौरान माघ शुक्ल एकादशी से माघ शुक्ल पूर्णिमा तक माही, सोम व जाखम नदियों द्वारा गठित एक छोटे से टापू पर 500 से अधिक वर्षों के इतिहास के साथ आयोजित किया जाता रहा है। यह डूंगरपुर से 45 कि.मी., उदयपुर से 123 कि.मी. तथा बांसवाड़ा से 53 कि.मी. की दूरी पर एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित भगवान शिव का अत्यधिक पूजनीय मन्दिर है। वेणेश्वर मेला अपने वर्तमान स्वरूप में वास्तव में दो मेलों का विलय है, एक जो वेणेश्वर महादेव (भगवान शिव) को समर्पित और दूसरा मेला जनकुंवारी मावजी बहू द्वारा निर्मित भगवान विष्णु मन्दिर के निर्माण उपरान्त प्रारम्भ हुआ। मावजी एक अत्यधिक पूजनीय संत थे, जिनको भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। वे वेणेश्वर महादेव के साथ–साथ मावजी का भी सम्मान करते हैं। वेणेश्वर महादेव की पूजा दिन में दो बार की जाती है। दर्शन सुबह 4.30 बजे शुरू होता है जब शिवलिंग को पानी से धोकर केसर चढ़ाया जाता है। शाम को पांच ज्वालाओं वाली भस्म आरती होती है। दर्शन रात 11.00 बजे तक खुला रहता है। भक्तगण फूल, घी, नारियल, प्रसाद आदि चढ़ा सकते हैं। मन्दिर के पुजारी के रूप में एक भील मीणा को नियुक्त किया गया था। बिना किसी जाति और पंथ के विचार के सभी को यहाँ पूजा करने की अनुमति थी। तीर्थ यात्री भगवान विष्णु मन्दिर, राधा–कृष्ण के हरि मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर, पंचमुखी मन्दिर, गायत्री मन्दिर, शबरी मन्दिर, राजा बलि मन्दिर, भगवान निष्कलंक मन्दिर, राम झरिया आश्रम, वाल्मिकी मन्दिर, हनुमान मन्दिर आदि के दर्शन के लिए भी जाते हैं।

वेणेश्वर मेला राजस्थान के डूंगरपुर जिले का प्रसिद्ध मेला है जिसमें आदिवासी (भील) बड़ी संख्या में भाग लेते हैं। यह मेला उनके रीति–रिवाजों और परम्पराओं को प्रदर्शित करता है। मेले का बहुत अधिक धार्मिक महत्व है और इसे बड़े उत्साह के साथ आयोजित किया जाता है इसे आदिवासियों के लिए कुंभ मेला भी कहा जाता है। मेले में अधिकांश लोग राजस्थान के डूंगरपुर, उदयपुर और बांसवाड़ा जिले के होते हैं। इसके अतिरिक्त यह मेला पड़ोसी राज्यों जैसे–मध्यप्रदेश और गुजरात के आदिवासियों को भी आकर्षित करता है। मावजी का चौपड़ा वेणेश्वर में प्रमुख त्यौहारों के दौरान जनता के लिए एक मार्गदर्शक आधार है।

साबला कस्बे के मनिंदा मठ के पीठाधीश्वर, जो संत मावजी के वंशज है, जुलूस में पालकी से लगभग 5 कि.मी. की दूरी तय करके शोभायात्रा में वेणेश्वर आते हैं। इस शोभायात्रा में हजारों की संख्या में श्रद्धालु शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त जुलूस में पालकी में घोड़े पर सवार मावजी की 16 से.मी. चांदी की मूर्ति बड़ी श्रद्धा के साथ लाई जाती है। वेणेश्वर धाम में महान् संत मावजी महाराज ने लम्बे समय तक तपस्या की थी। उनका जन्म डूंगरपुर जिले के साबला गांव में हुआ था। वे केशरबाई और दलमजी के पुत्र थे। बचपन से ही लोग उनके संत स्वभाव और चमत्कारिता के कारण उनका सम्मान करते थे। उन्होंने 12 वर्ष की उम्र में घर छोड़ दिया और साबला के पास सुनैया पहाड़ियों की गुफा में बारह साल तक तपस्या की। फिर वे वेणेश्वर में प्रकट हुए और माघ शुक्ल एकादशी को दर्शन किये। उनकी याद में वेणेश्वर मेला लगता है। अपने दिव्य कार्यों के कारण उन्होंने खुद को एक महान् संत के रूप में स्थापित किया और भगवान विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। मावजी ने कई ग्रंथ लिखे, जिनमें ज्ञान रथमाला, गुरु शिष्य संवाद, प्रेम तंत्र, प्रेम गीता, श्री भागवत महापुराण, समरस अमृत सागर शामिल हैं। ये सभी गोविन्द गीत, कृष्ण लीला और रास लीला से भरपूर है। उन्होंने 776 पृष्ठों में पांच चौपड़े भी लिखे जो अतीत, वर्तमान और भविष्य का वर्णन करते हैं। ये देवनागरी लिपि में लिखे गये हैं और इनकी भाषा हिन्दी, वागड़ी और गुजराती का मिश्रण है। मावजी ने ऐसे समय में सामाजिक समानता के लिए समाज की एक विधवा से विवाह किया। मावजी और उनकी शिक्षाओं से जुड़ी किंवदन्तियों के बारे में बड़े उत्साह के साथ भजन गाए और सुने जाते हैं।

वेणेश्वर मेला आदिवासी भील समुदाय का देवत्व दिव्यतों के मूल भाव को परिभाषित करता है। मेले में भाग लेने के लिए आदिवासी समुदायों के समूहों को आमन्त्रित किया जाता है। वे हर रात अलाव के आसपास बैठकर ऊँचे स्वरों में पारम्परिक लोकगीत गाते हैं। मेले में भारतीय और विदेशी पर्यटक समृद्ध लोक संस्कृति को देखने का लुत्फ उठाते हैं और कुछ गतिविधियों में भाग लेना भी पसन्द करते हैं। मेले में सरकार की लाभकारी योजनाओं, स्वास्थ्य विभाग के जागरूकता कार्यक्रमों के बारे में प्रदर्शनी आयोजित की जाती है जिसका श्रद्धालुगण पूरा लाभ उठाते हैं। भक्तगण जनजातीय क्षेत्र विकास एजेन्सी द्वारा आयोजित विभिन्न खेलों में भी भाग लेते हैं। मेले में सांस्कृतिक कार्यक्रम, लोक नृत्य, जादूगर शो, पशु व एरोबेटिक शो और झूले आदि कुछ अन्य आकर्षण भी होते हैं। मेले में प्लास्टिक आइटम, कॉस्मेटिक आइटम, चूड़ियाँ, जूते, कपड़े, कृत्रिम गहने, दरांती, कुल्हाड़ी आदि चीजों की खरीददारी करने का भी अवसर मिलता है। भाले, तलवार, धनुष व तीरों की इस मेले में बड़ी मांग रहती है।

त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर (बांसवाड़ा) : यह शक्तिपीठ के रूप में बाँसवाड़ा का एक प्रमुख मन्दिर है जो बाँसवाड़ा से लगभग 14 कि.मी. एवं तलवाड़ा से 5 कि.मी. की दूरी पर ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं के नीचे सघन हरियाली की गोद में 'उमराई' के छोटे से गांव माताबाड़ी में प्रतिष्ठित है। त्रिपुरा सुन्दरी आस्था का एक ऐसा धाम है जहां पर सदैव भक्तों का सैलाब लगा रहता है। यहां की फिज़ाओं में सुकून है, यहाँ इत्मीनान है, यहाँ पापों का हरण होता है।

त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर का भव्य परिसर

कहा जाता है कि मन्दिर के आसपास गढ़पोली नामक एक प्राचीन महानगर था, जहाँ पहले कभी तीन दुर्ग हुआ करते थे। शक्तिपुरी, शिवपुरी तथा विष्णुपुरी नामक इन तीन पुरियों में स्थित होने के कारण देवी माँ का नाम ''**त्रिपुरा सुन्दरी**'' पड़ा। वागड़ क्षेत्र में इसे ''**तरतई माता**'' भी कहा जाता है जिसका अर्थ '**तुरन्त फल देने वाली देवी**'' है। इस शक्तिपीठ के प्रति निर्धन से अमीर तक सिर्फ स्थानीय श्रद्धालु ही नहीं बल्कि विशिष्ट से अति विशिष्टजनों की आस्थाएँ भी जुड़ी हुई हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात सहित पूरे देश के कई राजनीतिक दिग्गज अपनी मन्नतों की झोली यहाँ पर फैलाते हैं और देवी माँ से आशीर्वाद प्राप्त कर धन्य होते हैं। उमराई गांव में स्थित माँ त्रिपुरा सुन्दरी का यह मन्दिर अति प्राचीन है। यह स्थान कितना प्राचीन है, यह प्रामाणिक नहीं है। एक मान्यता के अनुसार देवी माँ के पीठ का अस्तित्व तीसरी सदी से पूर्व का माना गया है। गुजरात, मालवा और मारवाड़ के शासक त्रिपुरा सुन्दरी के उपासक थे। गुजरात के सौलंकी राजा सिद्धराज एवं जयसिंह की यह इष्ट देवी थी। कहा जाता है कि मालवा नरेश जगदेव परमार ने तो माँ के श्री चरणों में अपना शीश ही काट कर अर्पित कर दिया था। उसी समय राजा सिद्धराज की प्रार्थना पर माँ ने पुत्रवत् जगदेव को पुनर्जीवित कर दिया था।

वर्ष 1982 में खुदाई के दौरान यहां शिव–पार्वती की मूर्ति निकली थी जिसके दोनों तरफ रिद्धि–सिद्धि सहित गणेश व कार्तिकेय भी हैं। प्रचलित पौराणिक कथानुसार दक्ष–यज्ञ तहस–नहस हो जाने के बाद शिवजी सती की मृत देह को कँधे पर रखकर झूमने लगे। तब भगवान विष्णु ने सृष्टि को प्रलय से बचाने के लिए योगमाया के सुदर्शन चक्र की सहायता से सती के शरीर को खण्ड–खण्ड

कर भूतल पर गिराना आरम्भ किया। उस समय जिन–जिन स्थानों पर सती के अंग गिरे, वे सभी स्थल शक्तिपीठ बन गए, ऐसे शक्तिपीठ 51 हैं और उन्हीं में से एक शक्तिपीठ है–''त्रिपुरा सुन्दरी''।

इस मन्दिर में माँ त्रिपुरा सुन्दरी की काले पत्थर की एक सुन्दर, तेजयुक्त एवं आकर्षक प्रतिमा है जिसमें विविध आयुध से युक्त 18 भुजाएँ हैं। यह हिन्दुओं के प्रमुख शक्तिपीठों में से एक है। इस गौरवशाली मन्दिर के अन्दर एक ही शक्ति माँ दुर्गा की दो छवियाँ मौजूद हैं, इन्हें त्रिपुरा सुन्दरी नाम दिया गया हैं। इनमें से एक 5 फीट ऊँची और दूसरी 2 फीट ऊँची है। एक अन्य मत के अनुसार देवी त्रिपुरा सुन्दरी को समर्पित इस मन्दिर का इतिहास लगभग 500 वर्ष पुराना माना जाता है। इसका निर्माण 1501 में महाराजा धन्या माणिक्य देव वर्मा द्वारा किया गया है। कहा जाता है कि राजा के द्वारा युद्ध के मैदान में देवी त्रिपुरा सुन्दरी की छोटी मूर्ति को ले जाया गया था। इस मन्दिर की संरचना कछुए के कूबड़ के आकार की छत के साथ एक कछुए के समरूप है। मन्दिर क्षेत्र में एक शिलालेख के अनुसार यह मन्दिर सम्राट कनिष्क के काल से पूर्व का है। वि.सं. 1957 में इस क्षेत्र का पहली बार जीर्णोद्धार करवाया गया था। इसके बाद खण्डहर होने की अवस्था में भी माँ की पूजा–अर्चना होती रही है। मन्दिर के पूर्व हिस्से में कल्याण सागर झील स्थित है।

|| मन्दिर दर्शन समय ||

- **कपाट खुलना** : ग्रीष्मकाल में प्रातः 5.00 बजे और सर्दियों में प्रातः 5.30 बजे।
- **अभिषेक शृंगार** : ग्रीष्मकाल में प्रातः 5.00 बजे से 6.00 बजे तक एवं सर्दियों में प्रातः 5.30 बजे से 7.00 बजे तक।
- **दर्शन का समय** : ग्रीष्मकाल में प्रातः 6.00 बजे और सर्दियों में प्रातः 7.00 बजे से।
- **मंगला आरती** : ग्रीष्मकाल में प्रातः 7.00 बजे और सर्दियों में प्रातः 7.30 बजे।
- **भोग अर्पण** : अपराह्न 12.00 बजे।
- **विश्राम** : दोपहर 1.00 बजे से 2.30 बजे तक।
- **संध्या आरती** : ग्रीष्मकाल में प्रातः 7.15 बजे और सर्दियों में सायं 6.30 बजे।
- **कपाट बन्द होना** : ग्रीष्मकाल में रात्रि 9.00 बजे और सर्दियों में रात्रि 8.30 बजे।

जीर्णोद्धार : इस मन्दिर का जीर्णोद्धार तीसरी शताब्दी के आसपास पांचाल जाति के चाँदा भाई लुहार ने करवाया था। मन्दिर के समीप ही एक खदान है, जो किसी समय लोहे की खदान हुआ करती थी। एक किंवदन्ती के अनुसार एक दिन माँ त्रिपुरा भिखारिन के रूप में खदान के द्वार पर पहुँची किन्तु पांचालों ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। इस पर देवी ने क्रोधवश खदान ध्वस्त कर दी जिससे कई लोग काल के ग्रास बन गये। तत्पश्चात् देवी माँ को प्रसन्न करने के लिए पांचालों ने यहाँ पर माँ का मन्दिर तथा तालाब बनवाया। इस मन्दिर का 16वीं शताब्दी में जीर्णोद्धार कराया गया। आज भी त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर की देखभाल पाँचाल समाज ही करता है। यहाँ अनेक मन्दिरों के भग्नावशेष मिले हैं।

उत्सव–पर्व : यह मन्दिर सदियों से विशिष्ट शक्ति साधकों का प्रसिद्ध उपासना केन्द्र रहा है। इस शक्तिपीठ पर दूर–दूर से लोग आकर अपना शीश झुकाते हैं। नवरात्रि पर्व पर इस मन्दिर के प्रांगण में प्रतिदिन विशेष कार्यक्रम समारोह के रूप में आयोजित होते हैं। नौ दिन तक प्रतिदिन त्रिपुरा सुन्दरी की नित्य नूतन शृंगार की मनोहारी झाँकी बरबस ही मन मोह लेती है। चौबीसों घण्टे भजन–कीर्तन, जागरण, साधना, उपासना, जप व अनुष्ठान की लहर में डूबा हर भक्त हर पल केवल माता की जय–जयकार का उद्घोष करता दिखाई देता है। प्रथम दिवस शुभ मुहूर्त में मन्दिर में घट स्थापना की जाती है। शुद्ध स्थान पर गोबर–मिट्टी बिछाकर उसमें जौ या गेहूँ बोये जाते हैं। इसके समीप ही अखण्ड ज्योति जलाई जाती है। मिट्टी–गोबर में बोये गए धान पर एक मिट्टी का कलश जल भरकर रखा जाता है, इसे घट स्थापना कहते हैं। जल कलश के ऊपर मिट्टी के ढक्कन में गोबर–मिट्टी रखकर जो बोये जाते हैं, तीन दिन पश्चात् धान के अंकुर फूटते हैं, जिन्हें जवारे कहते हैं। इसके सामने देवी माँ के चित्र की धूप, अगरबत्ती, नारियल, पुष्प, रोली, भाली आदि से पूजा करते हैं। नवरात्रि की अष्टमी और नवमी को यहां हवन होता है। नवमी या दशहरे पर जवारों को माताजी पर चढ़ाते है। तत्पश्चात् पूजा–अर्चना करके इस कलश को जवारों सहित माही नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। विसर्जन स्थल पर पुनः एक मेला सा जुटता है जहां त्रिपुरा सुन्दरी की जय–जयकार से समस्त वातावरण गुंजायमान हो उठता है। अष्टमी पर यहां दर्शनार्थ पहुँचने वालों में राजस्थान के अलावा गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली और महाराष्ट्र के भी लाखों श्रद्धालुगण शामिल होते हैं।

कागदी पिकअप वियर, बाँसवाड़ा : प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल

आवरी माता शक्तिपीठ : आवरी माता का मुख्य मन्दिर चित्तौड़गढ़ जिले की भदेसर तहसील के आसावरा गांव में स्थित है, जो चित्तौड़गढ़ से 40 कि.मी. दूर है। यह मन्दिर राजस्थान के लोकप्रिय एवं मेवाड़ के प्रमुख शक्तिपीठों में से एक चमत्कारिक मन्दिर है। इस मन्दिर की महिमा चित्तौड़गढ़ जिले के अतिरिक्त राजस्थान के अन्य जिलों में भी बहुत अधिक है। यह मन्दिर बड़े ही सुन्दर रूप में पहाड़ियों एवं झरनों के मध्य निर्मित है। मन्दिर के पास एक तालाब स्थित है जिसे बहुत पवित्र माना जाता है तथा यहां पर भगवान हनुमान की एक सुन्दर मूर्ति प्रतिस्थापित है। इस मन्दिर की निर्माण शैली को देखकर मालूम होता है कि यह नागर शैली में बना हुआ है। इस मन्दिर की स्थापना आसाजी राठौड़ द्वारा 957 ई. विक्रम संवत् 1014 कार्तिक सुदी अष्ठमी को की गई। यह वही दैवीय स्थान है, जहां आसावरा (आवरी) माता जी (केसर बाई) भूमि में समा गई और उसी स्थान पर वर्तमान में मन्दिर स्थापित है। यह मान्यता है कि राजपूत राठौड़ वंश में जन्मी आवरी माता सात भाइयों की अकेली बहन थी। सातों भाइयों को अपनी इकलौती बहन के लिए इतना अपार प्रेम था कि सातों भाई अलग–अलग जगह से अपनी बहन का रिश्ता कर आये। एक ही दिन सातों दूल्हें एक साथ घोड़ी पर माता से विवाह करने आये, तब उन सातों दूल्हों को एक साथ देखकर माताजी में 'जोत' जगी और वहीं समाधि ले ली। इस मन्दिर की वास्तुकला प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के समान है और यहां पर हिन्दू देवताओं की सुन्दर चित्रकारी और संरचनाएं भी हैं और मन्दिर की मुख्य मूर्ति मध्य भाग में स्थित है। मूर्ति को सुन्दर फूलों और सोने के गहनों द्वारा सजाया जाता है।

आवरी माता का एक अन्य मन्दिर मुख्य मन्दिर के उत्तर दिशा की ओर पहाड़ी पर स्थित है। प्रचलित कथा है कि इस पर्वत पर भोले बाबा नाम का भील रहता था जो यहां नीचे के मन्दिर से माता की एक मूर्ति ऊपर ले गया और उसे स्थापित कर दिया। भक्तगण मुख्य मन्दिर के अलावा यहां भी दर्शन के लिए आते हैं। माता जी की मूर्ति लगभग 6 फीट की है। माता जी के दोनों तरफ दायीं एवं बायीं ओर उनकी सखियों की मूर्तियां स्थापित हैं। उसके पास ही भगवान गणेश एवं भैरव बाबा की भी मूर्तियां इस गर्भगृह में स्थापित हैं। माता जी को रोज नये वस्त्र धारण करवाये जाते हैं एवं अलग–अलग अप्रतिम श्रृंगार कराये जाते हैं। वस्त्रों में साड़ी सुरंगी लिप्पे वाली (लप्पेदार जिसमें जड़िया जरकस तार जुड़े हुए होते हैं), श्रृंगार में सिर पर सोने व चांदी का मुकुट व कुमकुम, बिन्दी, इत्र, केसर, काजल, रखड़ी, कानों में कुण्डल, गले में कंठला, मोतियों की माला, तुस्सी, बाहों में बाजुबन्द, हाथों में चुड़ला, पैरों में पायजेब, पाँवों की उंगलियों में बिछुड़ियाँ एवं पुष्पमालाओं से भव्य श्रृंगार कराया जाता है।

माता जी की प्रतिमा प्रतिदिन हर पहर में अपना रूप बदल कर प्रातःकाल में कन्या, दिन में युवावस्था तथा संध्याकाल में बुजुर्ग के रूप में अपने भक्तों को दर्शन देती है। माताजी की पूजा–अर्चना सर्वप्रथम पुजारी के रूप में आसाजी राठौड़ द्वारा की गई थी। आसाजी के बाद कई सालों तक वहां के भील समाज के लोगों ने माताजी की सेवा की। जब भील समाज में मदिरापान का प्रचलन होने लगा, तब उसके पश्चात् सेवा के लिए पण्डित नियुक्त किया गया जो मन्दिर के गर्भगृह के संपूर्ण कार्य करता था एवं गर्भगृह के बाहर के कार्य भील व्यक्तियों द्वारा किये जाने लगे।

माताजी की प्रतिमा को प्रातः 5.00 बजे स्नान कराने के पश्चात् श्रृंगार कराया जाता है, फिर उसके बाद भोग लगाया जाता है। तत्पश्चात् प्रातः 9.00 बजे आरती होती है। आरती के बाद दर्शन के लिए मन्दिर पूरे दिन के लिए खुला रखा जाता है जिससे दूर–दराज से आए हुए दर्शनार्थी माँ के दर्शन का लाभ ले सके। संध्या आरती में खीर एवं भांति–भांति के व्यंजन बनाकर भोग धराया जाता है। अन्य जिलों, शहरों व दूर के स्थानों से आए भक्तगण अपनी मान्यता को पूरी करने के लिए दाल–बाटी–चूरमा की परसादी करते हैं। कई लोग सवासेर, सवामण की बोलमा भी करते हैं जिसमें चूरमे का भोग लगता है और लोग अपनी मनसा पूरी करते हैं।

उत्सव के रूप में यहाँ पर शारदीय नवरात्रि और चैत्र नवरात्रि में नौ दिन का विशाल मेला लगता है जिसमें स्थानीय लोगों के अलावा राजस्थान के संपूर्ण जिलों व देश के अन्य राज्यों से दर्शनार्थी माँ के दरबार में दर्शन के लिए आते हैं और अपनी इच्छाएँ माताजी के सम्मुख प्रकट करते हैं। इस जगत में आवरीमाताजी (आसावरा माता) मेवाड़ की प्रमुख लोकदेवी के रूप में पूजी जाती है। यहाँ सभी जाति के लोग दूर–दूर से आते हैं और अपनी मनोकामना पूर्ण करते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस मन्दिर में विशेष शक्तियाँ हैं, जिससे लोगों को ठीक किया जाता है और भक्त इस मन्दिर में खुद को कई बीमारियों जैसे–पोलियो और पक्षाघात से ठीक करने के लिए आते हैं जो बहुत गंभीर है और कई वर्षों से लाइलाज है। कई लोग अपने परिवारों के साथ यहां पर आते हैं और अपने परिवारजन के साथ पूरी तरह ठीक होने तक यहीं पर रुकते हैं।

मन्दिर परिसर में एक चौक है, जिसमें माता की शक्ति के प्रतीक के रूप में त्रिशूल लगे हुए हैं, भक्तगण इनके चारों ओर परिक्रमा करते हैं। कुछ लोग परिसर में स्थित हवन कुण्ड की भभूत को शरीर के क्षतिग्रस्त अंग पर लगाते हैं। माता जी के यहां जलने वाली अखण्ड ज्योत जिसमें तेल का प्रयोग होता है, उसी तेल को बीमार लोग अपने इलाज के लिए इस्तेमाल करते हैं। पीड़ित व्यक्ति अपने शरीर पर तेल की मालिश करते हैं जिससे रोगी ठीक हो जाता है। आवरी माता जी की अपार कृपा है। माँ ने अपने भक्तों पर अनेक चमत्कार किये हैं जिनसे भक्तों को नवजीवन प्राप्त हुआ है। मेवाड़ का यह सिद्ध पीठ लोगों में सर्वाधिक इसलिए प्रसिद्ध है कि शारीरिक कष्टों से पीड़ित व्यक्ति यहां आकर रहकर दर्शन करने मात्र से अपने कष्टों से मुक्त हो कर स्वस्थ, सुखी जीवन–यापन कर रहे हैं।

शारीरिक बीमारियों जैसे–लकवा, बोली जाना, आवाज चले जाना, आँखों की रोशनी चले जाना, बहरापन जैसी अन्य कई असाध्य बीमारियों से ग्रसित लोगों ने यहां दर्शन करने एवं मन्दिर के बाहर स्थित तालाब में स्नान से लाभ उठाया है। कई मरीज दो महीने तक यहां माताजी के समक्ष रहकर इस स्थान की अलौकिक शक्ति व दिव्य वातावरण में अपने आपको दृढ़ संकल्पित कर व विश्वास के साथ यहां से स्वस्थ होकर पुनः अपने घर लौटते हैं। यहाँ आने–जाने वाले सभी श्रद्धालुओं का मानना है कि दूर–दराज से लोग यहां माताजी के दरबार में अपने प्रगाढ़ विश्वास के साथ आकर अपनी अर्जी लगाते हैं और माँ भी श्रद्धालुओं की आस्था एवं विश्वास को बनाए रखे हुए हैं। कई अविस्मरणीय अवर्णनीय चमत्कार माताजी के मन्दिर में हर रोज देखने को मिलते हैं जिनके प्रत्यक्ष प्रमाण स्वयं पीड़ित व्यक्तियों के परिवार के सदस्य व ट्रस्ट के सदस्य हैं। आवरी माता जी का यह मन्दिर आस्था का बहुत बड़ा केन्द्र एवं आसरा है।

वर्तमान मशीनी युग में इंसान ने कई बीमारियों पर काफी हद तक सफलता प्राप्त कर ली है, लेकिन जिन लाइलाज बीमारियों का मूलनाश और रोकथाम विज्ञान भी पूरे तरीके से नहीं कर पाया है, उसका नाश प्रभु में गहरी आस्था व आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास के द्वारा होता है। आध्यात्मिक शक्ति से अभिप्राय देवीय स्थानों की शक्ति, पूजा–पाठ, दिव्य मंत्र व देवी कृपा से है। मन्दिर के पश्चिम दिशा में एक बड़ा बाजार है। मन्दिर के पूर्व दिशा में एक पहाड़ी पर महादेव का मन्दिर बना हुआ है। उत्तर दिशा में बस स्टेण्ड व दक्षिण में कार्यशालाएँ बनी हुई हैं। आवरी माता मन्दिर में सभी त्यौहार मनाए जाते हैं, खासकर दुर्गा पूजा, नवरात्रि और हनुमान जयन्ती के पर्व पर विशेष पूजा का आयोजन किया जाता है। इस दिन मन्दिर को फूलों एवं लाइटों से सजाया जाता है।

श्री शक्तिपीठ ईड़ाणा माता मन्दिर : यह मन्दिर उदयपुर शहर से 60 कि.मी. दूर कुराबड़–बम्बोरा मार्ग पर अरावली की विस्तृत पहाड़ियों के बीच स्थित है। मेवाड़ का प्रमुख शक्तिपीठ ईडाणा माता जी राजपूत समुदाय, भील, आदिवासी समुदाय सहित संपूर्ण मेवाड़ की आराध्य माँ है। माँ का दरबार एक बरगद के पेड़ के नीचे खुले एक चौक में स्थित है। ज्ञात हुआ है कि प्रसन्न होने पर देवी की प्रतिमा माह में दो से तीन बार स्वतः जागृत होकर अग्नि से स्नान करती है। इस अग्नि स्नान से माँ की संपूर्ण चढ़ाई गई चुनरियाँ, धागे, लच्छे और पास में रखा खाना/प्रसाद आदि भस्म हो जाते हैं। इस दृश्य को देखने वाले हर किसी की मनोकामना पूरी होती है। इसी अग्नि स्नान के कारण यहां माँ का मन्दिर नहीं बन पाया। माँ की प्रतिमा के पीछे अनगिनत त्रिशूल लगे हुए हैं। यहां भक्त अपनी मन्नतें पूर्ण होने पर त्रिशूल चढ़ाने आते हैं। साथ ही संतान की मन्नत रखने वाले दम्पतियों द्वारा पुत्र रत्न प्राप्ति पर यहां झूला चढ़ाने की भी परम्परा है।

स्थानीय लोगों में ऐसा विश्वास है कि लकवा से ग्रसित रोगी यहां माँ के दरबार में आकर ठीक होकर जाते हैं। इसके साथ ही लकवा ग्रस्त शरीर के अंग विशेष के ठीक होने पर रोगियों के परिजनों द्वारा यहां चांदी या काष्ठ के अंग बनाकर चढ़ाये जाते हैं। किसी भी समय अग्नि जागृत होती है। खास बात यह है कि मन्दिर में अग्नि कैसे बुझती है, यह आज तक कोई नहीं जान सका। माता रानी का यह अग्नि स्नान काफी विशाल होता है। कई बार पास का बरगद का पेड़ भी क्षतिग्रस्त हो जाता है। यह जानकर हैरानी होगी कि आज तक माँ की मूर्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस चमत्कारी घटना को लेकर भक्तों की इस मन्दिर से अटूट आस्था है। माँ की प्रातः 5.30 बजे प्रातः आरती, 7.00 बजे श्रृंगार दर्शन, सायं 7.00 बजे सायंकालीन आरती दर्शन, यहां के प्रमुख दर्शन है। इस शक्ति पीठ की विशेष बात यह है कि यहां माँ के दर्शन चौबीस घंटे खुले रहते हैं। सभी लकवा ग्रस्त रोगी रात्रि में माँ की प्रतिमा के सामने स्थित चौक में आकर सोते हैं। दोनों नवरात्रि में यहां पर भक्तों की काफी भीड़ रहती है। इसके अतिरिक्त सभी प्रमुख त्यौहार यहाँ धूमधाम से मनाये जाते हैं।

कुम्भलगढ़ दुर्ग : अरावली पर्वतमालाओं की 13 पर्वत चोटियों के समूह में फैला उदयपुर के उत्तर–पश्चिम में लगभग 84 कि.मी. की दूरी पर राजसमन्द जिले में स्थित कुम्भलगढ़ एक मध्ययुगीन दुर्ग है। समुद्रतल से 3568 फीट की ऊँचाई पर एक प्रमुख चोटी से उठते हुए इस किले को महाराणा कुम्भा ने 1445 ई. से 1458 ई. के मध्य बनाया एवं स्वयं के नाम पर इसका नामकरण किया। वे सिसोदिया राजपूत वंश के मेवाड़ के राणा थे। राणा कुम्भा ने उस समय के प्रसिद्ध वास्तुकार 'मण्डन' की सहायता ली। महाराणा कुम्भा के शासनकाल में शानदार वास्तुकला की संरचनाएँ बनाई गई और उनकी सुरक्षा की रणनीति किले के चारों ओर बुनी गई। लगभग 12 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में फैले इस किले में प्रवेश द्वार, प्राचीर, जलाशय, बाहर जाने के लिए संकटकालीन द्वार, महल, मन्दिर, आवासीय इमारतें, यज्ञवेदी, स्तम्भ, छतरियाँ आदि बने हुए हैं। 13 मई, 1759 को इस दुर्ग का कार्य पूर्ण होने पर सिक्के ढलवाये, जिन पर दुर्ग और उनका नाम अंकित था।

यह राजस्थान के पर्वतीय दुर्गों में शामिल एक प्रमुख विश्व धरोहर है। चित्तौड़गढ़ के बाद पूरे राजस्थान में यह दूसरा सबसे महत्वपूर्ण किला है। यह अरावली पर्वत श्रृंखला और मारवाड़ के रेतीले रेगिस्तान का मनोरम दृश्य प्रस्तुत करता है।

मेवाड़ के 84 दुर्गों में से 32 दुर्गों का निर्माण महाराणा कुम्भा द्वारा किया गया था, जिनमें से कुम्भलगढ़ सबसे बड़ा और सबसे विस्तृत है। इस दुर्ग की प्राचीर 36 कि.मी. लम्बी एवं 7 मीटर चौड़ी है, जिस पर चार घुड़सवार एक साथ दौड़ सकते हैं, इसलिए इसे चीन की महान् दीवार के बाद दुनिया की दूसरी सबसे लम्बी दीवार यानी भारत की महान दीवार के नाम से भी जाना जाता है। यह विशाल दुर्ग ऊँचे वॉच टावरों एवं सात गढ़वाले प्रवेश द्वारों के माध्यम से संरक्षित हैं, जिनसे कई भयंकर लड़ाइयाँ देखी गई थी। इस किले को अजयगढ़ भी कहा जाता था क्योंकि इसे कई घाटियों एवं पहाड़ियों को मिलाकर बनाया गया था, जिससे यह प्राकृतिक सुरक्षा का आधार पाकर अजेय रहा।

इस दुर्ग में ऊँचे स्थानों पर महल, मन्दिर व आवासीय इमारतें बनाई गई और समतल भूमि का उपयोग कृषि कार्य के लिए किया गया। वहीं ढलान वाले भागों का उपयोग जलाशयों के लिए कर इस दुर्ग को यथासंभव स्वावलम्बी बनाया गया।

इस दुर्ग के भीतर एक और किला है जिसे कटारगढ़ के नाम से जाना जाता है। यह किला पाँच विशाल द्वारों व सुदृढ़ प्राचीरों से सुरक्षित हैं। इस गढ़ के शीर्ष भाग में बादल महल है एवं कुम्भा महल सबसे ऊपर स्थित है।

यह किला खतरे के समय मेवाड़ के शासकों के लिए आश्रय स्थल के रूप में इस्तेमाल किया गया। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण मेवाड़ के राणा उदय सिंह के मामले में था, जिन्हें 1535 ई. में बाल्यावस्था में यहां पर छुपाकर लाया गया था। इन महलों में उनकी वफादार सेविका पन्नाधाय ने उन्हें उनके चाचाओं के जानलेवा इरादों से बचाने के लिए छिपाकर रखा था जो कि स्वयं सिंहासन के लिए महत्वाकांक्षी थे। उदय सिंह ने अपने निवास स्थल के रूप में कुम्भलगढ़ के साथ मेवाड़ का सिंहासन संभाला और उसके बाद झीलों के सुन्दर शहर उदयपुर की स्थापना की।

मौर्य सम्राट अशोक के पोते के शासनकाल के दौरान इस किले के भीतर निर्मित मन्दिर के प्राचीन खण्डहर भी मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करते हैं। कुम्भलगढ़ के अधिकांश खण्डहर विभिन्न काल के जैन मन्दिरों के हैं। राणा कुम्भा संगीत, चित्रकारी, कला और वास्तुकला के संरक्षक थे, इसलिए कुम्भलगढ़ का किला कला एवं वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस किले की मुख्य इमारतें नीलकंठ महादेव मन्दिर, मामादेव मन्दिर, कटारगढ़ आदि किले की सबसे पुरानी इमारतें हैं। कर्नल टॉड ने इस किले की अनूठी संरचना को राजस्थान के प्राचीन पुरावशेष के रूप में वर्णित किया है।

कुम्भलगढ़ किला : अरावली की पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ एवं अप्रतिम हरियाली से आच्छादित भव्य स्वरूप

किले की भव्य प्राचीर एवं प्रवेश द्वार

कटारगढ़ एवं उसके प्रवेश द्वार

किले की 36 कि.मी. लम्बी दीवार

रात्रिकालीन भव्य स्वरूप

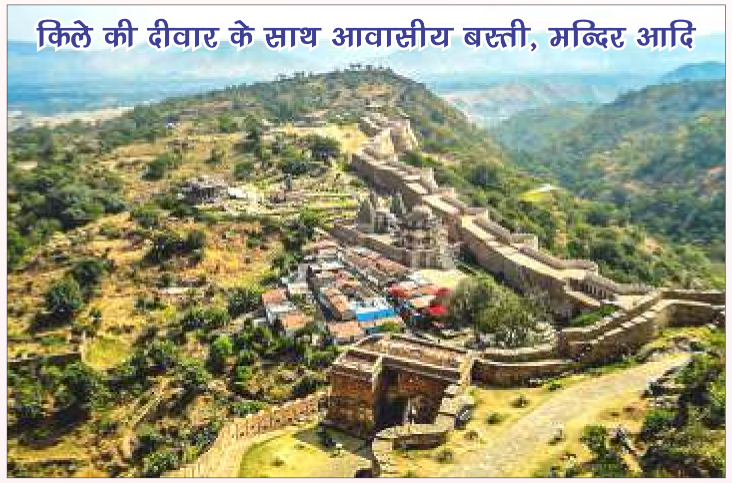
किले की दीवार के साथ आवासीय बस्ती, मन्दिर आदि

बादल एवं कुम्भा महल

किले में स्थित मन्दिर समूह

किले के हनुमान द्वार के पास स्थित वेदी राणा कुम्भा द्वारा निर्मित एक बलि मन्दिर है। किले के भीतर 70 से अधिक जैन एवं हिन्दू मन्दिर स्थित हैं।

महलों में सबसे सुरम्य बादल महल पैलेस है जिसमें हरे, फिरोजी एवं सफेद रंग की सुखद रंग योजनाओं में सजाए गए सुन्दर कमरें हैं। सभी संरचनाओं में सबसे ऊँचा बादल महल किले के आसपास के ग्रामीण इलाकों के साथ–साथ किले के भीतर अन्य खण्डहरों का एक भव्य दृश्य प्रस्तुत करता है। साथ ही महल के शिखर से अरावली पर्वत शृंखलाओं को मीलों दूर तक देखना संभव है।

किले की महत्त्वपूर्ण संरचनाएँ :

अरीत पोल : अरीत पोल कुम्भलगढ़ किले का प्रथम प्रवेश द्वार है। यह हल्ला पोल प्रवेश द्वार से नीचे की ओर ढलान पर है। हल्ला पोल के ठीक बाद बादशाही बावड़ी, एक सीढ़ीदार कुण्ड है, जिसे 1578 ई. में शाहबाज खान के आक्रमण के बाद बनाया गया था, जो मुगल सम्राट अकबर के सेनापतियों को पानी उपलब्ध कराने के लिए था।

हनुमान पोल : यह पोल हल्ला पोल से आगे आधा कि.मी. की दूरी पर स्थित है। हनुमान पोल अष्टकोणीय बुर्जों वाला एक दो मंजिला द्वार है। गेट के सामने स्थित हनुमान जी की प्रतिमा के आधार पर इस पोल का नामकरण किया गया, जिसे महाराणा कुम्भा द्वारा बनाया गया था।

राम पोल : यह कुम्भलगढ़ किले का मुख्य प्रवेश द्वार है।

विजय पोल : राम पोल के पूर्व की ओर एक और प्रवेश द्वार है, जिसे विजय पोल कहा जाता है।

अन्य पोल : किले के उच्चतम् बिन्दु पर बने महल, राम पोल से बादल महल के बीच पाँच द्वार जिनमें भैरों पोल, नीम्बू पोल, चौगान पोल, पगड़ा पोल और गणेश पोल भी स्थित है।

कटारगढ़ : कुम्भलगढ़ के किले के भीतर एक लघु दुर्ग के रूप में कटारगढ़ स्थित है, जिसमें झाली रानी का महल प्रमुख है।

अधिकांश इमारतें राम पोल से दिखाई देती हैं, जो एक वास्तुशिल्प नमूना माना जाता है। इस किले की ऊँचाई के सम्बन्ध में अबुल फज़ल ने लिखा है कि "यह दुर्ग इतनी बुलन्दी पर बना हुआ है कि नीचे से ऊपर की तरफ देखने पर सिर से पगड़ी गिर जाती है।"

मामादेव मन्दिर : यह मन्दिर 1460 ई. में किले के नीचे राणा कुम्भा द्वारा बनवाया गया था। पूर्व में मेवाड़ के इतिहास से संबंधित चार बड़े शिलालेख, जिनमें मेवाड़ के संस्थापक से लेकर राणा कुम्भा तक का विवरण अंकित था, उदयपुर के एक संग्रहालय में संरक्षित हैं। इस मन्दिर के पास एक बड़ा कुण्ड है। पास में पृथ्वीराज "मेवाड़ के भटके हुए शूरवीर" की शाही छतरी है। कहा जाता है कि उदयसिंह प्रथम ने अपने पिता महाराणा कुम्भा की इस कुण्ड के पास चाकू मारकर हत्या कर दी थी।

नीलकंठ महादेव मन्दिर : यह मन्दिर 1458 ई. के दौरान निर्मित किले के पूर्वी हिस्से में स्थित है। एक आयताकार चौक और अनूठी संरचना के 24 विशाल स्तम्भों के माध्यम से भगवान शिव के गर्भगृह तक पहुँचा जा सकता है। शिव की मूर्ति काले पत्थर से बनी हुई है और इसे 12 हाथों से दर्शाया गया है। शिलालेखों से संकेत मिलता है कि राणा सांगा द्वारा इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया था।

गणेश मन्दिर : रामपोल के बायीं ओर स्थित इस मन्दिर का निर्माण महाराणा कुम्भा ने करवाया था। इसके गर्भगृह में गणेश की प्रतिमा विराजमान है।

अन्य मन्दिर : उक्त मन्दिरों के अलावा इस किले में चामुण्डा मन्दिर, माताजी मन्दिर, सूर्य मन्दिर, पार्श्वनाथ जैन मन्दिर, जूना भीलवाड़ा मन्दिर, पिताल शाह जैन मन्दिर के साथ कुल 70 से अधिक जैन व हिन्दू मन्दिर स्थित हैं।

अरीत पोल

पार्श्वनाथ जैन मन्दिर

जैन मन्दिर

रामपोल एवं हल्लापोल

त्रिकूट मन्दिर

मामादेव मन्दिर

रामपोल

वेदी मन्दिर

नीलकंठ महादेव मन्दिर

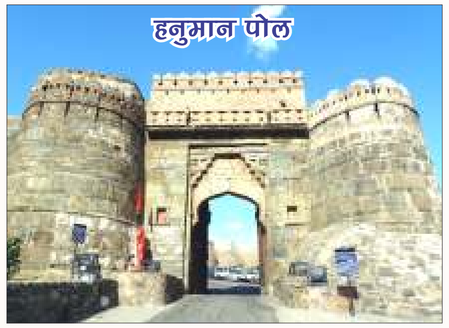
हनुमान पोल

किले के चारों ओर भव्य प्राचीर के साथ अदम्य हरितिमा लिए अरावली पर्वत शृंखला

पगड़ा पोल

कुम्भलगढ़ किले के बादल महल के चहुँओर बादलों की ओट में अरावली पर्वत शृंखला

चौगान पोल

संस्कृति : कला और वास्तुकला के प्रति महाराणा कुम्भा के विशेष लगाव की स्मृति में राजस्थान पर्यटन विभाग द्वारा किले में तीन दिवसीय वार्षिक उत्सव का आयोजन किया जाता है। इसमें किले की पृष्ठभूमि के साथ साउण्ड एण्ड लाइट शो आयोजित किये जाते हैं। इस समारोह के अन्तर्गत विभिन्न संगीत एवं नृत्य कार्यक्रम के साथ हैरिटेज फोर्ट वॉक, पगड़ी बांधना, रस्साकशी, मेहन्दी मांडना आदि कार्यक्रम भी आयोजित होते हैं।

विश्व धरोहर : जून, 2013 में नोम पेन्ह में विश्व धरोहर समिति की 37वीं बैठक के दौरान राजस्थान के छः किलो जिनमें आमेर, चित्तौड़गढ़, गागरोन, जैसलमेर, कुम्भलगढ़ एवं रणथम्भौर किले को यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल सूची में शामिल किया गया है।

कुम्भलगढ किले के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य :–

- इस किले को अजयगढ़ कहा जाता था क्योंकि इस किले पर विजय प्राप्त करना दुष्कर था।
- इसके चारों ओर एक बड़ी दीवार बनी हुई है जो चीन की दीवार के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी दीवार है।
- कुम्भलगढ़ किले को मेवाड़ की आँख भी कहा जाता हैं।
- महाराणा प्रताप की जन्म स्थली कुम्भलगढ़ एक तरह से मेवाड़ की संकटकालीन राजधानी रहा है।
- महाराणा कुम्भा से लेकर महाराणा राज सिंह के समय तक मेवाड़ पर हुए आक्रमणों के समय राजपरिवार इसी दुर्ग में रहा।
- यहीं पर कुँवर पृथ्वीराज और राणा साँगा का बचपन व्यतीत हुआ था।
- उड़वा राजकुमार कुँवर पृथ्वीराज की छतरी भी इसी दुर्ग में स्थित है।
- हल्दीघाटी के युद्ध के बाद महाराणा प्रताप भी काफी समय तक इसी दुर्ग में रहे।
- इस दुर्ग के बनने के बाद ही इस पर आक्रमण शुरू हो गये लेकिन एक बार को छोड़कर यह दुर्ग अजय ही रहा है।
- इस दुर्ग की कई दुखान्त घटनाएँ भी हैं, जिनमें महाराणा कुम्भा को कोई नहीं हरा सका, वहीं शूरवीर महाराणा कुम्भा इसी दुर्ग में अपने पुत्र उदयसिंह (प्रथम) द्वारा राज्य पिपासा में मारे गये।
- यह दुर्ग ऐतिहासिक विरासत की शान और शूरवीरों की तीर्थ स्थली रहा है।
- कर्नल जेम्स टॉड ने दुर्भेद्य स्वरूप की दृष्टि से चित्तौड़ के बाद इस दुर्ग को रखा तथा इस दुर्ग की तुलना सुदृढ़ प्राचीर, बुर्जो तथा कंगूरों के आधार पर एट्रस्कन से की है।
- प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जी.ए. शर्मा ने कहा – "कुम्भलगढ़ किला कुम्भा सेना और रचनात्मक प्रतिभा का सर्वोच्च स्मारक था।"
- एक लम्बी घेराबन्दी का सामना करने के लिए यह किला सभी तरह से आत्मनिर्भर है। मुख्य रूप से पीने के पानी की कमी के कारण मुगल और आमेर की संयुक्त सेनाओं द्वारा इसकी सुरक्षा को केवल एक बार ही भंग किया जा सका था।
- 19वीं शताब्दी में महाराणा फतहसिंह ने इस किले का जीर्णोद्धार कराया था।
- इस किले में मौर्य वंश द्वारा निर्मित मन्दिरों की एक शानदार शृंखला है। किले के बड़े परिसर में बहुत ही प्राचीन खण्डहर हैं और इनके चारों ओर घूमना बहुत मनोहारी एवं शिक्षाप्रद है।

कुम्भलगढ़ अभयारण्य : कुम्भलगढ़ क्षेत्र में यह अभयारण्य एक और आकर्षण का केन्द्र है, जो विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों एवं जीवों का आश्रय स्थल है। यह अभयारण्य 578 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। यह पैंथर, सुस्त भालू, जंगली सूअर, चार सींग वाले मृग और वैज्ञानिक नस्ल वाले मगरमच्छ जैसे वन्य जीवों की एक समृद्ध विविधता का आश्रय स्थल है। यह अभयारण्य फ्लेमिंगो, कॉर्मोरेंट्स, स्पूनबिल्स व एग्रेस के लिए भी प्रसिद्ध है जो आमतौर पर सर्दियों में देखे जाते हैं।

चित्तौड़गढ़ किला : उदयपुर से 115 कि.मी. दूर पवित्र गंभीरी नदी के तट पर स्थित चित्तौड़गढ़ मेवाड़ के सबसे प्रसिद्ध किलों में से एक है। चित्तौड़गढ़ मौन रहकर वीरतापूर्ण आत्म–बलिदान की कई विपरीत परिस्थितियों एवं गौरवशाली इतिहास से सम्बद्ध है। यह एक ऐसा स्थल है जहाँ बहादुर राजपूतों एवं उनकी वीरांगनाओं ने अपनी मातृभूमि की खातिर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। यह वह पवित्र स्थान है, जहाँ कई धर्मपरायण वीरांगनाओं ने अपने आत्म–सम्मान की रक्षा एवं अपने पतिधर्म का पालन करते हुए जौहर की अग्नि का वरण किया। इस किले की हर ईंट एवं पत्थर अपनी वीरता, देशभक्ति एवं बलिदान की गाथा करते हैं। हर मन्दिर और टॉवर मेवाड़ की प्राचीन संस्कृति को दर्शाता है। यह किला कई महान राजपूत योद्धाओं का गढ़ था, जैसे–बप्पारावल, राणा कुम्भा, महाराणा प्रताप, जयमल, पट्टा, हमीर, राणा सांगा आदि। इसी प्रकार रानी पद्मिनी, कर्णावती, पन्नाधाय, ताराबाई और मीरांबाई के शौर्य, बलिदान एवं त्याग को समर्पित रहा।

समुद्रतल से लगभग 500 फीट की ऊँचाई पर स्थित यह किला 13 कि.मी. लम्बी प्राचीर से घिरा हुआ है। संकड़ी पहाड़ी का उत्तर से दक्षिण विस्तार लगभग 5 कि.मी. है। इस किले के बारे में एक प्रसिद्ध कहावत है "गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया", इसका अर्थ है – "देश का एकमात्र श्रेष्ठ किला चित्तौड़गढ़ है जबकि अन्य साधारण किले हैं।"

किवंदन्तियों के अनुसार महाभारत के पाण्डव नायकों में से एक भीम को इस किले के मूल निर्माण का श्रेय दिया जाता है। सिसोदिया राजवंश के प्रसिद्ध संस्थापक बप्पारावल को अंतिम सौलंकी राजकुमारी के दहेज के हिस्से के रूप में आठवीं शताब्दी के मध्य में चित्तौड़ प्राप्त हुआ। दूसरे मत के अनुसार यह किला राजा चित्रांगद मोरी द्वारा बनाया गया। उन्होंने चित्रांक तालाब और महल बनवाया तथा किले का नाम चित्रकूट रखा। महारावल बप्पा ने 734 ई. में चित्रांगद मोरी के वंशज मान मोरी से इसे लिया।

13वीं शताब्दी के अन्त में दिल्ली के सुल्तान शमशुद्दीन अल्तमश द्वारा महारावल जैत सिंह (1213–53 ई.) की कालावधि के दौरान नागदा पर हमला हुआ एवं नागदा बर्बाद हो गया था, इसलिए महारावल जैत सिंह ने चित्तौड़ को अपनी राजधानी बनाया और यह 1567 ई. तक जारी रहा, लेकिन यह कई वृहद् लड़ाइयों का घटना स्थल भी रहा।

इस किले में पहला साका (जौहर) तब हुआ जब 1303 ई. में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ की रानी पद्मिनी को देखने की इच्छा व्यक्त की गई। उनकी सेनाओं ने चित्तौड़ को घेर लिया और सुल्तान ने पद्मिनी के पति राणा रतन सिंह को संदेश दिया कि यदि वह अपनी रानी को देखने की अनुमति देगा तो वह किला छोड़ देगा। अलाउद्दीन को सुन्दर रानी को मर्दाना महल के दर्पण के प्रतिबिम्ब में देखने की अनुमति दी गई थी जबकि रानी पद्मिनी अपने पानी के महल की सीढ़ियों पर थी। अलाउद्दीन ने अपने मेजबान का शुक्रिया अदा किया जो विनम्रतापूर्वक उसे बाहरी गेट तक ले गए, जहाँ सुल्तान के लोगों द्वारा राणा रतन सिंह का अपहरण कर उसे बंधक बना लिया गया।

पद्मिनी ने एक योजना बनाई और सुल्तान को संदेश दिया कि रानी उसके पास आयेगी। गोरा और बादल (पद्मिनी के चाचा और चचेरे भाई) के नेतृत्व में दरबारी सेविकाओं के स्थान पर सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं के साथ दर्जनों पर्दे वाली पालकी स्थापित की गई। इन पालकियों सहित सुल्तान के शिविर के अन्दर प्रवेश करते ही चार सशस्त्र राजपूत योद्धा प्रत्येक पालकी से बाहर निकल गए। यद्यपि राणा रतन सिंह को बचा लिया गया था लेकिन युद्ध में 7000 से अधिक योद्धा मारे गये। रानी पद्मिनी ने अपने अपमान के बजाय मृत्यु को प्राथमिकता दी। उन्होंने अपने बच्चों को निष्ठावान अनुचरों के संपूर्ण संरक्षण के साथ छुपाकर महल से बाहर भेजा और अन्य महिलाओं के साथ स्वयं उनकी शादी की पौशाक पहनकर महासती चौक पर एक विशाल अंतिम संस्कार की चिता में समाहित हो गई और जौहर कर लिया। राणा रतन

चित्तौड़गढ़ किला – भव्य प्राचीर, विजय स्तम्भ, महल, मन्दिर, गौमुख कुण्ड का मनोरम दृश्य

चित्तौड़गढ़ किला – विशाल परिसर, विजय स्तम्भ, गौमुख कुण्ड आदि

महलों के खण्डहर

किले का हरीतिमा युक्त अन्दरूनी परिसर

सिंह और उनके राजपूत यौद्धाओं ने भगवा वस्त्र पहनकर अपनी महिलाओं की पवित्र राख को अपने माथे पर लगाया और मृत्यु तक लड़ने के लिए दुश्मन के जत्थे की ओर दौड़ पड़े। अलाउद्दीन ने जो कुछ हुआ, उसे पुनः दोहराया और सामान्य नागरिकों के नरसंहार का आदेश दिया। उसके आदेश पर लगभग 30,000 लोगों की हत्या कर दी गई और सभी इमारतों, महलों एवं मन्दिरों को नुकसान पहुँचाया गया। उन्होंने केवल पद्मिनी के जल महल को छोड़ा। यह स्मृति आज भी आँखों में आँसू ला देती है।

चित्तौड़ का दूसरा साका या जौहर 1534 ई. में हुआ, जब चित्तौड़ पर 16 वर्षीय राजकुमार राणा विक्रमादित्य का शासन था। उन्होंने आन्तरिक व बाहरी कूटनीति और युद्ध की रणनीति बनाने में कई गलतियाँ की। गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह ने रात में किले पर हमला किया। विक्रमादित्य की माँ रानी कर्णावती मेवाड़ राज्य की स्थिति और वृहद् खतरे के बारे में जागरूक थी। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने मुगल सम्राट हुमायूँ को मदद करने हेतु राखी भेजी। हुमायूँ ने अपनी दत्तक बहन कर्णावती की मदद के लिए तुरन्त बंगाल छोड़ दिया। लेकिन जब तक वह पहुँचा, तब तक बहादुर रानी ने खुद को कवच में बांध लिया और युद्ध के मैदान में उतर गई। एक भयंकर युद्ध के बाद रानी कर्णावती ने हजारों अन्य महिलाओं के साथ जौहर कर लिया। गुजरात के सैनिकों ने किले पर कब्जा कर लिया और यह चित्तौड़ का दूसरा साका था।

कुछ समय बाद मेवाड़ के प्रमुखों ने चित्तौड़ के किले पर फिर से कब्जा कर लिया। यह किला 1568 ई. में अकबर के आक्रमण तक महाराणाओं के पास रहा और मेवाड़ की राजधानी के रूप में बना रहा। दूसरे साका के बाद मेवाड़ के राव एवं उपराव की परिषद् ने विक्रमादित्य को बदलने का फैसला किया और रणबीर के एक भाई के अवैध पुत्र बनबीर को राज्य के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया। यह विकल्प सही नहीं था, क्योंकि बनबीर, वह था जिसने विक्रमादित्य की हत्या कर दी थी और उदयसिंह को भी मारने की कोशिश की थी। उदयसिंह को सौभाग्य से पन्नाधाय ने अपने ही बेटे के जीवन की कीमत पर बचा लिया था। पन्नाधाय को इस स्थिति के बारे में पता चलने पर उसने अपने बेटे को राजकुमार उदयसिंह के बिस्तर पर सुला दिया। उसने अपने ही बेटे की हत्या प्रत्यक्ष देखी और उदयसिंह के साथ कुम्भलगढ़ आ गई, जहां वह किलादार देवपुरा के भतीजे के रूप में पला और बड़ा हुआ। वर्षों बाद उदयसिंह को मेवाड़ के विश्वसपात्र दरबारियों द्वारा राणा सांगा के असली वारिस के रूप में मान्यता दी गई। उन्होंने बनवीर और उसके परिवार को चित्तौड़ से बाहर करने के बाद उदयसिंह को मेवाड़ के सिंहासन पर बैठाया।

यह सब तब घटित हुआ जब मुगल सम्राट अकबर ने कई राजपूत राजकुमारों की निष्ठा को जीता था जिनमें आमेर के कछवाहा, जोधपुर और बीकानेर के राठौड़ और जैसलमेर के भाटी प्रमुख थे। लेकिन मेवाड़ के महाराणा ने अपना सिर झुकाने से इन्कार कर दिया और वास्तव में महाभारत के पाण्डवों की तरह शाही दिल्ली के अधीन अपमानजनक अधीनता स्वीकार करने के बजाय स्वाधीनता एवं अरावली के घने वन में वनवास को प्राथमिकता दी। अन्त में चित्तौड़गढ़ के शासकों के द्वारा यह महसूस किया गया कि विशाल किले में दो भयंकर नरसंहार के साकों का सामना करने के बाद बारूद से लैस एक दुश्मन से लड़ने की अज्ञानता एवं उनकी पारम्परिक रणनीति आत्मघाती सिद्ध हुई। यहां पर दुश्मन के पास हमेशा समय होता है और वह आत्म–समर्पण एवं विनाश के लिए गढ़ में सेना को भूखा रखने के लिए सक्षम होता था। बारुद की शुरूआत के बाद चित्तौड़गढ़ अभेद्य नहीं था। इसलिए उदयसिंह ने अपनी राजधानी गिर्वा घाटी में स्थानान्तरित करने का फैसला किया और उदयपुर नगर बसाया। यहाँ मुगल सेनाओं के विरुद्ध युद्ध करने के लिए महाराणा को बेहतर तरीके उपलब्ध हुए।

इस समय मेवाड़ के दरबारियों ने फैसला किया कि महाराणा उदयसिंह एवं उनके परिवार को जीवित रहना चाहिये और उन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया। चार महीनों तक किले के रक्षकों ने अत्यधिक दुष्कर मुगल सेना को हराया। महाराणा उदयसिंह ने जयमल राठौड़ को चित्तौड़ की कमान सौंपी। अकबर एवं आमेर के भगवान दास ने चित्तौड़ पर कब्जा कर लिया। जयमल किले की प्राचीर से निरीक्षण के दौरान अकबर की बन्दूक से निकली

जौहर कुण्ड

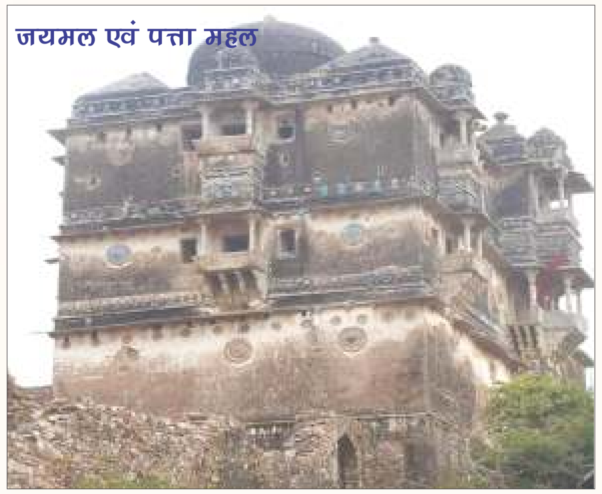
जयमल एवं पत्ता महल

राणा कुम्भा महल

सतबीस देवरी मन्दिर

फतेह प्रकाश महल – संग्रहालय

कुम्भश्याम मन्दिर

मीराबाई मन्दिर

एक गोली द्वारा घायल हो गये। राजपूत रक्षकों ने जयमल के प्रेरक नेतृत्व को खो दिया, तब लड़ाई 'करो या मरो' के उद्देश्य में बदल गई। जयमल के भतीजे पत्ता ने बीच में हस्तक्षेप किया और युद्ध की बागडोर अपने हाथ में ले ली। मेवाड़ के योद्धा भगवा वस्त्र धारण कर मृत्यु को अंगीकार करने के लिए तैयार हो गये।

अकबर ने एक हाथी की पीठ पर सवार होकर युद्ध के दृश्य का अवलोकन किया तो देखा कि दो नायक जयमल और पत्ता चित्तौड़ की रक्षा के लिए बहुत बहादुरी से लड़ रहे थे, जिनकी प्रशंसा किये बिना वह नहीं रह सके। बाद में उन्होंने उनकी स्मृति में बनाई गई मूर्तियों को प्राप्त कर आगरा में अपने किले के प्रवेश द्वार पर इन्हें हाथी पर स्थापित करवाया। फिर से राजपूत पुरुषों के सम्मान में शाही परिवार की महिलाओं ने अपने दुल्हन के परिधान पहने और जौहर कुण्ड की अंतिम संस्कार की चिता में स्वयं को समर्पित कर जौहर को प्राथमिकता दी। नौ रानियों, पाँच राजकुमारियों और उनके दरबारियों की सभी महिलाओं ने इस चिता में अपने प्राणों की आहूति दे दी। यह चित्तौड़ का तीसरा एवं अंतिम साका था। उदयसिंह की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र प्रताप सिंह भारतीय इतिहास के एक बहादुर नायक के रूप में मेवाड़ के सशक्त शासक बने।

चित्तौड़गढ़ किले के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल : चित्तौड़गढ़ एक पर्वतीय किला है जो भारत के इतिहास में लड़े गये कई भीषण युद्धों का साक्षी रहा है। किले की विशाल प्राचीर के साथ कीर्ति स्तम्भ, विजय स्तम्भ, पद्मिनी का द्वीप, मन्दिर एवं महल आज भी भग्नावशेष के रूप में मौजूद हैं। महल की दीवारों के पास जौहर कुण्ड स्थित है, जहाँ महिलाओं द्वारा जौहर किया गया था। उनके सम्मान को बनाये रखने के लिए इस जौहर कुण्ड का तीन बार जीर्णोद्धार कराया गया है जो अभी भी अच्छी स्थिति में हैं। चित्तौड़ का किला सात द्वारों से सुसज्जित हैं – प्रवेश द्वार के रूप में पदम पोल है, फिर भैरों पोल, हनुमान पोल, गणेश पोल, जोरल पोल, लक्ष्मण पोल और अंतिम मुख्य पोल राम पोल है।

जयमल और पत्ता की छतरियाँ : ये छतरियाँ चित्तौड़ के दो अमर रक्षक जयमल और पत्ता की स्मृतिमय प्रतिमाएँ हैं, जो 1567 ई. में अकबर की सेनाओं की घेराबन्दी के दौरान यहाँ पर वीरगति को प्राप्त हुए थे।

राणा कुम्भा महल : राणा कुम्भा का महल विजय स्तम्भ के पास स्थित है। यह उदयपुर के संस्थापक महाराणा उदयसिंह का जन्म स्थल है। यहाँ पर राजपरिवार की सेविका पन्नाधाय ने वीरतापूर्वक एवं अपनी सूझबूझ से तत्कालीन शासक बनवीर के कोप से राजकुमार उदयसिह की रक्षा की थी। इस महल में रानी मीराबाई भी रहती थी। यह वह स्थान है जहां रानी पद्मिनी ने एक भूमिगत तहखाने में अन्य महिलाओं के साथ जौहर कर लिया था।

फतेह प्रकाश महल : कुम्भा महल के पास एक दो मंजिला भव्य इमारत है, जिसे फतेह प्रकाश महल कहा जाता है। इसका निर्माण महाराणा फतेहसिंह द्वारा वर्ष 1907 में करवाया गया, जिसकी लागत लगभग 6 लाख रुपये थी। वर्तमान में राजस्थान सरकार ने इस महल को "पुरातन सामग्री के संग्रहालय" के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इसमें आगन्तुकों के लिए एक कैफेटेरिया भी है।

सतबीस देवरी मन्दिर : फतेह प्रकाश महल के दक्षिण–पश्चिम में सत–बीस देवरी नामक एक बड़ा जैन मन्दिर है, जहां 24 तीर्थकरों के छोटे मन्दिर हैं। यह मन्दिर बहुत खूबसूरती से बनाया गया है, जो माउण्ट आबू के देलवाड़ा मन्दिर के समरूप है।

कुम्भश्याम मन्दिर : 1448 ई. में राणा कुम्भा द्वारा निर्मित इस मन्दिर में एक मण्डप, एक बरामदा एवं एक खुला परिक्रमा मार्ग है। यह मन्दिर मूल रूप से वराह को समर्पित है जो कि भगवान विष्णु के अवतार थे।

मीराबाई का मन्दिर : कुम्भश्याम मन्दिर के दक्षिण में मीराबाई का मन्दिर है जिसे वर्ष 1524 ईस्वी में मीराबाई के ससुर राणा सांगा ने उनकी पूजा के लिए बनवाया था। गिरधर गोपाल या श्रीकृष्ण की मूर्ति को इस मन्दिर में स्थापित किया गया था। मेड़ता के राव रतन सिंह की बेटी मीरा का विवाह राणा सांगा के सबसे बड़े पुत्र राजा भोज से हुआ था, जिनकी शादी के दस वर्ष बाद मृत्यु

हो गई थी। युवावस्था में उनके पति की मृत्यु ने उनके जीवन की दिशा को बदल दिया और उन्होंने स्वयं को पूरी तरह से भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया। महाराणा विक्रमादित्य के शासनकाल के दौरान उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सत्तारूढ़ राजकुमार ने धर्म के प्रति उसकी अत्यधिक भक्ति को पसन्द नहीं किया और उसे इन गतिविधियों से दूर रहने हेतु मजबूर किया। यह भी कहा जाता है कि उसने मीराबाई को जहर पिलाकर जान से मारने की साजिश भी रची थी, लेकिन वह बच गई। एक और घटना के अन्तर्गत एक साँप से युक्त बॉक्स को उसके पास भेजा गया ताकि वह सर्पदंश की शिकार हो जाए। इन परिस्थितियों ने उसे मेवाड़ छोड़ने के लिए मजबूर किया और वह मेड़ता चली गई। यहाँ उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की प्रशंसा में गीत लिखे एवं गाए। कुछ समय बाद मीराबाई ने उत्तर भारत के विभिन्न तीर्थों की यात्रा की। वह भगवान श्रीकृष्ण के प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों के साथ वृंदावन और द्वारिका गई। राणा ने उसे वापस लाने के लिए पुरोहितों एवं राजपूतों को भेजा। किंवदन्ती है कि भगवान श्रीकृष्ण के सामने नृत्य करते समय मीरा हमेशा के लिए भक्तिमय हो गई। प्रतिमा ने अपनी बाँहों को बढ़ाया और वह गायब हो गई। राणा द्वारा भेजे गये सैनिक केवल श्रीकृष्ण की मूर्ति को वापस लाए, जिसकी उन्होंने पूजा की थी। इस मूर्ति को उदयपुर के जनाना महल में पीताम्बरराजजी के मन्दिर में रखा गया।

विजय स्तम्भ : राणा कुम्भा द्वारा 1448 ईस्वी में मालवा और गुजरात के मुस्लिम शासकों पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में निर्मित यह एक विशाल नौ मंजिला स्तम्भ है। यह एक 37.19 मीटर ऊँची संरचना है, जो हिन्दू देवी–देवताओं की उत्कृष्ट मूर्तियों की छवि को उकेरा गया है। यह भारतीय वास्तुकला का एक अनूठा उदाहरण है, जो भारत के प्रत्येक धर्म के प्रतीकों का प्रतिनिधित्व करता है। आज अरबी के शिलालेख में हिन्दू के अतिरिक्त केवल शेष प्रतीक अल्लाह के हैं। यह टॉवर शहर के नीचे के किसी भी भाग से दिखाई देता है और एक मनोरम दृश्य प्रदान करता है। यह लाखा के पुत्र सीताधर जैता द्वारा डिजाइन किया गया था, जो उनके तीन बेटों नपा, पूजा और पोमा की सहायता से बनाया गया था। टॉवर के शीर्ष पर पहुँचने के लिए 157 सीढ़ियों की चढ़ाई करते हुए आस–पास का सुन्दर नज़ारा देखा जा सकता है।

कीर्ति स्तम्भ : यह एक 24.5 मीटर ऊँचा टॉवर है जिसे 14वीं शताब्दी में बनाया गया था। यह जैन धर्म के पहले तीर्थंकर भगवान आदिनाथ को समर्पित है। यह एक सात मंजिला स्तम्भ है जिसे दिगम्बर जैन बघेरवाल सम्प्रदाय के श्रेष्ठी जीजा एवं पूण्यासिंघ ने बनवाया था। इसके चारों कोनों पर दिगम्बर शैली में श्री आदिनाथजी की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं, जिनमें से प्रत्येक पाँच फीट ऊँची है और अन्य जगहों पर जैन देवताओं की कई छोटी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं।

पद्मिनी पैलेस : यह वह महल है, जहाँ से अलाउद्दीन खिलजी को रानी पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देखने की अनुमति दी गई थी। इसे एक तालाब के केन्द्र में एक मण्डप के साथ बनाया गया है। कहा जाता है कि पद्मिनी इस मण्डप में बैठी थी और अलाउद्दीन को महल में एक दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देखने की अनुमति दी गई थी। उसकी सुन्दरता से मुग्ध होकर सुल्तान ने किले की घेराबन्दी कर दी, लेकिन उसे रानी की जगह राख मिली।

कालिका माता मन्दिर : यह मूल रूप में 8वीं शताब्दी में भगवान सूर्य को समर्पित मन्दिर था और 14वीं शताब्दी में इसे देवी कालिका माता मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। यहां पर नवरात्रि के दौरान मेलों का आयोजन किया जाता है और विभिन्न स्थानों से भारी संख्या में तीर्थयात्री माताजी के दर्शनार्थ यहाँ उत्साहपूर्वक आते हैं।

मोहर मगरी : चितरंग की अर्द्ध–पृथक पहाड़ी की ओर देखती हुई चित्रांग–मोरी की टंकी से दक्षिणी गढ़ तक की दूरी लगभग तीन चौथाई मील है। दक्षिणी गढ़ को चित्तौरी बुर्ज के रूप में जाना जाता है, जहाँ से मोहर मगरी 1500 फीट नीचे स्थित है। एक किंवदंती है कि अकबर ने घेराबन्दी के दौरान मिट्टी से भरी हुई प्रत्येक टोकरी के लिए एक मोहर का भुगतान करके इस स्थान को ऊँचा उठाया था। अकबर के शासनकाल की मोहरें यहाँ पायी गई हैं। यहाँ से उत्तर–पूर्व की ओर एक ऊँचा उठा हुआ मंच है, जहाँ मौर्य राजाओं के राज्याभिषेक समारोह होते थे। किले के उत्तर में गौरा और बादल, रानी पद्मिनी के चाचा और चचेरे भाई, जिन्होंने अलाउद्दीन खिलजी की सेना के खिलाफ बहादुरी से लड़ाई लड़ी एवं मारे गये थे, की छतरियाँ स्थित हैं।

विजय स्तम्भ

विजय स्तम्भ

कीर्ति स्तम्भ एवं प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ जैन मन्दिर

रानी पद्मिनी महल

विजय स्तम्भ : महाराणा कुम्भा ने मालवा के सुल्तान पर विजय की स्मृति में 37.19 मीटर ऊँचे इस भव्य स्तम्भ का निर्माण 1448 ई. में करवाया था। विष्णु को समर्पित यह स्तम्भ नौ मंजिला है जिसकी प्रत्येक मंजिल के सामने खुला हुआ छज्जा है। स्तम्भ के ऊपरी तल तक जाने हेतु अन्दर से सोपान बने हुए हैं। सबसे ऊपरी तल पर स्थित शिलालेखों में चित्तौड़ के शासक हमीर से राणा कुम्भा तक वंशावली उत्कीर्ण है। संपूर्ण स्तम्भ वास्तु शिल्प से आच्छादित है, जिनमें देवी–देवताओं, ऋतुओं, शस्त्रों एवं वाद्ययंत्रों के देवता उत्कीर्ण हैं। देवी–देवताओं के नाम भी उत्कीर्ण किए हुए हैं। पाँचवी मंजिल पर स्तम्भ के वास्तुकार जैता एवं इनके तीन पुत्रों नपा, पूजा और पोमा के नाम उत्कीर्ण है।

कीर्ति स्तम्भ : प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित इस भव्य स्तम्भ का निर्माण बघेरवाल सम्प्रदाय के श्रेष्ठी जीजा एवं पूण्यासिंघ ने विक्रम संवत् 1357 (1301 ई.) में करवाया। 24.5 मीटर ऊँचा छः मंजिला स्तम्भ चौकोर जगती पर स्थित है जिसमें ऊपरी मंजिल तक पहुँचने के लिए अन्दर से सोपान बने हैं, जहाँ 12 स्तम्भों पर आधारित एक मण्डप है। निचले तल के बाह्य भाग में चारों दिशाओं में चार तीर्थंकरों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ऊपरी मंजिलों को सैंकड़ों मानव आकृतियों से अलंकृत किया गया है। इसके समीप ही ऊँचे स्थल पर स्थित चौदहवीं शताब्दी में निर्मित जैन मन्दिर है जो कि योजना में गर्भगृह तथा मण्डप युक्त है। मन्दिर का बाह्य भाग मूर्तियों से अलंकृत है।

कालिका माता मन्दिर

मोहर मगरी – वृहद् स्वरूप

हल्दीघाटी : महाराणा प्रताप और मुगल सम्राट अकबर के मध्य 1576 ईस्वी में प्रसिद्ध युद्ध उदयपुर से 40 कि.मी. दूर हल्दीघाटी में हुआ था। हल्दीघाटी राजस्थान की अरावली पहाड़ियों में स्थित खमनोर और बलीचा गांव के बीच एक संकरा पहाड़ी दर्रा है जो राजसमन्द और उदयपुर जिलों को जोड़ता है। ऐसा माना जाता है कि हल्दीघाटी नाम की उत्पत्ति इस क्षेत्र की हल्दी अथवा पीले रंग की मिट्टी से हुई है। सम्राट अकबर की सेना का नेतृत्व आमेर (जयपुर) के राजा मान सिंह प्रथम ने किया था। हल्दीघाटी की लड़ाई मुगल और राजपूत सेनाओं के मध्य भूमि पर कब्जा करने या उसे पुनः प्राप्त करने के लिए हुए कई भयंकर संघर्षों में से एक नहीं थी। यह राजपुताना सम्मान की लड़ाई थी। अकबर एकमात्र राजपूत राज्य को कुचलने एवं अपने अधीन करने के लिए दृढ़ था। अन्ततः उसने मेवाड़ को जीतने के लिए एक दुर्जेय सेना भेजी। महाराणा प्रताप ने अकबर को चुनौती देना जारी रखा और हल्दीघाटी में मुगल सेनाओं का डटकर सामना किया।

यह पहाड़ी दर्रा एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। मुगल सेना ने हल्दीघाटी की संकड़ी और गहरी घाटी के माध्यम से चढ़ाई की तो वीर भील आदिवासियों ने उन पर तीर–कमानों से हमला कर अकबर की सेना के कई प्रयासों को विफल कर दिया। दोनों सेनाएँ एक बड़े मैदान ''खमनोर की रक्त तलाई'' में 18 जून, 1576 में आमने–सामने हो गई, जहां इतिहासकारों के अनुसार चार घंटे तक चले युद्ध में हजारों लोग मारे गये। युद्ध में महाराणा प्रताप ने अपने कुछ वफादार यौद्धाओं को खो दिया, जिनमें झाला मान, हकीम खाँ सूरी, राजाराम शाह, भीम सिंह डोड़िया, रामदास राठौड़, शालिवाहन तानसर, प्रताप सिंह तंवर, भीलू राणा, वीर प्रधान भामाशाह, वीर पुरोहित जगन्नाथ, कल्याण पोड़ियार, मान सिंह सज्जावत आदि प्रमुख थे। युद्ध एक गतिरोध में समाप्त हो गया और महाराणा प्रताप और उनके अनुयायी मेवाड़ की ऊँची पहाड़ियों पर वापस चले गये।

महाराणा प्रताप ने इस युद्ध में अपने प्रिय घोड़े 'चेतक' को भी खो दिया था। 'चेतक' जिसकी वीरता और कर्त्तव्य की गाथा उसके सवार की तरह अमर है। हल्दीघाटी के युद्ध में चेतक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस दिन चेतक कुछ अलग दिख रहा था। प्रताप ने घोड़े के मुख पर सूँड और दाँतों सहित हाथी का मुखौटा लगा रखा था। प्रताप ने ऐसा मान सिंह के हाथी को भ्रमित करने के लिए किया था। चेतक ने केवल तीन टाँगों पर एक चौड़ी नदी कूद कर महाराणा प्रताप को सुरक्षित निकाला। अनेक चोटों के कारण चेतक घातक रूप से घायल हो गया था और 18 जून, 1576 को उसकी मृत्यु हो गई। महाराणा प्रताप ने अपने घोड़े के लिए हल्दीघाटी से लगभग 3 कि.मी. दूर बलीचा नामक गांव में, जहाँ चेतक ने अंतिम साँस ली, एक स्मारक बनवाया। यह पहाड़ियों से घिरा एक सुरम्य स्थल है। कर्नल टॉड ने हल्दीघाटी की तुलना यूनान के ''थर्मोपाइल'' से की, जो मेवाड़ के सर्वोत्तम रक्त से सिंचित थी।

हल्दीघाटी का युद्ध क्षेत्र – खमनोर की रक्त तलाई : काल्पनिक परिदृश्य

हल्दीघाटी दर्रा

चेतक स्मारक

एक पाँव से घायल हो जाने के बाद भी साहसी चेतक अपने स्वामी महाराणा प्रताप को संकटापन्न स्थिति से रक्त–तलाई से हल्दी घाटी के इस पार सुरक्षित ले आया। अपने प्राणों की बाजी लगाकर अंतिम नाले को लांघते हुए चेतक लड़खड़ा कर गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

चेटक की स्मृति में यह स्मारक बनाया गया है।

चेटक समाधी स्थल

हल्दीघाटी में हल्दी के रंग की मिट्टी

चेटक के प्राण पखेरू उड़ने के समय शोक संतप्त महाराणा प्रताप एवं उनके सहयोगी

महाराणा प्रताप : महाराणा प्रताप का भारत के इतिहास में एक अनूठा स्थान है। पराक्रमी मुगलों से अल्प जनशक्ति के साथ मुकाबला करने का उनका बेमिसाल उदाहरण दुनिया के इतिहास में दुर्लभ है। जीवन के कई उतार–चढ़ावों के बीच हमेशा सिर ऊँचा रखने वाले अजेय महाराणा प्रताप से किसी की तुलना नहीं की जा सकती। अपनी मातृ–भूमि की स्वतंत्रता और भारतीय मूल्यों के संरक्षण के लिए तब तक संघर्ष किया जब तक उन्होंने अंतिम साँस नहीं ले ली।

1576 ईस्वी में हल्दी घाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप ने अदम्य साहस और शौर्य का परिचय दिया। प्रताप एकमात्र हिन्दू राजा थे जिन्होंने अपनी अल्प सेना के साथ अपनी मातृ–भूमि की रक्षा की और करीब 25 वर्षों के लम्बे समय तक कठिन संघर्ष किया और वह भी उस समय की सबसे बड़ी शक्ति के विरुद्ध खड़े होकर।

महाराणा प्रताप एक महान् सेनापति, वीर यौद्धा और सफल संगठनकर्त्ता थे। उन्होंने भारत में छापामार युद्ध नीति की शुरूआत की जिसे बाद में महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी और पंजाब के महाराणा रणजीत सिंह ने भी अपनाया।

महाराणा प्रताप संग्रहालय, हल्दीघाटी : वीरता, बलिदान और महान् ऐतिहासिक भूमि हल्दीघाटी में श्री मोहन जी श्रीमाली ने अपने कठिन परिश्रम, समर्पित प्रयासों एवं अल्प आर्थिक स्रोतों से खमनौर और बलीचा गांव के मध्य चेतक मगरी के पश्चिम में एक ऊँची पहाड़ी पर महाराणा प्रताप संग्रहालय स्थापित किया। इस कल्पनाशील संग्रहालय का उद्घाटन राजस्थान के पूर्व राज्यपाल श्रीमान् अंशुमान सिंह के द्वारा दिनांक 19 जनवरी, 2003 को अनेक गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति में हुआ।

संग्रहालय में युगपुरुष महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रभावशाली ढंग से प्रतिस्थापित किया गया है। महाराणा प्रताप का जन्म 9 मई, 1540 ई. को कुंभलगढ़ किले में हुआ था। वे मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे, जिनका राज्याभिषेक 1572 ई. में हुआ। उन्होंने 18 जून, 1576 ई. में मुगल बादशाह अकबर की फौज से रक्त तलाई हल्दीघाटी में वीरता एवं साहस से लोहा लिया। इसी युद्ध में महाराणा प्रताप के स्वामीभक्त घोड़े चेतक ने अपने प्राणोत्सर्ग कर उनका जीवन बचाया। महाराणा प्रताप ने मुगलों के विरुद्ध छापामार रणनीति अपनाई तथा चावण्ड को 1585 ई. में अपनी तीसरी राजधानी बनाया। महाराणा प्रताप का देहावसान 1597 ई. में चावण्ड में होने पर महाराणा के प्रबल दुश्मन मुगल बादशाह अकबर की आँखें भी भर आई थी।

इन्हीं मुख्य घटनाओं पर आधारित एक लघु फिल्म के माध्यम से महाराणा प्रताप के जीवन में घटित सभी घटनाओं का चित्रण किया गया है, जिसे यहां पर आने वाले पर्यटकों को दिखाया जाता है। इसी प्रकार इस परिसर में महाराणा प्रताप के जीवन से जुड़े के कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों एवं दृष्टान्तों को भी जीवन्त रूप में प्रदर्शित गया है।

हल्दीघाटी की भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इस संग्रहालय में महाराणा प्रताप के बारे में सभी जानकारी प्रदान करने की पूरी कोशिश की गई है एवं उस दौर में वापस ले जाने के लिए लगभग हर चीज को प्रदर्शित करते हुए प्रत्येक पहलू को जीवन्त रूप से दर्शाया गया है। यह संग्रहालय लगभग 15000 वर्ग मीटर क्षेत्र में बने चेतक स्मारक के पास स्थित है। यह क्षेत्र पूर्व में वीरान था। संग्रहालय में आकर्षक मॉडल के रूप में इतिहास की जानकारी को प्रदर्शित करने का उत्तम प्रयास किया गया है, जिसमें मेवाड़ के शाही प्रतीक की झाँकी, पन्नाधाय का बलिदान, महाराणा प्रताप अपने मंत्रियों और प्रमुखों के साथ अपनी रणनीतियों पर चर्चा करते हुए चित्रण, प्रताप का अपने घोड़े चेतक के साथ मिलाप, प्रताप के जीवन के कई रोमांचक दृश्य, जंगल, घास की रोटी खाना, गाड़िया लौहारों द्वारा घरों में न रहने की प्रतिज्ञा करना, चित्तौड़गढ़ के महत्वपूर्ण दृश्य और प्रताप के जीवन से जुड़ी अन्य घटनाएँ प्रमुख हैं। इसमें कई मॉडल फाइबर से बने हुए हैं जो विद्युत से संचालित होते हैं और संगीत, ध्वनि व प्रकाश के प्रभाव से जीवंत हो उठते हैं। साथ ही उन विभूतियों पर भी प्रकाश डाला गया हैं जो हल्दीघाटी की लड़ाई से जुड़े हुए थे। इसके अलावा प्रदर्शनी में मीरा बाई और मेवाड़ वंश के महाराणाओं के चित्र भी हैं जिनमें महाराणा कुम्भा, महाराणा संग्राम सिंह, महाराणा उदयसिंह एवं महाराणा अमर सिंह आदि शामिल थे।

मुख्य द्वार

मुख्य द्वार

संग्रहालय भवन

संग्रहालय भवन

संग्रहालय में स्थापित झलकियाँ

संग्रहालय में विकसित छोटी तलाई

हमारी प्राचीन संस्कृति से जुड़ी हुई कई वस्तुएं, जैसे रेहट (कुओं से पानी खींचने के लिए इस्तेमाल की जाती थी), तेल की घाणी (कोल्हू से तेल निकालने के लिए), रथ, बैलगाड़ी, कृषि उपकरण, संगीत वाद्ययंत्र, कपड़े, बर्तन आदि शामिल हैं। साथ ही विभिन्न जातियों की पारम्परिक जीवन शैली और कई तरह के हथियारों को भी प्रदर्शित किया गया है। यहाँ पर एक विशाल पुस्तकालय भी है जो ज्ञान का खजाना है, खासकर शोधकर्त्ताओं के लिए। महाराणा प्रताप की जीवनी पर लाइट एण्ड साउण्ड शो यहां एक और खास आकर्षण है। ग्रामीण उद्योग और हस्तशिल्प उत्पाद जैसे आकर्षक मौलेला टेराकोटा आइटम भी प्रदर्शित किये गये हैं। एक छोटी कृत्रिम झील भी पर्यटकों को आकर्षित करती है। इस संग्रहालय को नवीन रूप में परिवर्तित किया जा रहा है।

बलीचा क्षेत्र चेती गुलाब के लिए प्रसिद्ध है। संग्रहालय में न केवल गुलाब शरबत बल्कि गुलाब जल एवं गुलकन्द बनाने की प्रक्रिया भी प्रदर्शित की गई है। इस हेतु स्थानीय ग्रामीणों को प्रशिक्षित भी किया जाता है। यहाँ पर चेती गुलाब से गुलाब जल, गुलकन्द एवं अन्य जड़ी–बूटियों का अर्क एक लघु उद्योग के रूप में फल–फूल रहा है। अनेक ग्रामीण व्यक्ति इस कार्य में समर्पित रूप से अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्मारक हल्दीघाटी : राजस्थान सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्मारक हल्दीघाटी का लोकार्पण एवं महाराणा प्रताप की प्रतिमा का अनावरण 21 जून, 2009 को किया गया। भारतीय इतिहास में हल्दीघाटी का युद्ध महत्वपूर्ण युद्धों में से एक है। यह युद्ध मेवाड़ के महाराणा प्रताप एवं अकबर की मुगल सेना के बीच 18 जून, 1576 को लड़ा गया था। इस घाटी की मिट्टी का प्राकृतिक रंग हल्दी जैसा होने के कारण इसे हल्दीघाटी के नाम से जाना जाता है।

यह राष्ट्रीय स्मारक महाराणा प्रताप की बहादुरी, शौर्य, स्वाधीनता व देशभक्ति को समर्पित है। इसके निकट महाराणा प्रताप के स्वामीभक्त घोडे 'चेतक' की स्मृति में समाधि स्थल, अकबर की सेना का पड़ाव स्थल बादशाही बाग एवं युद्ध स्थल रक्त तलाई स्थित है। यह स्मारक महाराणा प्रताप संग्रहालय के दक्षिण में एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। सबसे ऊँचे स्थल पर महाराणा प्रताप की चेतक घोड़े पर विराजित प्रतिमा को पेडस्टल पर स्थापित किया गया है। प्रतिमा के चारों ओर कोटास्टोन जड़ित बड़ा चौक है, जहां से स्वामीभक्त घोड़े चेटक का समाधि स्थल, बादशाही बाग एवं युद्ध स्थल रक्त तलाई को देखा जा सकता है। यहाँ से महाराणा प्रताप संग्रहालय जो नीचे की ओर निर्मित है, उसकी भव्यता को भी निहार सकते हैं। इस स्मारक के निर्माण एवं उससे लगे उद्यान पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

महाराणा प्रताप संग्रहालय, हल्दीघाटी

महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्मारक हल्दीघाटी

हल्दीघाटी में स्थित शाही बाग, जहां मुगल सेना का पड़ाव रहा

मायरा की गुफा (गोगुन्दा) : उदयपुर के गोगुन्दा के पास ऐतिहासिक मायरा की गुफा महाराणा प्रताप के बलिदान और शौर्य गाथा की गवाह रही है। राजस्थान के ऐतिहासिक स्थलों में शामिल यह एक ऐसी ही धरोहर है जिसका नाम लगभग गुमनाम सा है। देश में जब मुगल सम्राट अकबर का शासन था, तब वह भारत के सभी राजा–महाराजाओं को अपने अधीन कर मुगल साम्राज्य का ध्वज फहराना चाहता था। मेवाड़ की भूमि को मुगल आधिपत्य से बचाने हेतु महाराणा प्रताप ने प्रतिज्ञा की थी कि–''जब तक मेवाड़ आजाद नही होगा, मैं महलों को छोड़ जंगलों में निवास करूंगा, स्वादिष्ट भोजन को त्याग कंद–मूल, फलों से ही पेट भरूंगा, किन्तु अकबर का आधिपत्य कभी स्वीकार नहीं करूंगा।'' यह गुफा उनका निवास स्थल एवं शस्त्रागार रही थी।

यह गुफा महाराणा प्रताप की राजतिलक स्थली गोगुन्दा से करीब 7–8 कि.मी. दूर स्थित दुलावतों का गुढ़ा गांव में अरावली की पहाड़ियों के घने वन क्षेत्र में स्थित है, जो उदयपुर से करीब 45 कि.मी. की दूरी पर है। इस स्थल पर गोगुन्दा से हल्दीघाटी–लोसिंग रोड पर गणेशजी का गुड़ा गांव से पूर्वी दिशा में सामने की ओर एक उबड़–खाबड़ पथरीली रोड ऊपर की ओर जाती है, जिससे वहां तक पहुंचा जा सकता है। महाराणा प्रताप और हल्दीघाटी के युद्ध से जुड़ी होने के कारण मायरा की गुफा राजस्थान के इतिहास में अपना विशेष महत्व रखती है। हल्दीघाटी की लड़ाई में इस गुफा का बहुत अहम् योगदान रहा था। मुगल शासक अकबर से हुए संघर्ष के दौरान महाराणा को राजमहलों से दूर रहकर अपना युद्ध जारी रखने और सुरक्षित रहने के लिए अनेक गुप्त और सुरक्षित स्थान तलाशने पड़े थे। इन्हीं स्थानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान ''मायरा की गुफा'' है। शरीर की नसों जैसी आकृति में बनी इस प्राकृतिक गुफा को हल्दीघाटी की लड़ाई के दौरान महाराणा प्रताप ने अपना शस्त्रागार बनाया था, इसलिए इस गुफा को महाराणा गुफा भी कहा जाता है।

महाराणा प्रताप ने मायरा की गुफा में घास की रोटी खाकर दिन गुजारे थे। प्रताप यहां पर गुप्त मंत्रणाएँ भी किया करते थे। इस गुफा की खासियत यह है कि बाहर से देखने पर इसका प्रवेश द्वार दिखाई नहीं देता है। यही कारण था कि इस गुफा के एक हिस्से को महाराणा प्रताप ने हथियार रखने के लिए तैयार किया था। इसमें जानवरों को रखने के लिए अलग से कमरे और रसोईघर भी था। बताया जाता है कि इन कमरों में प्रताप के स्वामीभक्त घोड़े चेतक को रखा जाता था, इसलिए इसे आज भी पूजा जाता है। गुफा के अन्दर माँ हिंगलाज का एक मन्दिर भी बना हुआ है। इस गुफा में जाने के तीन अलग–अलग रास्ते हैं जिसकी टेढ़ी–मेढ़ी रचना के कारण यह गुफा किसी भूल–भुलैया जैसी लगती है तथा इसे समझ पाना शत्रुओं के लिए असंभव था। अरावली की पहाड़ियों के बीच स्थित होने के कारण यह स्थल दुर्गम होने के बावजूद अत्यन्त रमणीय है। इस गुफा के ऊपर की पहाड़ी से एक प्राकृतिक झरना भी गिरता है जो वर्षा ऋतु के दिनों में अत्यन्त आकर्षक हो जाता है। ऐतिहासिक महत्व की स्थली होने के बावजूद इसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। आज भी इस गुफा तक पहुँचना किसी साहसिक कार्य से कम नहीं है। यहाँ पहुंचने के लिए कोई अच्छी सड़क नहीं है, फिर भी कई लोग उदयपुर क्षेत्र की इस विशालतम गुफा को देखने के लिए एडवेन्चर टूरिज्म के रूप में यहाँ पर आते हैं।

महाराणा प्रताप से संबंधित यह स्थल मेवाड़ की विरासत है तथा इसके साथ ही महाराणा प्रताप से जुड़े बेरी कुआँ, खुंटा की घाटी आदि स्थलों को भी संरक्षित किया जाना चाहिये। पर्यटकों को मेवाड़ के इतिहास से रूबरू कराने के लिए चल रहे मेवाड़ कॉम्पलेक्स प्रोजेक्ट में गोगुन्दा क्षेत्र की मायरा की गुफा को भी शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत इस गुफा का जीर्णोद्धार किया जायेगा। मुख्य सड़क से गुफा तक संपर्क सड़क बनाई जायेगी। गुफा में लेंड स्केपिंग कर झरने को आकर्षक रूप दिया जायेगा। पर्यटकों के लिए अन्य जनसुविधाएँ उपलब्ध कराई जायेगी। गुफा के प्रस्तावित जीर्णोद्धार एवं सौन्दर्यीकरण उपरान्त इसके उत्तम रखरखाव एवं प्रबन्धन के लिए सी.एस.आर. के अन्तर्गत इसे किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान को दिया जाना उचित रहेगा।

चावण्ड (सराड़ा) : उदयपुर से लगभग 60 कि.मी. की दूरी पर स्थित चावण्ड गांव सघन वन क्षेत्र एवं अरावली पहाड़ियों के पठारी भाग में बसा हुआ है, जो सराड़ा तहसील के अन्तर्गत आता है। यहां पर प्राचीनकाल से भील जनजाति के लोग निवास करते थे।

एक किवंदन्ती है कि हल्दीघाटी युद्ध (1576 ई.) के बाद महाराणा प्रताप बुरी तरह से आहत हुए तथा उन्होंने 1585 ई. में चावण्ड को अपनी नई राजधानी बनाया और जीवन के अंतिम 12 वर्षों तक यहीं पर रहे। चावण्ड गांव से सटी हुई पहाड़ी पर महाराणा प्रताप ने महल बनवाये थे, जो वर्तमान में खण्डहर के रूप में विद्यमान है।

महाराणा प्रताप ने यहाँ पर चामुण्डा देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह मन्दिर अभी भी एक आदर्श स्थिति में मौजूद है। उन्होंने प्रशासनिक दृष्टिकोण से अपनी राजधानी के चारों ओर दस से एक कि.मी. के दायरे में लगभग 16 ठीकाने बनाये। उनके वफ़ादार भीलों के लिए कई गुप्त सैन्य भण्डार, महल, मन्दिर और भवन भी बनाये गये थे।

29 जनवरी, 1597 में 57 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया तथा उनका अंतिम संस्कार भी पास के गाँव बण्डोली में एक छोटी–सी नदी के किनारे पर किया गया था। यहां पर स्मारक स्वरूप एक छतरी भी स्थित है। चावण्ड के पास खेजड़ नामक एक प्राकृतिक झील स्थित है, जिसके मध्य में महाराणा प्रताप की स्मृति में एक सुन्दर स्मारक बनाया गया है, जिसमें उनकी प्रतिमा उनके चार घनिष्ठ सहयोगियों राणा पूँजा, हकीम खाँ सूरी, झाला मान और दानवीर भामाशाह के साथ स्थापित है। वर्तमान में यह स्थल राजस्थान पर्यटन विभाग के नियंत्रण में है।

।। श्री एकलिंग जी ।। **।।श्री राम जी ।।**

हिन्दू सूर्य महाराणा प्रताप सिंह जी

इनका जन्म वि.सं. 1597 ज्येष्ठ शुक्ल 3 को हुआ। राज्याभिषेक वि. सं. 1629, 28 फरवरी सन् 1572 को हुआ। मुगल सम्राट अकबर के विख्यात् सेनापति आमेर कुँवर मानसिंह को हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में वि.सं. 1633 विद् ज्येष्ठ, शुक्रवार ता. 31 मई सन् 1576 ई. को परास्त किया। वि.सं. 1636 सन् 1579 में महल और चामुण्डा माता का मन्दिर बनवाया और वि.सं. 1653 माघ शुक्ला– ।। ता. 19 जनवरी सन् 1597 को यहीं देहान्त हुआ। वि.सं. 1994 में वर्तमान महाराणा साहब श्री भूपाल सिंह जी ने इस छत्री का जीर्णोद्धार कराया श्रावण शुक्ल–1।

श्री ऋषभदेव मन्दिर : उदयपुर से लगभग 68 कि.मी. दूर धूलेव में स्थित प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के मन्दिर को केसरियाजी या केसरियानाथजी के नाम से भी जाना जाता है। यह प्राचीन तीर्थ अरावली पर्वतमाला की कन्दराओं के मध्य कोयल नदी के किनारे पर स्थित है। ऋषभदेव मन्दिर को जैन धर्म का सबसे पवित्र एवं प्रमुख तीर्थ माना जाता है। यह मन्दिर न केवल जैन धर्मावलम्बियों अपितु वैष्णव हिन्दुओं, मीणा, भील, आदिवासियों एवं अन्य जातियों द्वारा भी पूजनीय है। भगवान ऋषभदेव को तीर्थ यात्रियों द्वारा अत्यधिक मात्रा में केसर चढ़ाए जाने के कारण ''केसरियाजी'' कहा जाता है। यहाँ प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान आदिनाथ या ऋषभदेव जी की 41 इंच ऊँची श्यामवर्ण की तेजस्वी चमत्कारी प्रतिमा पद्मासन अवस्था में विराजमान है। यहाँ के आदिवासियों के लिए ये केसरिया जी ''कालिया जी बाबा'' के नाम से प्रसिद्ध एवं पूजनीय है।

विश्व की प्राचीनतम् प्रतिमाओं में श्री केसरियानाथजी तीर्थ स्थित मूलनायक की प्रतिमा हजारों वर्ष प्राचीन मानी जाती है। इस प्रतिमा को लंकाधिपति रावण द्वारा पूजा जाता था। सीता के हरण पर अयोध्या नरेश भगवान श्री राम द्वारा उक्त प्रतिमा लंका से दैविक शक्ति द्वारा वरपदनगर (बड़ौदा जिला डूंगरपुर) के बाहर वटवृक्ष के नीचे प्रकट हुई, जहां अभी भी प्रभु के चरण पादुका स्थापित है। यहां से पुनः दैविक शक्ति द्वारा ऋषभदेव नगर से लगभग एक किलोमीटर दूर वृक्ष के नीचे भूमि में उक्त प्रतिमा दबी हुई थी, तब धुलिया भील के स्वप्न में परमात्मा आये एवं इसे निकालने का दृष्टान्त दिया। धुलिया भील ने खुदाई कर इस प्रतिमा को निकाला तथा उपरोक्त स्थान पर चरण पादुका स्थापित करवाई एवं प्रतिमा को बैलगाड़ी से एक अन्य स्थान पर ले जाते समय रास्ते में रुकने पर उसी स्थान पर प्रतिमा बिराजमान कर भव्य मन्दिर का निर्माण सकल जैन समाज ने करवाया, जो आज भी भव्यता एवं प्राचीनता लिए हुए स्थापित है।

भारतवर्ष में यह एकमात्र प्राचीन जैन तीर्थ है जिसमें सभी वर्ग के श्रद्धालुओं की आस्था एवं विश्वास है तथा प्रचलित परम्परा अनुसार दर्शन एवं पूजा करते हैं। मेवाड़ के महाराणा स्व. श्री फतहसिंह जी इनमें अटूट श्रद्धा रखते थे। इसी श्रद्धा स्वरूप उन्होंने भगवान की प्रतिमा पर हीरे जड़ित सोने की आंगी धारण करवाई जो आज भी धारण कराई जाती है। संपूर्ण मन्दिर मूलगमारा, गूढ़मण्डप, नवचौकी, सभामण्डप, बावन देवकुलिकाएँ, शृंगार चौकी, शिखर और कोटबंधी, कलारूपी रचना से संयोजित है।

मन्दिर का प्रथम द्वार नक्कारखाने के रूप में है। इस द्वार पर एक जल घडी बनी हुई है। मन्दिर के समस्त क्रियाकलाप पूजा, पाठ आदि इस घड़ी के मुताबिक ही सम्पन्न करवाए जाते हैं। यहां समय गणना की बेहद प्राचीन परम्परा प्रचलित है। बाहरी परिक्रमा का चौक नक्कारखाने से प्रवेश करते ही आता है। दूसरा द्वार भी वहीं पर है। काले पत्थर के एक–एक हाथी द्वार के दोनों ओर खड़े हुए हैं। हाथी के पास एक हवनकुण्ड उत्तर की तरफ बना हुआ है, जहां नवरात्रि के दिनों में दुर्गा माता का हवन होता है। उक्त मुख्य द्वार के दोनों ओर की ताखों में से एक में ब्रह्मा तथा दूसरे में शिव की मूर्ति स्थापित है। सीढ़ियों के द्वारा इस मन्दिर में जाने की व्यवस्था है। सीढ़ियों के ऊपर के मण्डप में मध्यम कद के हाथी पर बैठी हुई मरुदेवी की मूर्ति है। श्रीमद्भगवतगीता का चबूतरा सीढ़ियों से आगे बायीं तरफ बना हुआ है, जहां भागवत गीता की कथा चौमासे में होती है। मण्डप में 9 स्तम्भों के होने के कारण यह नौ–चौकी के रूप में जाना जाता है। यहां से तीसरे द्वार में प्रवेश किया जाता है।

मन्दिर के उक्त द्वार के बाहर उत्तर के ताख में शिव तथा दक्षिण के ताख में सरस्वती की मूर्ति स्थापित है। यहां पर खुदे अभिलेख के अनुसार यह विक्रम संवत् 1676 में निर्मित हुआ था। तीसरा द्वार 'खेला मंडप' (अंतराल) में पहुंचता है जिसके आगे 'निजमन्दिर' (गर्भगृह) बना है। इसी में ऋषभदेव जी की श्यामवर्ण की प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृह के ऊपर विशाल शिखर बना हुआ है जहां ध्वजादण्ड भी लगा है। खेला मंडप, नौ–चौकी तथा मरुदेवी वाले मंडप की छत गुम्बदाकार बनी है। मन्दिर के उत्तरी, दक्षिणी पार्श्व में देवकुलिकाओं की पंक्तियाँ हैं जिनमें से प्रत्येक के मध्य में मंडप सहित एक–एक मन्दिर बना हुआ है। इन तीनों मन्दिरों को वहां के पुजारी 'नेमिनाथ का मन्दिर' कहते हैं लेकिन शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि इनमें से एक ऋषभदेव का ही मन्दिर है।

ऋषभदेव की प्रतिमा के इर्द–गिर्द इन्द्र आदि देवता बने हुए हैं। इनकी मूर्ति के चरणों में छोटी–छोटी नौ मूर्तियाँ हैं जिन्हें ''नवग्रह या नवनाथ'' के रूप में जाना जाता है। नवग्रहों के नीचे सोलह स्वप्न खुदे हैं। इसके नीचे हाथी, सिंह, देवी आदि की मूर्तियाँ हैं। सबसे नीचे दो बैलों के बीच देवी की मूर्ति बनी है।

इतिहास के पृष्ठों से ...

केशरियाजी तीर्थ : यह तीर्थ उदयपुर से लगभग 68 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। श्री ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा श्याम पाषाण की 41 इंच ऊँची है। यह प्रतिमा बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि मुनिसुव्रत स्वामी (20वें तीर्थंकर) के समय इस प्रतिमा की पूजा रावण द्वारा की गई थी। कालान्तर में यह राजगृही, उज्जैन, बड़ोदा (वटप्रद तीर्थ) में रही। यह भी कहा जाता है कि मयना सुन्दरी ने इसी प्रतिमा के पक्षाल से श्रीपाल को कुष्ठ रोग से मुक्त किया। यह प्रतिमा वि.सं. 908 में बड़ोदा (पटप्रद तीर्थ डूंगरपुर) में प्रकट हुई और बाद में केशरियाजी से करीब एक कि.मी. की दूरी पर वृक्ष में से प्रकट हुई, तब से इसी तीर्थ स्थल पर प्रतिष्ठित है। यतिवर्य श्री दीप विजय जी द्वारा रचित स्तोत्र में लिखा है कि यह प्रतिमा 11 लाख वर्ष तक लंका में रही और लंका से लौटते समय श्री राम इस प्रतिमा को अपने साथ लाए और उज्जैन में इसकी स्थापना की। इसकी पुष्टि झवेर सागर जी महाराज ने संवत् 1947 में प्रकाशित पुस्तक में की है। यह प्रतिमा उज्जैन से बड़ोदा (डूंगरपुर) तथा ऋषभदेव आई। इस क्षेत्र के आदिवासी लोग बड़ी श्रद्धा के साथ इस तीर्थ के दर्शन वंदन करते हैं। इसकी व्यवस्था राज्य सरकार के देवस्थान विभाग द्वारा की जा रही है। यहां पर एक नूतन जिनालय ''गज–मन्दिर'' के रूप में निर्मित किया गया है तथा श्रद्धालुओं हेतु उच्च स्तरीय धर्मशाला, भोजनशाला भी संचालित है।

पश्चिम की देवकुलिकाओं में से एक ठोस पत्थर के बने एक मन्दिर सी रचना है जिस पर तीर्थकरों की बहुत सी छोटी–छोटी मूर्तियां खुदी हुई हैं। इसे लोग गिरनार जी के विम्ब के रूप में जानते हैं। इस प्रकार यहां कुल मिलाकर तीर्थकरों की 22 तथा देवकुलिकाओं की 54 मूर्तियां विराजमान हैं। इन कुल 76 मूर्तियों में से 62 में लेख उपलब्ध हैं, जो बताते हैं कि ये मूर्तियाँ वि.सं. 1611 से वि.सं. 1863 के बीच बनाई गई हैं। ये लेख जैनों के इतिहास की जानकारी की दृष्टि से विशेष महत्व के हैं। तीर्थकर ऋषभदेव की कर्मवती माता ने जो स्वप्न देखें, वे जैन धर्म में बहुत ही पवित्र माने जाते हैं। दिगम्बर सौलह स्वप्न मानते हैं, वहीं श्वेताम्बरों में चौदह स्वप्नों की मान्यता है। भारत पर मुसलमानों के अधिकार के बाद मुसलमान लोग मन्दिरों को नष्ट कर देते थे। अतः ऐसी मान्यता है कि उस समय बने हुए अनेक बड़े मन्दिरों में जान–बूझकर इस्लाम धर्म का कोई पवित्र चिह्न बना दिया जाता था जिससे मुसलमान आक्रमणकारी उसे तोड़ नहीं पाये। पाषाण का एक छोटा सा स्तम्भ नौ–चौकी के मंडप के दक्षिणी किनारे पर खड़ा है जिसके ऊपर, नीचे तथा चारों ओर छोटी–छोटी 10 ताखें खुदी हुई हैं। मुसलमान लोग इस स्तम्भ को मस्जिद का चिह्न मानकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

ऋषभदेव मन्दिर में विष्णु के जन्माष्टमी, जलझूलनी आदि उत्सव मनाये जाते हैं। तत्कालीन महाराणा के इस मन्दिर में प्रवेश से संबंधित एक दिलचस्प बात जुड़ी हुई है। महाराणा इस मन्दिर में द्वितीय द्वार से प्रवेश नहीं करते थे बल्कि बाहरी परिक्रमा के पिछले भाग में बने हुए छोटे द्वार से प्रवेश करते थे। दूसरे द्वार के ऊपर की छत में पांच शरीर और एक सिर वाली एक मूर्ति खुदी हुई है जिसको लोग 'छत्रभंग' कहते हैं। इसके नीचे से प्रवेश करना महाराणा के लिए उचित नहीं माना जाता था।

केसरियाजी में "गज–मन्दिर" एक जैन श्वेताम्बर मन्दिर है, जिसका निर्माण वर्ष 2011 में किया गया जो कीकाभाई प्रेमचन्द ट्रस्ट द्वारा धर्मशाला के रूप में अच्छी तरह से परिचालित है। यहां तीर्थयात्रियों के लिए ठहरने की उत्तम व्यवस्था है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के अनुसार यह एक जैन मन्दिर है एवं इसका प्रशासन जैन समुदाय को सौंपना चाहिये। वर्तमान में इस मन्दिर का प्रशासन राजस्थान सरकार के देवस्थान विभाग द्वारा देखा जा रहा है।

देलवाड़ा और देवीगढ़ पैलेस : एकलिंगजी से 8 कि.मी. एवं उदयपुर से 28 कि.मी. की दूरी पर देलवाड़ा नामक एक छोटा गांव स्थित है, जो कभी मेवाड़ राज्य की जागीर था। देलवाड़ा के झाला परिवार को राजराणा की उपाधि के साथ प्रथम श्रेणी के रजवाड़ों का यह एक ठिकाना था। मेवाड़ राज्य को 16 प्रथम श्रेणी के ठिकानों में विभाजित किया गया था। बड़ी सादड़ी, गोगुन्दा व सलूम्बर के साथ देलवाड़ा 16 रजवाड़ों में से एक था।

15वीं शताब्दी के बाद से देलवाड़ा पर झाला वंश के राजपूतों का शासन था। झाला परिवार की सात पीढ़ियों ने मेवाड़ के महाराणाओं के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। महाराणा उदयसिंह द्वितीय (1537–72 ई.) की दूसरी पत्नी देलवाड़ा के राजराणा जैत सिंह की पुत्री थी। एक ऊंची पहाड़ी पर राजस्थानी वास्तुकला में बना सात मंजिला देवीगढ़ महल 1760 ई. के दशक में बनाया गया था। उत्तर–पूर्व में अरावली पहाड़ियों के मध्य स्थित देवीगढ़ महल उदयपुर की घाटी के मुख्य तीन दर्रों में से एक दर्रे पर स्थित है। वर्तमान में देवीगढ़ पैलेस एक पुरातन होटल और रिसोर्ट है जो 18वीं शताब्दी के मध्य से 20वीं शताब्दी के मध्य तक देलवाड़ा रियासत के शासकों का शाही निवास रहा था। यह महल 8 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है।

दो शताब्दी तक शाही महल के रूप में तथा उसके बाद के 20 वर्षों तक यह महल खण्डहर और वीरान पड़ा रहा। वर्ष 1984 में बैंगलोर निवासी शेखावाटी क्षेत्र के एक उद्यमी परिवार द्वारा इसे अधिगृहीत किया गया। वास्तुकार गौतम भाटिया और नवीन गुप्ता द्वारा मुम्बई के इंटीरियर डिजाइनर राजीव सैनी के सहयोग से 750 लोगों की सशक्त टीम के साथ 15 वर्षों की अवधि में इसके इंटीरियर स्पेस में न्यूनतम् बदलाव के साथ इसे एक लग्जरी होटल के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। महल का अन्दरुनी भाग पारम्परिक एवं समकालीन रचना का सम्मिश्रण है। वर्तमान में यह भारत के बेहतरीन संरचना वाले होटलों में से एक है।

देवीगढ़ पैलेस लगभग 140 फीट ऊँचा होने के साथ 8000 वर्गफीट क्षेत्र में फैला हुआ है। इसमें 23 शानदार सुईट्स हैं, जिनमें प्रत्येक की अपनी अलग ही संरचना है। इस पैलेस में एक दरबार हॉल भी है और यह सभी प्रकार की सुविधाओं जैसे कॉन्फ्रेन्स कक्ष, बार, बिलियर्ड कक्ष, एक कला व मनोरंजन हॉल, एक पुस्तकालय, एक व्यायामशाला आदि से सुसज्जित है।

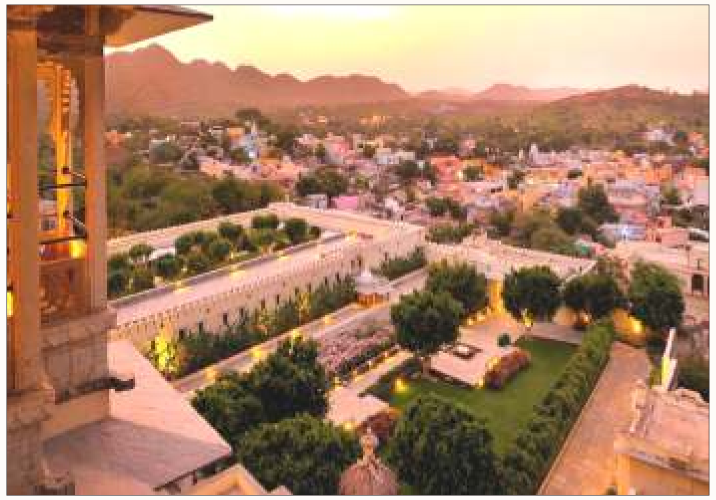

देलवाड़ा और जैन मन्दिर : देलवाड़ा में 16वीं शताब्दी के अनेक मन्दिरों में चार मुख्य मन्दिर हैं जिन्हें ''जैन की बस्ती'' कहा जाता है। इनका हाल ही में जीर्णोद्धार किया गया है। इनमें से तीन मन्दिर तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) तथा एक मन्दिर तीर्थंकर पार्श्वनाथ को समर्पित है।

देलवाड़ा में जैन मन्दिरों का निर्माण सफेद संगमरमर के पत्थरों से किया गया था। बाहर से सादा एवं सख्त होने के बावजूद इन सभी मन्दिरों के भीतरी भाग बारीक नक्काशी से आरूढ़ हैं। प्रत्येक में एक चारदीवारी युक्त आँगन है, जिसे रंग–मण्डप कहा जाता है। आँगन के मध्य तीर्थंकर ऋषभदेव और पार्श्वनाथ की छवि वाला मन्दिर है। प्रवेश द्वार से आँगन तक सुन्दर नक्काशीदार स्तम्भों की एक शृंखला के साथ बड़े प्रांगण के चारों ओर अनेक छोटे मन्दिर स्थित हैं, जिनमें से प्रत्येक में 24 तीर्थंकरों की एक सुन्दर मूर्ति बनी हुई है।

इन मन्दिरों की विशेषता इनकी छत है जो 11 समृद्ध नक्काशीदार संकेन्द्रित छल्लों में गोलाकार आकृति लिए हुए हैं। मन्दिर के बीच की छत को शानदार नक्काशी से सजाया गया है और यह सजावट मध्य लटकन में समाप्त होती है। गुम्बदों की लटकन कमल के फूल की भांति एक बूँद या बिन्दु का निर्माण करती है, जो एक आश्चर्यजनक कार्य है। यह मानवीय आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए पृथ्वी पर आने वाली दिव्य कृपा का प्रतीक है। छत पर ज्ञान की सौलह देवियों की सुन्दर आकृतियाँ उकेरी गई हैं।

इतिहास के पृष्ठों से ...

देवकुल पाटण–देलवाड़ा : यह तीर्थ उदयपुर से नाथद्वारा मार्ग पर 26 कि.मी. दूरी पर राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 8 पर स्थित है। यहां पर चार प्राचीन मन्दिर है जिनमें आदेश्वर भगवान का मन्दिर सबसे प्राचीन है। वि.सं. 1411 की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। प्रतिमा पर लेख इस प्रकार है :–

''संवत् 1411 वर्षे माह वदि 5, दिने बुधे 3 केश वंशे रो नवलखा गौत्रे साधु श्री राम देव भार्या मेला दे तत्पुत्र साधु सहणपाले (नु) भार्या नारिंग दे पुत्र राजलादि सहिते देवकुलपाटणे पूर्वाचल श्री शत्रुन्जय मोर नागकुरिका संहिता प्रति श्री खरतरगच्छे श्री जिन हर्षवर्द्धन सूरि पट्टे श्री जिनचन्द्र सूरि तत्पटे जिन सागर सूरिभयः।'' आबू के देलवाड़ा मन्दिर समूह में श्री आदिनाथ भगवान का मन्दिर भी यहां के मन्दिर की कला को देखकर बनाया है, ऐसा कहा जाता है।

आयड़ तीर्थ : यह प्राचीन तीर्थ आयड़ में स्थित है। आयड़ को प्राचीन काल में आहड़–आटपुर–आघाटपुर–तांबावती नगरी के नाम से जाना गया है। यह एक समृद्धिशाली व्यापारिक केन्द्र होकर मेवाड़ की राजधानी रही है। आयड़ की संस्कृति ईसा पूर्व 2000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। राज्य सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा खनन कार्य कराने से यह प्रमाणित भी हो चुका है। उत्खनन से प्राप्त मूर्तियां, भांडे, मणिये, पाषाणकालीन औजार इत्यादि का संग्रहालय यहीं पर स्थित है एवं उत्खनन का स्थान सुरक्षित होकर आम जनता के लिए खुला है। इस तीर्थ परिसर में श्री पार्श्वनाथ भगवान, श्री शांतिनाथ भगवान, श्री आदीश्वर भगवान, श्री महावीर स्वामी, श्री सुपार्श्वनाथ भगवान आदि के साथ तपोगच्छ के ऐतिहासिक उद्‌गम स्थल है।

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर : इस मन्दिर में स्थापित पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा वि.सं. 1029 में आचार्य श्री यशोभद्रसूरि जी द्वारा की गई थी। इसे उत्थापित कर इसके स्थान पर श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की 41 इंच ऊँची श्वेत पाषाण की प्रतिमा विराजित कराई गई जिसका परिकर 69 इंच ऊँचा है। इस पर कोई लेख अंकित नहीं है लेकिन यह प्रतिमा काफी प्राचीन है व खनन से प्राप्त हुई है। खनन से प्राप्त प्रतिमा को तपागच्छाधिपति जयघोष सूरिश्वर शिष्य जितेन्द्र सूरिश्वर जी व कुलचन्द्रसूरि जी की निश्रा में प्रतिष्ठा वि.सं. 2058 फाल्गुन कृष्णा 13, दिनांक 11 मार्च, 2002 को सम्पन्न हुई। मूल प्रतिमा के परिकर का दरवाजा स्वर्ण रेखा से रेखांकित होने से इसकी सुन्दरता में अभिवृद्धि हो गई। मूल मन्दिर का संपूर्ण जीर्णोद्धार कराया गया एवं 51 देव–कुलिकाओं का नींव से नव निर्माण विपुल प्रमाण से हुआ। इनमें तीर्थंकरों की प्रतिमाऐं स्थापित हैं। उक्त सभी प्रतिमाऐं श्वेत पाषाण की हैं जिनमें क्रमानुसार 1 से 26 तक की प्रतिमाएँ 21 इंच एवं 27–51 तक की प्रतिमाएँ 27 इंच ऊँची हैं।

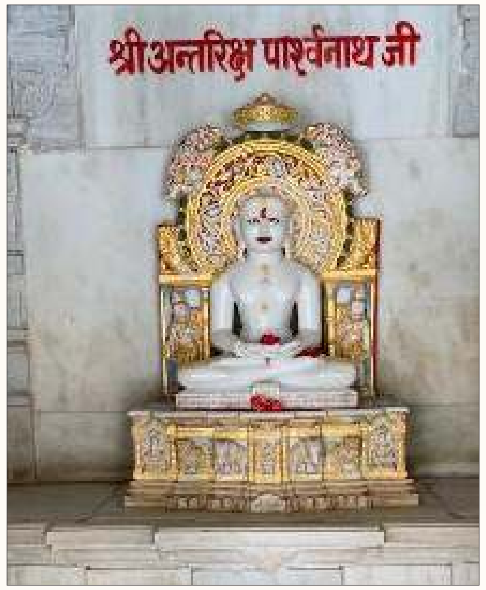

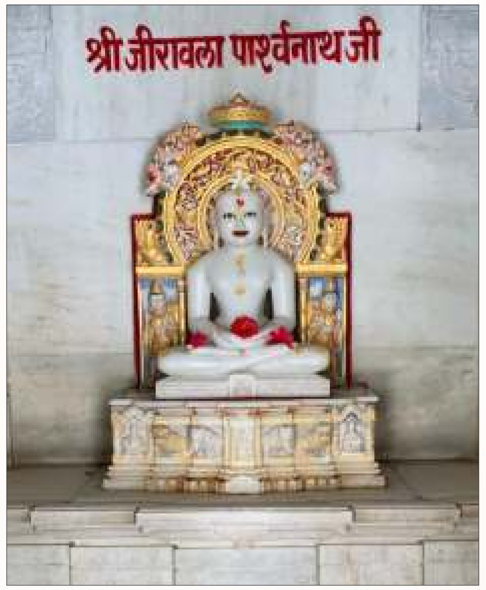

श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर : आयड़ मन्दिर परिसर के मुख्य प्रवेश द्वार के सम्मुख यह मन्दिर स्थित है। इसका निर्माण वि.सं. की 12वीं सदी में हुआ। इस मन्दिर में पूर्व में श्री शांतिनाथ भगवान की श्वेत पाषाण की प्रतिमा स्थापित थी जिस पर वि.सं. 1817 उत्कीर्ण था, जिसे बाद में महावीर स्वामी जिनालय में अस्थायी रूप से स्थापित कर दिया गया था तथा इस प्रतिमा के स्थान पर श्री शांतिनाथ भगवान की ही 23 इंच ऊँची अन्य प्रतिमा जो खनन से प्राप्त हुई थी, उसको स्थापित किया गया है। इसका परिकर भी 41 इंच ऊँचा श्वेत पाषाण का है। परिकर व दरवाजे स्वर्ण जड़ित है। इस मन्दिर से बाहर निकलते समय दाहिनी ओर एक आलिए में श्री सुमतिनाथ भगवान की 19 इंच ऊँची श्वेत पाषाण की प्रतिमा है। बायीं ओर के आलिए में श्री आदिनाथ भगवान की 19 इंच ऊँची श्वेत पाषाण की प्रतिमा है। सभा मण्डप से बाहर निकलते समय दोनों ओर देवरियां बनी हुई हैं। बायीं ओर की देवरी में नागराज की 35 इंच ऊँची साधारण श्याम पाषाण की प्रतिमा है। इसके ऊपर पार्श्वनाथ भगवान की 6 इंच ऊँची प्रतिमा वि.सं. 2058 में प्रतिस्थापित कराई गई। मन्दिर में प्रवेश करते समय दाहिनी तरफ एक ओर देवरी में जगच्चन्द सूरिश्वर महाराज की 25 इंच ऊँची प्रतिमा श्वेत पाषाण से निर्मित है। मन्दिर से नीचे जाते समय बायीं ओर के आलिए में पद्‌मावती देवी की प्रतिमा श्वेत पाषाण की 17 इंच एवं सर्प के छत्र तक 19 इंच ऊँची है। दाहिनी ओर नाकोड़ा भैरव जी की श्वेत पाषाण की प्रतिमा 19 इंच ऊँची है।

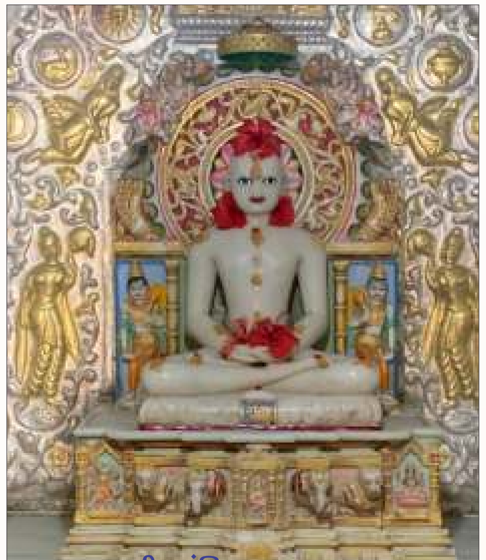
श्री शांतिनाथ भगवान

श्री नाग बावजी

श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर : यह जिनालय तीर्थ संकुल के मुख्य द्वार के सम्मुख है जिसका निर्माण ईसा के पूर्व तीसरी सदी में करवाया गया था। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा अपने दो जन्मों के उपकारी युग प्रधान आचार्य श्री सुहस्तिसूरि जी ने करवाई थी जिसकी साक्षी स्वरूप कवित राजसुन्दरकृत श्री आहड़ मण्डन आदि जिन स्तवन जो वि.सं. 1665 भाद्रपद पूर्णिमा अनुराधा नक्षत्र में रचित है। श्री आदेश्वर भगवान की 41 इंच ऊँची श्वेत पाषाण प्रतिमा और परिकर 61 इंच ऊँचा है। इस प्रतिमा को उत्थापित कर इसकी पुनः प्रतिष्ठा वि.सं. 2058 फाल्गुन कृष्णा 12 रविवार को की गई।

श्री महावीर स्वामी भगवान का मन्दिर : मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान के पीछे अस्थायी मन्दिर का निर्माण कर श्री महावीर भगवान की प्रतिमा स्थापित करायी गई है। श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा 51 इंच ऊँची श्वेत पाषाण की है।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर : यह तीर्थ संकुल से पश्चिम की ओर करीब 200 मीटर की दूरी पर स्थित है जिसका निर्माण वि.सं. 1200 में हुआ था। श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा 23 इंच ऊँची श्वेत पाषाण की है तथा परिकर की ऊँचाई 41 इंच है।

तपोगच्छ की ऐतिहासिक जन्मभूमि : प्रभु महावीर के रूप में पट्टधर तपागच्छ के आद्य आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरि जी म.सा. ने दीक्षा दिन से लगाकर आजीवन आयम्बिल तप की कठोर तपस्या की थी। साथ ही आयड के इन मन्दिरों के पास आयड़ नदी की तप्त बालू में ग्रीष्म की आतापना लेते थे। उस समय मेवाड़ के राणा जैत्रसिंह जी का उधर से निकलना हुआ। इनकी महान् तपश्चर्या और कठोर साधना से प्रभावित होकर राणा श्री ने वि.सं. 1285 अक्षय तृतीया के दिन "तपा" उपाधि से आचार्य श्री को अलंकृत किया एवं अपने आपको धन्य माना। तभी से यह तपगच्छ कहलाया। यहां पर छोटे से उपाश्रय में आचार्य श्री ने महान् तपश्चर्या एवं कठोर साधना की थी। यह उपाश्रय आज भी मौजूद है जिसकी प्राचीनता को सुरक्षित रखकर जीर्णोद्धार किया गया है।

तपागच्छ की मातृभूमि आयड़ तीर्थ का संपूर्ण जीर्णोद्धार परमपूज्य वैराग्य वारिधी आचार्य भगवान श्री कुलचन्द सूरिश्वर जी म.सा. की प्रेरणा, अथक परिश्रम एवं मार्गदर्शन से संपूर्ण होकर पूज्य गच्छाधिपति सिद्धान्त दिवाकर आचार्य भगवन्त श्री जयघोष सूरिश्वर जी म. सा., मेवाड़ देशोद्धारक आचार्य भगवन्त श्री जितेन्द्र सूरिश्वर जी म.सा. एवं वैराग्यवारिधि आचार्य भगवन्त श्री कुलचन्द्र सूरिश्वरजी म.सा., पूज्य साध्वी श्री भगवन्तों एवं विशाल चतुर्विध श्री संघ की उपस्थिति में 16 दिवसीय भव्य महोत्सव एवं संपूर्ण विधि–विधान सहित अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव संवत् 2058 फाल्गुन कृष्णा 13, दिनांक 11 मार्च, 2002 को सम्पन्न हुआ।

भगवान श्री महावीर स्वामी

भगवान श्री वासुपूज्य स्वामी

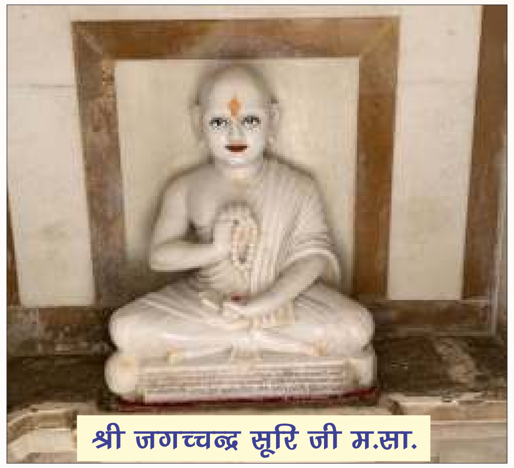

श्री जगच्चन्द्र सूरि जी म.सा.

– शिलालेख –

तपागच्छाद्याचार्य श्री जगच्चंद्र सूरि जी म.सा. की मूल तपस्थली (प्राचीन उपाश्रय)

!! श्री महावीर स्वामिने नमः।। ।।श्री जगच्चन्द्रसूरि सद्गुरुवे नमः।।

।।श्री आत्म – वल्लभ – समुद्र – इन्द्रदिन्न – नित्यानंद सद्गुरुभ्यो नमः।।

भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा में प्रभु वीर के 44वें पट्टधर, आजीवन आयंबिल तपस्वी, कठोर साधक परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् जगच्चंद्र सूरीश्वर जी म. हुए। आयड़ में उन्होंने घोर तपाराधना की थी और अनेक शास्त्रार्थों में विजयश्री प्राप्त की थी तो तत्कालीन राणा जैत्र सिंह ने प्रभावित होकर उन्हें तपा हीरला बिरुद प्रदान किया था, तभी से प्रभु वीर की निर्ग्रन्थ–कोटिक –चांद्र–वनवासी–वडगच्छ नाम से चल रही श्रमण परम्परा को तपोगच्छ नाम से प्रख्याति मिली। आयड़ में आचार्यश्री ने जिस स्थल पर रहकर तप, जप, आराधना, साधना करी, उस ऐतिहासिक तपोमय स्थान की ऊर्जा व पवित्रता सदा कायम रहे, इस उद्देश्य से अत्यंत प्राचीन और जर्जरित बने हुए उपाश्रय का जीर्णोद्धार करवाकर संरक्षित करने की सत्प्रेरणा तपागच्छनभोमणि, पंजाब केसरी परम पूज्य आ. भ. श्रीमद् विजय वल्लभ सूरि समुदाय के वर्तमान गच्छाधिपति तथा आयड़ तीर्थोद्धारक, शांतिदूत आ.भ. श्रीमद् विजय नित्यानंद सूरीश्वर जी म.सा. से प्राप्त हुई। सौभाग्य से उन्हीं की निश्रा में जीर्णोद्धारपूर्वक उपाश्रय का उद्घाटन भी सम्पन्न हुआ। शांतिदूत गच्छाधिपति जी के सदुपदेश से इस उपाश्रय का जीर्णोद्धार वि.सं. 2076 फाल्गुन बदी 6, शुक्रवार, दिनांक 14 फरवरी, 2020 को किया गया।

सर्व सुविधायुक्त धर्मशाला

मन्दिर परिसर में विकसित उद्यान

– शिलालेख –

श्री आदि शांति–सुपार्श्व–शंखेश्वर पार्श्वनाथ–महावीर स्वामिभ्यो नमो नमः श्रीमत पाहीरला जगच्चन्द्र सूरिश्रेभ्यो नमो नमः तपागच्छीय श्रीमद् आत्म–कमल–वीर–दान–प्रेम–भुवन भानु सूरिभ्यो नमो नमः।

श्री आदिनाथ भगवान का जिनालय महाराजा संप्रति ने 2200 साल पूर्व बनवा कर भगवान की प्रतिष्ठा अपने दो जन्म के उपकारी युग प्रधान आर्य सुहस्तिसूरिजी से करवाई। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ के बावन जिनालय की प्रतिष्ठा वि.सं. 1029 में आचार्य श्री यशोभद्रसूरिजी द्वारा होने का उल्लेख प्राप्त है। श्री शांतिनाथजी का जिनालय विक्रम की बारहवी सदी में बना। श्री सुपार्श्वनाथजी का जिनालय – जो तीर्थ संकुल से पश्चिम में करीब 200 मीटर दूर है, इसका निर्माण वि.सं. 1200 में हुआ। वि.सं. 2044 के चातुर्मास में इन सभी मंदिरों के जीर्णोद्धार का निर्णय लिया गया। तद्नुसार मेवाड़ देशोद्धारक पू. आचार्य श्री जितेन्द्रसूरिजी म.सा. की प्रेरणा से एवं वैराग्य वारिधि पू. आचार्य श्री कुलचन्द्रसूरिजी म.सा. के मार्ग दर्शन में वि.सं. 2047 में जीर्णोद्धार कार्य का शुभारंभ हुआ। श्री आदिनाथजी एवं श्री शांतिनाथजी भगवान के जिनालय की नींवें सुदृढ़ कर शिखर तक आमूल चूल जीर्णोद्धार हुआ। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ बावन जिनालय में प्राचीनता के प्रतीक रूप मूल गर्भगृह का जीर्णोद्धार हुआ। शेष संपूर्ण मन्दिर को उतार कर नई नींव खुदवाकर व शिलान्यास कर 51 देवकुलिकाओं का नव निर्माण हुआ। श्री सुपार्श्वनाथजी जिनालय का जीर्णोद्धार हुआ तथा रंग मण्डप दो देवकुलिका, प्रवेश द्वार एवं शृंगार चौकी का नव निर्माण हुआ। तपागच्छ का ऐतिहासिक उद्गमस्थल–प्रभु महावीर के 44वें पट्टधर, तपागच्छ के आद्य आ. श्री जगच्चन्द्रसूरिजी म.सा. को यहीं पर आजीवन आयंबिल तप की घोर तपस्या से एवं दिगम्बराचार्यों के साथ हुए वाद में अभेद्य ही नहीं अपितु विजयी होने से प्रभावित होकर मेवाड़ के राणा जैत्रसिंहजी ने वि.सं. 1285 अक्षय तृतीया के दिन "तपा–हीरला" बिरुद से अलंकृत किया था, तब से "बड़गच्छ" "तपागच्छ" हुआ। जिस उपाश्रय को आपने अलंकृत किया था उसका भी संपूर्ण जीर्णोद्धार हुआ। श्री शांतिनाथजी जिनालय के अन्तर्गत पू.आ. जगच्चन्द्रसूरि गुरु मन्दिर एवं चमत्कारी नागराज धरणेन्द्र की देवकुलिका का भी संपूर्ण जीर्णोद्धार हुआ। गणधर गुरु मन्दिर का नव निर्माण हुआ जिसमें पुंडरिक स्वामीजी, गौतम स्वामीजी एवं वर्तमान में बृहत् श्रमण संघ सर्जक, सिद्धान्त महोदधि स्व. पू.आ. प्रेमसूरिजी म.सा. की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हुई। पेढ़ी, उपाश्रय, कर्मचारी कक्ष एवं सिंहद्वार का भी नव निर्माण हुआ जिससे हर किसी का ध्यान आज इस तीर्थ के प्रति आकृष्ट हो रहा है। सारांश–इस बारह साल के जीर्णोद्धार ने इस तीर्थ की काया पलट दी एवं नये इतिहास का निर्माण हुआ जिसकी हमें प्रसन्नता है। अनेक प्रतिमाओं की अंजनशलाका के साथ इन सभी मन्दिरों की पुनः प्रतिष्ठा तपागच्छीय सिद्धान्त – महोदधि स्व. पू.आ. प्रेमसूरिजी म.सा. के पुन्य प्रभाव साम्राज्य में न्याय विशारद् गच्छाधिपति स्व. पू.आ. भुवन भानुसूरिजी म.सा. के पट्टधर सर्वाधिक श्रमण समुदभ्याधिपति पू.आ. जयघोषसूरिजी म.सा. मेवाड़ देशोद्धारक पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा. आयड़ तीर्थोद्धारक वैराग्य वारिधि पू. आ. कुलचन्द्रसूरिजी म.सा. आदि विशाल साधु–साध्वीजी समुदाय की पावन निश्रा में सोलह दिवसीय महा महोत्सव पूर्वक श्रावक–श्राविका संघ के साथ आनन्द उल्लास और उमंग के बीच वि.सं. 2058 के फाल्गुन वदि 13 दिनांक 11 मार्च, 2002 के शुभ लग्नांश में सम्पन्न हुई।

"शिवमस्तु सर्वजगतः। शुभं भवतु श्री श्रमण संघस्य।"

श्री पद्मनाभ स्वामी मन्दिर : मेवाड़ का प्रमुख नगर उदयपुर जिस प्रकार महलों एवं झीलों की नगरी के नाम से पहचाना जाता है उसी प्रकार यह नगर मेवाड़ का जैन नगर भी है। तपागच्छ की उत्पत्ति का पावन स्थल आयड़, श्री शीतलनाथ, श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ, सवीना पार्श्वनाथ, श्री वासुपूज्य स्वामी दादावाड़ी, श्री पद्मनाभ स्वामी आदि प्राचीन जिनालयों से भी इस नगर की गौरवमयी पहचान है। इस ऐतिहासिक नगर में 62 भव्य प्राचीन जैन श्वेताम्बर मन्दिर हैं।

आगामी अनावगत उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर, मरमार्हत् श्री श्रेणिकराजा के जीव श्री पद्मनाभ स्वामी का विश्वभर में एकमात्र बेमिसाल अलौकिक तीर्थ उदयपुर में विद्यमान है। यह मन्दिर करीब 252 वर्ष एवं प्रतिमा 601 वर्ष प्राचीन है। तीर्थ के भक्तजनों में आज भी श्री पद्मनाभ स्वामी के प्रति अत्यन्त गहरी आस्था, श्रद्धा एवं लगाव है। यह मन्दिर चेटक सर्कल से स्वरूपसागर–फतहसागर की ओर जाने वाली मुख्य सड़क के दाहिनी ओर स्थित है। इस परिसर में शांतिनाथ जी, महावीर स्वामी जी, अजितनाथ जी, गौतम स्वामी जी के मन्दिर विद्यमान हैं। इस मन्दिर की जमीन का कुछ हिस्सा खरीदा गया, कुछ हिस्सा महाराणा अरिसिंह जी द्वारा बख्शीस दिया गया तथा कुछ जमीन भेंट स्वरूप प्राप्त हुई है।

प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेख के आधार पर मन्दिर में स्थापित प्रतिमाओं की अंजनशलाका सेणपाल नवलखा ने संवत् 1492 में महाराणा कुम्भा के समय में अद्भुत जी तीर्थ पर की। इन प्रतिमाओं को गुजरात के श्रावक श्री कपूरचन्द वर्द्धमान अद्भुत तीर्थ से पाटन ले जाते वक्त रात्रि में विश्राम वर्तमान मन्दिर परिसर में किया। दूसरे दिन प्रस्थान करने पर बैलगाड़ियां चली नहीं तो श्रावक ने इसी स्थान पर संवत् 1816 में जमीन खरीद कर मन्दिर बनवाने का कार्य प्रारम्भ किया। इसी समय में शाह कपूरचन्द जी की पुत्रवधू का स्वास्थ्य खराब

हो गया, इसलिए उसने अपने पति को कहकर अजितनाथ भगवान व अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा संवत् 1817 में करवाई। उनका स्वास्थ्य ठीक होने पर मन्दिर का कार्य पूर्ण कराकर मूलनायक श्री पद्मनाभ स्वामी एवं पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा संवत् 1819 में माघ शुक्ल 5 को सम्पन्न हुई। इस प्रकार 5 प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा संवत् 1817 बैसाख शुक्ल 10 को व दो प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा संवत् 1819 माघ शुक्ल 5 को सम्पन्न हुई।

इस मन्दिर में एक ही गमारे में श्वेत पाषाण की विशाल सात प्रतिमाएं निम्नानुसार स्थापित हैं :– (1) मूलनायक पद्मनाभ स्वामी की 95 इंच ऊँची व 81 इंच चौड़ी प्रतिमा है जिसका परिकर 135 इंच ऊँचा व 103 इंच चौड़ा है। (2) मूलनायक के दाहिनी ओर श्री पार्श्वनाथ भगवान की 69 इंच ऊँची व 57 इंच चौड़ी प्रतिमा है जिसका परिकर 101 इंच ऊँचा व 81 इंच चौड़ा है। (3) पार्श्वनाथ भगवान के दाहिनी ओर के आलिए में आदिनाथ भगवान की 61 इंच ऊँची व 48 इंच चौड़ी प्रतिमा है तथा इसका परिकर 85 इंच ऊँचा व 65 इंच चौड़ा है। (4) आदिनाथ भगवान की 51 इंच ऊँची व 43 इंच चौड़ी प्रतिमा है जिसका परिकर 81 इंच ऊँचा व 65 इंच चौड़ा है। (5) मूलनायक भगवान के बायीं ओर श्री अजितनाथ भगवान की 63 इंच ऊँची व 53 इंच चौड़ी प्रतिमा है तथा इसका परिकर 101 इंच ऊँचा व 81 इंच चौड़ा है। (6) इसके आगे एक आलिए में श्री आदिनाथ भगवान की 51 इंच ऊँची व 45 इंच चौड़ी प्रतिमा विराजित है जिसका परिकर 81 इंच ऊँचा व 65 इंच चौड़ा है। (7) इसके बाद में आदिनाथ भगवान की 51 इंच ऊँची व 43 इंच चौड़ी प्रतिमा है जिसका परिकर 81 इंच ऊँचा व 65 इंच चौड़ा है।

श्री अजितनाथ भगवान का मन्दिर : यह मन्दिर भावी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर के मन्दिर के ऊपर प्रथम मंजिल पर बना हुआ है। इस मन्दिर के बीच एक वेदी 4 फीट × 4 फीट की बनी हुई है। वेदी पर चतुर्मुखी श्याम पाषाण की (1) पूर्वमुखी–अजितनाथ भगवान (2)दक्षिणमुखी–श्री संभवनाथ स्वामी (3) पश्चिममुखी–अभिनन्दन स्वामी तथा (4) उत्तरमुखी–श्री आदिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ विराजित हैं तथा इन सभी की ऊँचाई 29 इंच है।

श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर : महाराणा जगत सिंह जी द्वितीय(1790–1808) के समय काल में शाह भीखा जी पोरवाड़ की पत्नी ने चौगान के पास जहाँ शांतिनाथ भगवान का मन्दिर स्थित है तथा जैन छात्रावास (शिक्षा भवन) की जमीन को खरीदकर मन्दिर व धर्मशाला बनवाई। यह शिखरबन्द व नव घूमटियों से युक्त एक सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिर में (1) श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा 21 इंच ऊँची व 16 इंच चौड़ी तथा परिकर 32 इंच ऊँचा व 26 इंच चौड़ा है। (2) मूलनायक के दाहिनी ओर जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा 13 इंच ऊँची है। (3) मूलनायक के बायीं ओर जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा 9 इंच ऊँची है। (4) निज मन्दिर के सामने की दीवार अर्थात् पूर्वी दीवार पर नागेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की 39 इंच की खड़ी प्रतिमा है तथा उदयपुर शहर में नागेश्वर पार्श्वनाथ की यह प्रथम प्रतिमा है। (5) इसके आगे इसी दीवार पर एक आलिए में श्री शांतिनाथ भगवान की 35 इंच ऊँची खड़ी प्रतिमा है। ये सभी प्रतिमाएँ श्वेत पाषाण से निर्मित हैं।

श्री महावीर स्वामी का धूमटबन्द मंदिर : इस मन्दिर में (1) मूलनायक श्री महावीर स्वामी की 21 इंच ऊँची, (2) मूलनायक के दाहिनी ओर श्री महावीर स्वामी की 19 इंच ऊँची तथा (3) मूलनायक के बायीं ओर सुमतिनाथ भगवान की 17 इंच ऊँची प्रतिमाएँ हैं जो एक ही छतरी में स्थापित हैं। ये सभी श्वेत पाषाण की प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

श्री गौतम स्वामी का मन्दिर : इस मन्दिर में श्वेत पाषाण से निर्मित (1) मूलनायक श्री गौतम स्वामी की 23 इंच ऊँची तथा (2) मूलनायक के बायीं ओर श्री पद्मनाभ स्वामी के 10वें गणधर श्री शतबल स्वामी की 19 इंच ऊँची प्रतिमा विराजित है।

23 डेहरियाँ : इस मन्दिर परिसर में भावी चौबीसी की 23 डेहरियाँ भी स्थापित हैं जिनकी प्रतिष्ठा दिनांक 8 मई, 2019 को हुई थी।

भावी चौबीसी की 23 डेहरियाँ

करेड़ा पार्श्वनाथ (भूपालसागर) का मन्दिर : यह तीर्थ उदयपुर से चित्तौड़गढ़ मार्ग पर 70 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इसका पुराना नाम करहेटक, करहेड़ा था। धीरे–धीरे यह करेड़ा कहा जाने लगा। करेड़ा नाम की वजह से इसकी पहचान करेड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ के रूप में हो गई। इस मन्दिर के एक प्राचीन स्तम्भ पर वि.सं. 55 उत्कीर्ण है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में निर्मित यह मन्दिर दो शिखर युक्त है। दो शिखर से बना मन्दिर अद्वितीय है तथा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। यह मन्दिर पूर्व में नौ–मंजिला था। वि.सं. 861 में शाह खीमसिंह द्वारा निर्मित एवं आचार्य जयानन्दसूरीश्वरजी के हाथों प्रतिष्ठा कराने, संवत् 1039 में यशोभद्रसूरीश्वरजी द्वारा प्रतिष्ठा कराने, वि.सं. 1336 में चैत्र कृष्णा 13 को महाराजा श्री चचगदेव द्वारा इस प्रतिमा की पूजा करने का उल्लेख मिलता है। यह प्रतिष्ठा जीर्णोद्धार कराने के बाद की है। वर्तमान में यह मन्दिर वि.सं. 1039 में निर्मित माना जाता है और वि.सं. 1655 में इसका पुनः जीर्णोद्धार हुआ और प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। प्रतिमा पर भी वि.सं. 1656 का लेख उत्कीर्ण है। संवत् 1321 में मांडलगढ़ के मंत्री पेथड़ शाह के पुत्र झांझण शाह भी यहां संघ लेकर आए एवं जीर्णोद्धार करवाया था। मूलनायक श्याम पाषाण की 29 इंच ऊँची प्रतिमा है। वर्तमान में नवीन शिखर बंध बावन जिनालय में भिन्न–भिन्न बावन नाम से श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा संवत् 2023 माह सुदी 13 को आचार्य श्रीमद् विजय दक्ष सूरि जी व सुशील सूरि जी द्वारा करायी गयी।

उदयपुर में जैन श्वेताम्बर मन्दिर : उदयपुर में कुल 62 जिनमन्दिर हैं जिनमें (1) श्री शीतलनाथ जी का मन्दिर, घंटाघर (2) श्री चन्द्र पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, जगदीश मन्दिर रोड (3) श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर (कसौटी का), जगदीश मन्दिर रोड (4) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर (बापनों का मन्दिर), जगदीश मन्दिर रोड (5) श्री ऋषभदेव भगवान का मन्दिर, कसारों की ओल (6) श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, बाबेलों की सेहरी, मोहली चौहट्टा (7) श्री आदिनाथ भगवान का मन्दिर (दादा देवरी), मोहली चौहट्टा (8) श्री केशरियाजी का मन्दिर, बदनोर की हवेली (9) श्री शीतलनाथ जी का मन्दिर (हुमड़ों का मन्दिर), जड़ियों की ओल (10) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, सिंघटवाड़ियों की सेहरी (11) श्री वासुपूज्य भगवान का काँच का मन्दिर, बड़ा बाजार (12) श्री वासुपूज्य भगवान का मन्दिर (चतराम का उपाश्रय), बड़ा बाजार (13) श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर, कोलपोल (14) श्री आदेश्वर भगवान (चौमुख जी) मन्दिर, मोचीवाड़ा (15) श्री विघ्नहरण पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, मोचीवाड़ा (16) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर (बापना का मन्दिर), नलवाया चौक, धानमण्डी (17) श्री आदेश्वर भगवान (चौमुखाजी) का मन्दिर, देहलीगेट अन्दर (18) श्री नेमिनाथ जी का मन्दिर, भट्टारक की थोब, देहलीगेट बाहर (19) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर, थोब की बाड़ी, देहली गेट बाहर (20) श्री संभवनाथ स्वामी का मन्दिर, कालकामाता रोड, गणेश नगर (21)श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर (आयड़ तीर्थ), आयड़ (22) श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर (आयड़ तीर्थ), आयड़ (23) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर (आयड़ तीर्थ), आयड़ (24) श्री महावीर स्वामी का मन्दिर (आयड़ तीर्थ), आयड़ (25) श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर (आयड़ तीर्थ), आयड़ (26) श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, अरविन्द नगर, सुन्दरवास (27) श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर, हिरण मगरी, सेक्टर–3 (28) श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर, हिरण मगरी, सेक्टर–4 (29) श्री कुंथुनाथ स्वामी का मन्दिर, स्वामी नगर, टेकरी (30) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर, सेन्ट्रल एरिया (31) श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, सवीना खेड़ा (32) श्री शांतिनाथ पार्श्वांथ भगवान का मन्दिर, हिरण मगरी, सेक्टर–11 (33) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर (बाबेलों का मन्दिर), हिरण मगरी, सेक्टर–13 (34) श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर, हिरण मगरी, सेक्टर–14 (35) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर, शिवाजी नगर (36) श्री वासुपूज्य स्वामी मन्दिर (दादावाड़ी), सूरजपोल (37) श्री श्यामला पार्श्वनाथ मन्दिर (दादावाड़ी), सेठजी की बाड़ी (38) श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, भुवाणा (39) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर, बेदला (40) श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, देवाली (41) श्री वासुपूज्य भगवान का मन्दिर, अम्बामाता स्कीम (42) श्री महावीर भगवान का मन्दिर, मोती मगरी स्कीम (43) श्री पद्मनाभ स्वामी का मन्दिर (भावी चौबीसी के प्रथम तीर्थकर), चौगान चौराहा (44) श्री अजीतनाथ भगवान का मन्दिर (चौगान का मन्दिर), चौगान चौराहा (45) श्री शांतिनाथ भगवान का मन्दिर (चौगान का मन्दिर), चौगान चौराहा (46) श्री महावीर भगवान का मन्दिर (चौगान का मन्दिर), चौगान चौराहा (47) श्री ऋषभदेव भगवान का मन्दिर, हाथीपोल बाहर (48) श्री वासुपूज्य भगवान का मन्दिर, हाथीपोल (49) श्री आदेश्वर भगवान का मन्दिर (वाड़ी जी का मन्दिर), बोहरवाड़ी (50) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ का मन्दिर, भूतमहल, मालदास स्ट्रीट (51) श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ जी का मन्दिर, भूतमहल, मालदास (52) श्री कुंथुनाथ भगवान का मन्दिर, मालदास स्ट्रीट (53) श्री अजीतनाथ भगवान का मन्दिर, मालदास स्ट्रीट (54) श्री ऋषभानन स्वामी का मन्दिर, मोती चौहट्टा (55) श्री चन्द्रप्रभ स्वामी जी भगवान का मन्दिर, गणेश घाटी (56) श्री ऋषभदेव जी का मन्दिर, गणेश घाटी आदि प्रमुख हैं।

झीलों के घाटों पर धार्मिक त्यौहार एवं उत्सवों का आयोजन : उदयपुर शहर की विभिन्न झीलों का अपना ऐतिहासिक, सामाजिक एवं धार्मिक महत्व भी है। इन झीलों के किनारे स्थित मुख्य घाटों को श्रद्धा की पावन स्थली के रूप में मानते हुए जन–समुदाय द्वारा अनेक धार्मिक त्यौहार एवं उत्सव भव्यता एवं उल्लासपूर्ण वातावरण में मनाये जाते हैं। इन झीलों को स्वच्छ एवं निर्मल बनाये रखना हम सभी की नैतिक जिम्मेदारी होनी चाहिये।

विक्रम संवत् नववर्ष समारोह : विक्रम संवत् नववर्ष ईसा के 57 वर्षों पूर्व सम्राट विक्रमादित्य की शेख पर विजय के स्मरणोत्सव के रूप में प्रारम्भ किया गया। यह चैत्र माह में अमावस्या के बाद प्रथम दिन से प्रारम्भ होता है।

नगर निगम, आलोक संस्थान एवं अन्य संगठनों के संयुक्त तत्वावधान में नव वर्ष समारोह विक्रम संवत् का विदाई एवं स्वागत कार्यक्रम फतहसागर पाल, पिछोला के गणगौर घाट एवं दूधतलाई पर आयोजित होता है। तीन दिवसीय नववर्ष समारोह का आगाज फतहसागर की पाल पर नीमजमाता से ज्योति लाकर वन्दे मातरम् की गूँज के साथ किया जाता है। पाल पर विभिन्न समूहों जिनमें

गौरबन्ध समूह, गवरी समूह, घूमर समूह, पणिहारी समूह, गैर समूह, चंग समूह, खरताली बीन, शहनाई समूह, मन्दबुद्धि बाल समूह द्वारा लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य व देशभक्ति नृत्य की प्रस्तुतियाँ दी जाती हैं। इस अवसर पर फतहसागर की पाल पर भारतीय सांस्कृतिक व परम्परा को बनाए रखने और भारतीय वेशभूषा से जोड़ने की दृष्टि से 'पगड़ी सजाओ' प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता है।

दूसरे दिन पूर्व संवत् वर्ष का विदाई कार्यक्रम गणगौर घाट पर आयोजित होता है। इस दिन ज्योति कलश संस्कृति चेतना यात्रा मुख्य आकर्षण का केन्द्र होती है। यात्रा तीन स्थलों, प्रथम नाथद्वारा से गणगौर घाट, दूसरी बैजनाथ महादेव सीसारमा से गणगौर घाट और तीसरी बोहरा गणेशजी से गणगौर घाट तक गंगा निकलती है। तीनों यात्राओं में क्रमशः रामदरबार, गणपति व शिवलिंग की विधि–विधान से जल प्रतिष्ठा की जाती है। तीनों यात्राओं का महासंगम हाथीपोल पर सायंकाल होता है। हाथीपोल से यह तीनों यात्राएँ त्रिवेणी संगम के रूप में गणगौर घाट के लिए प्रस्थान करती हैं। इस अवसर पर विभिन्न समुदाय की महिलाओं द्वारा कलश यात्रा और ज्योति यात्रा भी निकाली जाती हैं जो जगदीश मन्दिर से प्रारम्भ होकर गणगौर घाट पर भव्य दीप प्रवाह और गंगा महाआरती के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इस आयोजन में **'ज्योतिकलश संस्कृति चेतना'** यात्रा के पहुंचने पर जगदीश चौक पर धूम–धड़ाके के साथ स्वागत कर उसे पारम्परिक ढंग से गणगौर घाट पर लाकर उसी पवित्र ज्योति से दीप प्रज्वलित कर नावों से प्रवाहित किये जाते हैं।

तीसरे दिन सोलह शृंगार से सजी दूधतलाई पर शीतल बयार के बीच आतिशबाजी की छटा एवं हजारों की संख्या में जन समुदाय की उपस्थिति में विक्रमादित्य मेले के आयोजन के साथ नववर्ष का स्वागत होता हैं। विदेशी सैलानी भी भारतीय नव वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित रंग–बिरंगे आतिशी माहौल का लुत्फ उठाते हैं। शहर के कलाकारों सहित पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र के दल द्वारा भी मनमोहक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। इस दिन प्रातःकाल के समय विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा शहर के मुख्य चौराहों पर नागरिकों को तिलक लगाते हुए नीम की कोपलें एवं मिश्री खिलाकर उन्हें नव संवत्सर की शुभकामनाएँ दी जाती है।

इतिहास के पृष्ठों से ...

विक्रम संवत् नव संवत्सर : विक्रम संवत् भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित हिन्दू पंचांग है। मान्यता है कि सम्राट विक्रमादित्य ने ईसा के 57 वर्ष पूर्व इसका प्रचलन आरम्भ कराया था। यह नेपाल का सांस्कृतिक एवं आधिकारिक पंचांग (विक्रमी संवत् = ईस्वी संवत् + 57) है। भारत में अनेक राज्यों (उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, बिहार, झारखण्ड, जम्मू–कश्मीर, पंजाब, दिल्ली एवं छत्तीसगढ़) में प्रचलित यह पारम्परिक पंचांग है। इस संवत् का आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (मार्च–अप्रेल) चैत्र माह में अमावस्या के बाद प्रथम दिन से होता है। इसमें चन्द्र मास एवं सौर नक्षत्र वर्ष का उपयोग किया जाता है। बारह महीने का एक वर्ष और सात दिन का एक सप्ताह रखने का प्रचलन विक्रम संवत् से ही शुरू हुआ। महीने का हिसाब सूर्य व चन्द्रमा की गति पर रखा जाता है। यह बारह राशियाँ बारह सौर मास है। जिस दिन सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है, उसी दिन की संक्रान्ति होती है। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है, उसी आधार पर महीनों का नामकरण हुआ है। चन्द्र वर्ष, सौर वर्ष से 11 दिन 3 घड़ी 48 पल छोटा है, इसलिए प्रत्येक तीन वर्ष में इसमें एक महीना (अधिमास) जोड़ दिया जाता है। विक्रम संवत् को नव–संवत्सर भी कहते हैं। संवत्सर के पांच प्रकार हैं – सौर, चन्द्र, नक्षत्र, सावन और अधिमास। विक्रम संवत् में सभी का समावेश है। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क आदि सौर वर्ष के माह हैं। यह 365 दिनों का है। चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ आदि चन्द्र वर्ष के माह हैं। चन्द्र वर्ष 354 दिनों का होता है, जो चैत्र माह से शुरू होता है। चन्द्र वर्ष में चन्द्रकलाओं में वृद्धि हो तो यह 13 माह का होता है। जब चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में होकर शुक्ल प्रतिपदा के दिन से बढ़ना शुरू करता है तभी से हिन्दू नववर्ष की शुरूआत मानी गई है।

नववर्ष को भारत के प्रान्तों में अलग–अलग तिथियों के अनुसार मनाया जाता है। ये सभी महत्वपूर्ण तिथियाँ मार्च और अप्रेल के महीने में आती हैं। इस नववर्ष को प्रत्येक प्रान्त में अलग–अलग नामों से जाना जाता है, फिर भी पूरा देश चैत्र माह से ही नववर्ष की शुरूआत मानता है और इसे नव–संवत्सर के रूप में जाना जाता है। गुड़ी पड़वा, होला मोहल्ला, युगादि, विशु, वैशाखी, कश्मीरी नवरेह, उगाड़ी, चेटीचंड, चित्रेय, तिरूविझा आदि सभी की तिथि इस नव–संवत्सर के आसपास ही आती है।

ऐसी मान्यता है कि विक्रम संवत् नववर्ष की शुरूआत चन्द्रमास के चैत्र माह के उस दिन से होती है जिस दिन ब्रह्म पुराण अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना प्रारम्भ की थी। इसी दिन से सतयुग की शुरूआत भी मानी जाती है। इसी दिन भगवान विष्णु ने मत्स्य अवतार लिया था। इस दिन से नवरात्र की शुरूआत भी होती है। इसी दिन को भगवान राम का राज्याभिषेक हुआ और पूरे अयोध्या नगर में विजय–पताका फहराई गई थी। इसी दिन से रात्रि की अपेक्षा दिन बड़ा होने लगता है।

गणगौर उत्सव : बसन्त के आगमन, फसल कटाई एवं वैवाहिक सम्बन्धों में निष्ठा की खुशी में महिलाओं द्वारा देवी पार्वती को समर्पित गणगौर उत्सव चैत्र कृष्ण तीज को काफी हर्षोल्लास, उमंग, उत्साह और धूमधाम के साथ मनाया जाता है। यह रंगोत्सव गहरी धार्मिक आस्था के साथ विवाहित महिलाएँ अपने पति की दीर्घायु व स्वस्थ जीवन के लिए एवं कुँवारी कन्याएँ अपने मनपसन्द वर की कामना करने की मान्यता के साथ मनाती हैं।

लकड़ी की बनी गणगौर की प्रतिमा एक चौकी पर रख दी जाती है, उसे सुन्दर जेवर और वस्त्र पहनाएँ जाते हैं। अलग–अलग समूहों में पारम्परिक परिधानों में सजी–धजी महिलाएँ सिर पर गणगौर व ईसर की प्रतिमाएँ उठाकर, लोक गीत गाते एवं नृत्य करते हुए पिछोला झील के गणगौर घाट पर पहुँचती हैं। गणगौर घाट पर देवी पार्वती की मूर्तियों की पूर्ण श्रद्धा के साथ पूजा–अर्चना की जाती है। पिछोला झील में सजी नौकाओं का जुलूस आकर्षण का एक मुख्य केन्द्र रहा है। इस हेतु गणगौर नाव भी सुप्रसिद्ध है।

मेवाड़ महोत्सव के अन्तर्गत भी पर्यटन विभाग व जिला प्रशासन द्वारा गणगौर उत्सव का आयोजन किया जाता है। इसके अन्तर्गत घण्टाघर से विभिन्न समाजों की गणगौरों की झांकियाँ निकलनी शुरू होती है, जो घण्टाघर, जगदीश चौक, गणगौर चौक होते हुए गणगौर घाट पर पहुँचती है। बीच–बीच में रुक–रुक कर गणगौर के आसपास महिलाओं द्वारा घूमर नृत्य किया जाता है।

गणगौर पूजन की वर्षों पुरानी परम्परा में अब सामाजिक संदेश देने का नया अध्याय जुड़ा चुका है जो इस परम्परा की समाज को एक अमूल्य भेंट है। इसके मायने ये हैं कि मेवाड़ के इस पारम्परिक व ऐतिहासिक महोत्सव के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों व कुरीतियों को खत्म किया जाए। जिस गणगौर को पूजते आ रहे हैं, उसके प्रति वास्तविक श्रद्धा तब ही झलकेगी, जब मन से नारी को सम्मान दिया जाए। कन्या भ्रूण हत्या नहीं करने और बेटी को जीने का पूरा एवं बराबर अधिकार दिया जाए। हाथों में तख्तियाँ उठाए महिलाएँ, युवतियाँ व बच्चे इसी तरह के संदेश लोगों को देते हैं, यह इस महोत्सव का एक अनूठा शिक्षाप्रद रूप है।

गणगौर महोत्सव स्थानीय नागरिकों के साथ देशी व विदेशी पर्यटकों के मध्य भी अत्यन्त लोकप्रिय है। इस अवसर पर अनेक पर्यटक राजस्थानी ड्रेस पहने हुए देखे जा सकते हैं। मेवाड़ महोत्सव के तहत शाम को गणगौर घाट पर सांस्कृतिक आयोजनों के तहत सर्वश्रेष्ठ विदेशी युगल राजस्थानी ड्रेस प्रतियोगिता आयोजित कर विजेता पुरस्कृत किये जाते हैं। इसमें विदेशी युवक जहाँ धोती–कुर्ता व मेवाड़ी पगड़ी एवं विदेशी महिलाएँ राजस्थानी लिबास में शान से मंच पर आकर खुद का परिचय और कुछ शब्द हिन्दी में बोलकर उपस्थित जनमेदनी से सराहना पाते हैं। इस अवसर पर अनेक कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ भी दी जाती है। पूर्व में मेवाड़ के महाराणा इस अवसर पर अपने राव–उमरावों के साथ गणगौर नाव पर बिराजकर गणगौर घाट से गुजरते हुए गणगौर माता के प्रति श्रद्धा के साथ इस उत्सव की भव्यता में अभिवृद्धि करते थे।

गणेश चतुर्थी : माघ मास की कृष्ण पक्ष चतुर्थी को गणेश चतुर्थी भी कहते हैं। इस दिन श्री गणेश की प्रतिमा को स्थापित कर 10 दिवसीय धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन किया जाता है। अनन्त चतुर्दशी के दिन गणेशोत्सव के समापन पर विभिन्न समाज, संगठनों एवं मोहल्लों के लोग गणपति विसर्जन करने उदयपुर की झीलों के किनारे भव्य जुलूस के साथ पहुँचते हैं। जिस उत्साह से लोग गणपति की स्थापना करते हैं, उससे दुगुने जोश के साथ विसर्जन किया जाता है। इस दिन व्रत किया जाता है एवं इस व्रत से घर–परिवार पर आ रही विपदा दूर होती है। कई दिनों से रुके मांगलिक कार्य भी सम्पन्न होते हैं।

इस दिन शुभ मुहूर्त में गणेश प्रतिमाओं को उनके स्थान से जयकारों के साथ उठाया और वाहनों में विराजमान कर भक्तिमय गीतों एवं ढोल–नगाड़ों की थाप पर भक्त गुलाल–अबीर में सराबोर झूमते हुए गणपति बप्पा मोरिया के जयकारे के साथ आगे बढ़ते हैं। अगले साल फिर आने और मनोकामनाएँ पूरी करने की उम्मीद के साथ गणपति के प्रति भक्तों में अथाह भक्ति भाव उमड़ता है। शहर के विभिन्न मार्गों से गणपति जुलूस आगे बढ़ते हुए हाथीपोल, घण्टाघर, जगदीश चौक होते हुए पिछोला झील किनारे स्थित गणगौर घाट पहुँचते हैं। पूजा–अर्चना के बाद गणपति प्रतिमाओं को नाव में सवार कराकर सभी प्रतिमाओं का झील में भक्तिभाव के साथ विसर्जन किया जाता है। इसी तरह कुछ भक्त प्रतिमाएँ लेकर फतहसागर, गोवर्द्धन सागर झील पहुँचते और पूजा अर्चना के बाद झील में विसर्जन किया जाता है। वर्तमान में विसर्जन की औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद प्रतिमाओं को झील के अन्दर न प्रवाहित कर कृत्रिम जलकुण्ड में सांकेतिक रूप से विसर्जित किया जा रहा है।

पौराणिक गणेश कथा के अनुसार एक बार देवता कई विपदाओं में घिरे थे। तब वह मदद मांगने भगवान शिव के पास आए। उस समय शिव के साथ कार्तिकेय तथा गणेशजी भी बैठे थे। देवताओं की बात सुनकर शिवजी ने कार्तिकेय व गणेशजी से पूछा कि तुममें से कौन देवताओं के कष्टों का निवारण कर सकता है। तब कार्तिकेय व गणेशजी दोनों की स्वयं को इस कार्य के लिए सक्षम बताया। इस पर भगवान शिव ने दोनों की परीक्षा लेते हुए कहा कि तुम दोनों में से जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके आएगा वही देवताओं की मदद करने जाएगा। भगवान शिव के मुख से यह वचन सुनते ही कार्तिकेय अपने वाहन मोर पर बैठकर पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकल गए। परन्तु गणेशजी सोच में पड़ गए कि वह चूहे के ऊपर चढ़कर सारी पृथ्वी की परिक्रमा करेंगे तो इस कार्य में उन्हें बहुत समय लग जाएगा। तभी उन्हें एक उपाय सूझा। गणेश अपने स्थान से उठें और अपने माता–पिता की सात बार परिक्रमा करके वापस बैठ गए। परिक्रमा करके लौटने पर कार्तिकेय स्वयं को विजेता बताने लगे। तब शिवजी ने श्रीगणेश से पृथ्वी की परिक्रमा न करने का कारण पूछा। तब गणेश ने कहा – ''माता–पिता के चरणों में ही समस्त लोक हैं।'' यह सुनकर भगवान शिव ने गणेशजी को देवताओं के संकट दूर करने की आज्ञा दी। इस प्रकार भगवान शिव ने गणेशजी को आशीर्वाद दिया कि चतुर्थी के दिन जो तुम्हारा पूजन करेगा और रात्रि में चन्द्रमा को अर्ध्य देगा उसके तीनों ताप यानी दैहिक ताप, दैविक ताप तथा भौतिक ताप दूर होंगे। इस व्रत को करने से व्रतधारी के सभी तरह के दुख दूर होंगे और उसे जीवन के भौतिक सुखों की प्राप्ति होगी। पुत्र–पौत्रादि, धन–ऐश्वर्य की कमी नहीं रहेगी। चारों तरफ से मनुष्य की सुख–समृद्धि बढ़ेगी।

मोहर्रम : इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद साहब के नवासे हजरत इमाम हुसैन की शहादत के गम में मनाया जाने वाला मुहर्रम पर्व चाँद दिखने के साथ शुरू होकर 10 दिनों तक शिद्दत के साथ जारी रहता है। इन दस दिनों में उदयपुर की बोहरा एवं मुस्लिम बस्तियों एवं मस्जिदों में ताजिए बिठाए जाते हैं एवं शरबत व पानी की सबीलें लगाई जाती हैं। मुहर्रम का यौमे आशुरा पर ताजिए और सवारियों के साथ परम्परागत जुलूस निकाला जाता है। इसमें सभी स्थानों के ताजिए भक्तों या हुसैन के शब्दघोष के साथ तीज के चौक से प्रारम्भ होकर बड़ा बाजार, घण्टाघर, जगदीश चौक होते हुए पिछोला झील के रोवणिया घाट पर पहुँचते हैं। यहाँ रस्म अदायगी के बाद उनका झील में विसर्जन कर दिया जाता है, हालांकि वर्तमान में यह विसर्जन सांकेतिक रूप से करने की शुरूआत हो चुकी है। ताजिए के इस जुलूस को सभी धर्मों के अनुयायी पूर्ण श्रद्धा के साथ देखने आते हैं, विशेषकर जगदीश चौक में ताजिए को घुमाने की रस्म देखने जनसैलाब उमड़ पड़ता है।

मुहर्रम से इस्लामी नये वर्ष हिजरी का आग़ाज होता है। नया वर्ष कुर्बानी से प्रारम्भ होकर कुर्बानी पर ही खत्म होता है। इसका उद्देश्य त्याग, समर्पण एवं सत्य मार्ग का अनुसरण तथा आपसी प्रेम व भाईचारे के साथ सेवा का भाव स्थापित करना है। इस्लामी नए वर्ष पर देश में अमन, शांति, एकता, भाईचारा और खुशहाली की कामना की जाती है।

इस्लाम की मान्यता के अनुसार इराक में यजीद नामक एक जालिम बादशाह इंसानियत का दुश्मन था। यजीद स्वयं को खलीफा मानता था परन्तु उसे अल्लाह पर विश्वास नहीं था। वह चाहता था कि हजरत इमाम हुसैन उसके खेमे में शामिल हो जाए परन्तु हुसैन को यह मंजूर नहीं था और उन्होंने यजीद के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। पैगम्बर–ए–इस्लाम हजरत मोहम्मद के नवासे हजरत इमाम हुसैन को कर्बला में परिवार एवं दोस्तों के साथ शहीद कर दिया गया। जिस महीने हुसैन एवं उनके परिवार को शहीद किया गया था, वह मुहर्रम का ही महीना था। इस दिन मुहर्रम अधर्म पर धर्म की जीत का प्रतीक माना गया है।

नवरात्रि महोत्सव : नवरात्रि हिन्दुओं का एक प्रमुख त्यौहार है। नवरात्रि शब्द एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है "नौ रातें"। इन नौ रातों एवं दस दिनों के दौरान शक्ति/देवी माँ के नौ रूपों की पूजा की जाती है। नवरात्रि वर्ष में चार बार आती है – पौष, चैत्र, आषाढ़, अश्विन मास में प्रतिपदा से नवमी तक इसे मनाया जाता है। नवरात्रि की नौ रातों में देवी माँ के नौ स्वरूपों की पूजा होती हैं, जिनके नाम एवं स्थान इस प्रकार हैं– शैलपुत्री (काशी), ब्रह्मचारिणी (वाराणसी), चन्द्रघंटा (प्रयागराज), कूष्माण्डा (घाटमपुर), स्कंदमाता (वाराणसी), कात्यायनी (एर्वसा), कालरात्रि (वाराणसी), महागौरी (लुधियाना), सिद्धिदात्री (सतना)। नवरात्रि एक महत्वपूर्ण त्यौहार है जिसे पूरे भारतवर्ष के साथ उदयपुर में भी काफी हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

नवरात्रि महोत्सव पर शहर के विभिन्न मन्दिरों एवं गरबा स्थलों पर देवी माँ की प्रतिमाओं को विधिपूर्वक स्थापित कर नौ दिनों तक उनकी

पूजा–अर्चना के साथ भक्तिभाव से बच्चों, महिलाओं एवं पुरुषों द्वारा गरबा नृत्य किया जाता है। नवरात्रि के अंतिम दिवस देवी माँ की प्रतिमाओं का विसर्जन करने हेतु श्रद्धालु इन्हें वाहन में विराजित कर ढोल–नगाड़ों की धुन पर नाचते–गाते हुए झील किनारे पहुँचते हैं तथा प्रतिमाओं का पूजन कर फतहसागर, गोवर्द्धन सागर, पिछोला झील के गणगौर घाट पर वर्तमान में इन्हें सांकेतिक रूप से विसर्जित किया जा रहा है, जो कि झील हित में एक सराहनीय कदम सिद्ध हुआ है।

नौ देवियाँ :

- शैलपुत्री – इसका अर्थ है "पहाड़ों की पुत्री"।
- ब्रह्मचारिणी – इसका अर्थ है "ब्रह्मचारिणी"।
- चंद्रघंटा – इसका अर्थ है "चाँद की तरह चमकने वाली"।
- कूष्माण्डा – इसका अर्थ है "पूरा जगत उनके पैर में है"।
- स्कंदमाता – इसका अर्थ है "कार्तिक स्वामी की माता"।
- कात्यायनी – इसका अर्थ है "कात्यायन आश्रम में जन्मी"।
- कालरात्रि – इसका अर्थ है "काल का नाश करने वाली"।
- महागौरी – इसका अर्थ है "सफेद रंग वाली माँ"।
- सिद्धिदात्रि – इसका अर्थ है "सर्व सिद्धि देने वाली"।

श्रावणी उपाकर्म : प्राचीनकाल में श्रावणी उपाकर्म के तहत बालकों को गुरुकुल भेजकर उन्हें द्विज बनाया जाता था एवं उन्हें वैदिक संस्कार दिये जाते थे। वर्तमान में सिर्फ यज्ञोपवीत संस्कार एवं तर्पण रह गये हैं। वेदपाठी ब्राह्मण ही यह कर्म करते हैं। श्रावणी पर्व दसविधि स्नान कर मनाया जाता है। इसमें पितरों एवं आत्मकल्याण के लिए मंत्रों के साथ हवन यज्ञ में आहुतियाँ दी जाती हैं। इस महत्वपूर्ण दिन पितृ–तर्पण और ऋषि–पूजन भी किया जाता है, जिससे पितरों का आशीर्वाद व सहयोग मिलता है, जिससे जीवन के सभी संकट समाप्त हो जाते हैं। उदयपुर में श्रावण मास की पूर्णिमा को पिछोला झील के मांजी मन्दिर घाट आदि पर श्रावणी उपाकर्म के तहत पितरों को तर्पण किया जाता है। इस हेतु मांझी घाट पर स्थित चारभुजा मन्दिर के बाहर तबारियाँ बनी हुई हैं जिस पर बैठकर परिवारजन हवन एवं मंत्रोच्चारण के साथ अपने पितरों का स्मरण करते हैं।

भगवान परशुराम जयन्ती : भगवान परशुराम की जयंती हर वर्ष बैशाख माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया यानी अक्षय तृतीया के दिन मनाई जाती है। भगवान परशुराम भगवान विष्णु के छठे अवतार है तथा हनुमान जी की तरह इन्हें भी चिरंजीवी होने का आशीर्वाद प्राप्त है। परशुराम का जन्म ऋषि जमदग्नि और रेणुका के यहाँ हुआ था। वे वीरता एवं महानता के प्रतीक माने जाते हैं। वे एक शिवभक्त थे। वे शस्त्रविद्या के महान् गुरु थे। उन्होंने भीष्म, द्रोण व कर्ण को शस्त्रविद्या दी थी। उन्होंने अत्रि की पत्नी अनसूया, अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा व अपने प्रिय शिष्य अकृतवण के सहयोग से नारी जागृति अभियान का संचालन भी किया था। भगवान परशुराम जयन्ती के अन्तर्गत पिछोला झील के गणगौर घाट पर महिलाओं द्वारा मंगल–गीतों के गायन व गरबा नृत्य उपरान्त आरती की स्वर लहरियों, गंगा माता व भगवान परशुराम के जयकारों से वातावरण गुंजायमान हो जाता है। साथ ही प्राकृतिक जल स्रोतों के संरक्षण का संकल्प भी कराया जाता है।

अधिमास या पुरूषोत्तम मास : अधिमास जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, भारतीय पंचांग में जैसे तिथि घटती है या बढ़ती है, उसी प्रकार हर तीन वर्ष बाद एक माह बढ़ जाता है उस माह को अधिमास कहते है। ऐसा होने का कारण यह है कि भारतीय पंचांग के 12 महीनों के दिनों का योग 355 दिन ही होता है जबकि सूर्य वर्ष में 365 (या 366 लीप वर्ष में) दिन होते हैं। अतः यह 10–11 दिनों का अन्तर प्रति तीन वर्ष बाद 'अधिमास' के रूप में समायोजित किया जाता है। अधिमास का धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व है। अधिमास में दान का विशेष महत्व है, जिससे सभी श्रद्धालु दान, स्नान एवं पूजा–पाठ करते हैं। इस माह में कोई भी शुभ कार्य नहीं किये जाते हैं, जैसे–शादी, नामकरण, मुण्डन आदि, अतः इसे मलमास भी कहा जाता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार पापमुक्ति हेतु प्रायश्चित के लिए अधिमास में प्रत्येक दिन झील, तालाब या नदी में स्नान किया जाता है।

निर्जला एकादशी : यह एकादशी को किया जाने वाला ऐसा व्रत है जिसमें जल का सेवन भी नहीं किया जाता। ज्येष्ठ माह के शुक्ल पक्ष के 11वें दिन यह व्रत किया जाता है। इसे सर्वाधिक धार्मिक महत्व प्रदान किया गया है क्योंकि यह मान्यता है कि वर्षभर की 24 एकादशियों में यह दिन सर्वाधिक फलदायी है। इसके प्रारम्भ के पीछे महाभारत से जुड़ी एक कथा है। पाण्डव भाइयों में भीम बलशाली थे और भोजन के प्रेमी थे किन्तु वे सभी एकादशियों के व्रत करना चाहते थे। जब उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली तो उन्होंने गुरु व्यास से इसका उपाय पूछा तो गुरु ने इस एकादशी को निर्जल उपवास का समाधान बताया। यह उपाय सिद्ध हुआ तब से एकादशी पर निर्जल उपवास का प्रचलन हुआ। यह व्रत पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा पूरे दिन निर्जल रहते हुए पूर्ण भक्तिभाव एवं उत्साहपूर्वक किया जाता है। इस दिवस पर मेवाड़ में घरों एवं झीलों के किनारों पर पतंगबाजी की परम्परा भी रही है।

कार्तिक स्नान : कार्तिक माह में किसी नदी, सरोवर या जल स्रोत पर सूर्योदय से पूर्व नियमित स्नान करने को 'कार्तिक स्नान' कहा जाता है। कार्तिक मास को स्नान, व्रत व तप की दृष्टि से मोक्ष प्रदान करने वाला माना गया है। इस पूरे माह स्नान, दान, दीपदान, तुलसी विवाह, कार्तिक कथा का महात्म्य आदि सुनते हैं। ऐसा करने से शुभ फलों की प्राप्ति होती हैं एवं पापों का शमन होता है। जो व्यक्ति इस माह में स्नान, दान व व्रत करते हैं, उनके पापों का नाश हो जाता है। इस माह को अत्यधिक पवित्र माना गया है। भारत के सभी तीर्थों के समान पुण्य फलों की प्राप्ति एक इसी माह में मिलती है। कार्तिक माह में किये गये स्नान का फल एक सहस्त्र बार किये गये गंगा स्नान के समान एवं सौ बार माघ स्नान के समान माना गया है। इस महीने के अंतिम दिवस को कार्तिक पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है, जिसके अन्तर्गत मन्दिरों में पूजा–अर्चना की जाती है।

देवझूलनी एकादशी : भाद्रपद माह में श्रीकृष्ण के अष्टमी के जन्म के बाद एकादशी के दिन उनकी माता यशोदा ने सूर्य पूजन किया। तब श्रीकृष्ण को यमुना नदी में स्नान कराया। उसी परम्परा को दोहराने के लिए भाद्रपद माह की एकादशी को श्रीकृष्ण की प्रतिमा को शहर के विभिन्न मन्दिरों से मुख्य मार्ग होते हुए शोभायात्रा के रूप में जलाशयों तक ले जाया जाता है। जिसमें श्रद्धालुओं की अथाह भीड़ उमड़ती है। मार्ग में अखाड़े के पहलवान विविध शारीरिक प्रदर्शन कर हर्ष प्रकट करते हैं। मेवाड़ के उदयपुर, चारभुजा एवं अन्य स्थानों पर यह उत्सव पूर्ण उत्साह एवं श्रद्धा के साथ मनाया जाता है।

छठ पूजा : कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली मनाने के बाद मनाये जाने वाले इस चार दिवसीय व्रत की सबसे कठिन एवं महत्वपूर्ण रात्रि कार्तिक शुक्ल षष्ठी की होती है। कार्तिक शुक्ल पक्ष के षष्ठी को यह व्रत किये जाने के कारण इसे छठ व्रत के नाम से जाना जाता है। यह बिहारियों का सबसे बड़ा पर्व एवं संस्कृति है। यह पर्व वैदिक आर्य संस्कृति की छोटी सी झलक दिखाता है। यह पर्व मुख्य रूप से ऋषियों द्वारा लिखी गई ऋग्वेद में सूर्य पूजन, उषा पूजन और आर्य परम्परा के अनुसार मनाया जाता है। छठ पूजा सूर्य, उषा, प्रकृति, जल, वायु और उनकी छोटी बहन छठी मइया को समर्पित है। इसमें पवित्र स्नान, उपवास, पीने के पानी से दूर रहना, लम्बे समय तक पानी में खड़े रहना व प्रार्थना, प्रसाद और अर्ध्य देना शामिल है। छठ पूजा में कोई मूर्ति पूजा नहीं होती है। छठ लिंग–विशिष्ट त्यौहार नहीं है तथा इस महापर्व के व्रत को स्त्री–पुरुष, वृद्ध–जवान सभी लोग करते हैं।

झीलों की आरती : शहर की झीलें जब–जब भी लबालब होती हैं, तो यह शहरवासियों के लिए किसी उत्सव से कम नहीं होता है। लोग इनमें आई जलराशि की आरती उतारते हैं। एक ओर पिछोला के घाटों पर लोग खड़े होकर घण्टों पानी की लहरों को निहारते हैं, तो दूसरी ओर फतहसागर के छोर पर उफनती जलराशि के नजारों को नजर में समेट लेना चाहते हैं। पूरा शहर मानो झीलों के इस सौन्दर्य को हमेशा अपनी यादों में बसाए रखना चाहता हो। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे

झीलों में पानी आना किसी ''जल महोत्सव'' से कम नहीं है। लोग इस उत्सव को बड़े ही उत्साह और खुशी से मनाने लगते हैं। एक ओर यह श्रद्धा का भाव प्रकट करता है तो दूसरी ओर प्रेम का। फतहसागर एवं पिछोला में आई अथाह जलराशि की पूजा–अर्चना करते हैं। पिछोला के गणगौर घाट एवं फतहसागर के फतहेश्वर महादेव घाट पर महाआरती की जाती है।

झीलों को स्वच्छ रखनें हेतु जागरूक रहे : लोग जिस पानी की पूजा कर रहे होते हैं, उसे कुछ लोग गन्दा करने से भी नहीं चूकते हैं। वे खाने–पीने का आनन्द लेकर पोलीथिन व अन्य कचरा झीलों के पानी में या किनारों पर फेंक देते हैं। पानी में डिस्पोजल गिलासें, कटोरियें, बोतलें आदि तैरती नजर आने लगती हैं। इसके चलते प्राकृतिक सौन्दर्य एवं स्वच्छता पर आँच आती है। इस प्रकार झीलों को दूषित करने वाले लोगों के चित्र क्या हम सोशल साइट्स पर नहीं डाल सकते? इस प्रार्थना के साथ कृपया भविष्य में ऐसा न करें। इस प्रकार झीलों को साफ रखने में हम अपना अहम् योगदान दे सकते हैं।

लेकसिटी की पॉपुलरिटी बढ़े : लेकसिटी की खूबसूरती झीलों से हैं। इनसे लोगों की आस्था भी जुड़ी हुई हैं। शहर की खूबसूरती सभी तक पहुंचाने के लिए सोशल मीडिया सबसे आसान एवं उपयुक्त माध्यम है। पहले ऐसा संभव नहीं था पर तकनीक के दौर में अब ऐसा संभव है, तो फिर शहर की पॉपुलरिटी बढ़ायी जानी चाहिये। हम सभी को इसमें सहयोग करना चाहिये।

खुशियों की शेयरिंग : खूबसूरत झीलें शहर की लाइफलाइन हैं। शहरवासी हमेशा इन्हें ऐसा ही देखना चाहते हैं। झीलें लबालब होती हैं तो शहरवासियों की खुशियाँ परवान पर होती हैं। सोशल मीडिया पर युवा इन खुशियों की शेयरिंग करते हैं। साथ ही अपने शहर की खूबसूरती दूसरे तक भी पहुँचाते हैं।

झीलों में विसर्जन एवं प्रदूषण : धार्मिक त्यौहारों यथा–नवरात्रि, गणेश चतुर्थी, निर्जला एवं देवझूलनी एकादशी, अधिमास, ताजिये आदि के अवसर पर साधारणतया उदयपुर शहर की मुख्य झीलों पिछोला ,फतहसागर, स्वरूप सागर एवं गोवर्द्धन सागर में श्रद्धालुओं द्वारा प्रतिमाओं एवं पूजन

सामग्री का विसर्जन बड़े भक्तिभाव एवं श्रद्धा के साथ किया जाता रहा है।

शहर की दूधतलाई में अब मलबे के रूप में पसरी सामग्री–फूलमालाएँ, कलश, नारियल, ज्वारे, पूजन सामग्री आदि जो पानी के साथ वातावरण में दुर्गन्ध भी फैलाती है। इन्हें निकालने के बारे में भी सोचें!

इससे ये झीलें काफी प्रदूषित हो जाती हैं तथा इनके सुरम्य स्वरूप पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विसर्जन पश्चात् झीलें किस हद तक प्रदूषित होती हैं, इसका अंदाजा इन चित्रों से लगाया जा सकता है, जो कि विसर्जन के पश्चात् लिये गये हैं।

परम्परा : गणेश चतुर्थी, नवरात्रि जैसे पर्वों पर शहर में जगह–जगह प्रतिमाएँ विधि–विधान से स्थापित की जाती हैं। नौ–दस दिन के महोत्सव के बाद धूम–धड़ाके के साथ इन्हें जलस्रोतों पर ले जाकर विधि–विधान से ही जल में विसर्जित किया जाता रहा हैं।

परिणाम : मूर्तियों के साथ मटकियाँ, नारियल, मिठाई के डिब्बे, लकड़ियाँ, रस्सियाँ आदि भी पानी में विसर्जित कर दी जाती हैं। इससे झीलों के किनारे बड़ी मात्रा में यह सामग्री मलबे के रूप में जमा होकर न सिर्फ वातावरण में दुर्गन्ध फैलाती है बल्कि पानी को प्रदूषित भी करती है।

परेशानी : पूर्व में मूर्तियाँ मिट्टी से निर्मित होने के कारण पूर्णतया पानी में घुलनशील होती थी, परन्तु वर्तमान में इनके निर्माण में केमिकल व अन्य घातक उत्पादों के प्रयोग से झीलें अधिक प्रदूषित होने लगी हैं। इसके बावजूद भी मूर्ति विसर्जन प्रतीकात्मक न करते हुए अन्य सामग्री भी साथ में विसर्जित कर दी जाती हैं।

प्रतीक्षा – शहर सहित देश–विदेश से झीलों के किनारे पहुंचने वाले भ्रमणार्थियों और सैलानियों को इंतजार है कि उक्त मूर्तियों के अवशेष निकाले जाएं, पूजा सामग्री के नाम पर ड़ाली गई सामग्री साफ की जाए। झीलों को स्वच्छ व निर्मल बनाने का शहरवासी अपना फर्ज निभाएं।

सभी समाजों के गणमान्य नागरिकों एवं स्थानीय प्रशासन द्वारा यदि संगठित प्रयास किये जाये तो श्रद्धालुओं को समझाया जा सकता है कि घरेलू पूजन सामग्री एवं मूर्तियों की पूजा–अर्चना उपरान्त विसर्जन झील किनारे पर ही किया जाये ताकि नगर निगम द्वारा विसर्जित की गई प्रतिमाओं को सुरक्षित तरीके से ससम्मान किसी सुनिश्चित स्थल पर रखवाया जा सके अथवा परम्परागत तरीके से झील के किनारे पूजा–अर्चना कर नगर निगम द्वारा बनाये गये कृत्रिम पानी के टेंकों में मूर्तियों को विसर्जित करें ताकि झीलें प्रदूषण से बच जायेगी। श्रद्धालु वर्ष उपरान्त वर्ष इस भावना की कद्र कर रहे हैं, जो कि अति प्रशंसनीय है।

प्रदूषण नियंत्रण मण्डल द्वारा ग्रीन ट्रिब्यूनल एक्ट के तहत मूर्तियों के विसर्जन पूर्व एवं उपरान्त, सभी झीलों के पानी के सेम्पल लिए जाये एवं जाँच गुणवत्ता का प्रतिवेदन स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जावे। इससे आमजन में यह भावना जागृत हो सकेगी कि हमारे उत्साह एवं श्रद्धा के अनुसार विसर्जित मूर्तियाँ, पूजन सामग्री, आदि से झीलें कितनी प्रदूषित हो रही हैं। वर्तमान में प्रदूषण नियंत्रण मण्डल के प्रतिवेदन आमतौर पर उनके विभाग के उच्चाधिकारियों को ही भेजें जा रहे हैं तथा आमजन इसके बारे में अनभिज्ञ रहते हैं। झीलों को स्वच्छ एवं निर्मल बनाये रखने हेतु आमजन की भागीदारी अति आवश्यक है।

झील प्रेमी संगठन का योगदान

उदयपुर झील हितैषी नागरिक मंच एवं ऐसे ही झील मित्र संस्थान, झील संरक्षण समिति, उत्तराखण्ड समिति, मोती मगरी स्कीम समिति, डॉ. मोहन सिंह मेहता मेमोरियल ट्रस्ट आदि झील प्रेमी संगठन, त्यौहारों उपरान्त एवं नियमित रूप से जल में विसर्जित मूर्तियाँ, पूजन–हवन सामग्री, जलकुम्भी, जलीय घास, प्लास्टिक बोटल्स, अन्य अवशिष्ट सामग्री आदि नाव में बैठकर अति समर्पण भाव से शारीरिक श्रम करते हुए झील से बाहर निकालते हैं और सुकून एवं हर्ष का अनुभव करते हैं। ऐसे सभी समर्पित नागरिकों का संकलनकर्त्ता की ओर से अभिनन्दन, अभिवादन एवं आभार। उदयपुर शहर इन सभी का सदैव ऋणी रहेगा।